विश्वधर्म सम्मेलन

रिपोर्ट

•

•

प्रकाशक

विश्वधर्म संगम, पूर्वाञ्चल विभाग

३, राय स्ट्रीट, कलकत्ता-२०

निवेदन

●

द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन कलकत्ता में हुआ और यह भी अत्यंत सफल रहा, यह कलकत्ता के इतिहास की एक सुन्दरतम घटना है। द्वेष और वैमनस्य की आग जब परितः व्याप्त हो, तब शांति और प्यार का अमृत लेकर पहुँचने वाले व्यक्ति का कितना महत्त्व होता है, यह बताया नहीं जा सकता! बस, विश्व-धर्म-सम्मेलन और मुनिश्री सुशील कुमारजी वही अमृत लेकर कलकत्ता आये।

●

इस विशाल नगरी की धरती पर इस विश्वधर्म-सम्मेलन रूपी अमृत-घट से जो थोड़ी-बहुत बूँदें ढुलक गयी हैं, वे हमें और इस नगरी को नया प्राण देंगी, यह हमारा आत्म-विश्वास है।

●

विश्वधर्म-सम्मेलन के इस सम्पूर्ण आयोजन का संक्षिप्त विवरण उपस्थित करते हुए सर्वप्रथम मैं अपने सभी साथियों से दोनों हाथ जोड़कर अत्यंत नम्रतापूर्वक क्षमा-याचना करता हूँ; क्योंकि यह काम अब से बहुत पहले हो जाना चाहिए था, पर अनेक बाधाओं की वजह से हो नहीं सका। मुझे आशा है कि सभी बन्धु मुझे क्षमा करेंगे।

●

इस काम को हमने अत्यंत सतर्कता के साथ पूरा करने की कोशिश की है। पर मैं जानता हूँ कि बावजूद समस्त सतर्कताओं के अनेक कमियाँ और त्रुटियाँ रह गयी हैं! मेरे सभी साथी इन कमियों के लिये मुझे उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान करें, ऐसा मेरा विनम्र अनुरोध है।

●

इस सम्मेलन-विवरण को तैयार करने में जिन साथियों का अपरिमित सहयोग मिला है, उनका मैं चिरऋणी हूँ। सबका नाम अलग-अलग गिनाने लगूँगा, तो एक लम्बी फेहरिश्त हो जायेगी। किसी का आर्थिक, किसी का संपादन में, किसी का टाइप, पत्र-व्यवहार और सामग्री के संग्रह में तो किसी का अन्य व्यवस्थाओं में मुझे पूर्ण सहयोग मिला है। उन सब मित्रों का मैं अत्यंत आभारी हूँ।

●

धन्यवाद!

जसवंतसिंह लोढ़ा
प्रधान मंत्री
विश्वधर्म-संगम, कलकत्ता

विश्वधर्म-सम्मेलन के प्रवर्तक और प्रेरक मुनिश्री सुशील कुमारजी का संक्षिप्त जीवनवृत्त

आपका जन्म ब्राह्मण कुल (कौशिक गोत्र) मे तारीख १५ जून, १९१६ ई० को रायसीना ग्राम (गुड़गॉव) पंजाब मे हुआ था। आपका बचपन का नाम सरदार सिह शर्मा था। आपके पिता का नाम पण्डित सुमेर सिह शर्मा और माता का नाम भारतमाता है। ७ वर्ष की अल्पायु मे ही आपने गृह-त्याग किया। साधना और उपासना के लिए आप गुरुदेव पं० श्री छोटेलालजी महामुनिराज की सेवा मे रहे और २० अप्रैल, १९४२ ई० को आपने दीक्षा ग्रहण कर जैन मुनि के महाव्रती जीवन को स्वीकार किया।

विद्यार्थी अवस्था मे आपने शास्त्री, प्रभाकर, आचार्य, साहित्यरत्न, विद्यारत्न, भास्कर आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं। 'परीक्षा' और 'नया साहित्य' सरीखे पत्रों को आपने जन्म दिया और अपनी ही लेखनी से उन्हे समृद्ध किया। आप स्थानकवासी जैन संघ के साहित्य विभाग के सचालक भी रहे हैं।

सुशील मुनि

कवि, कहानीकार, इतिहासकार, लेखक, वक्ता, साधक के रूप मे सभी साहित्यिक एवं सास्कृतिक विशेषताएँ आपमे विद्यमान है। आपकी कविता में अनुभव, कहानी में जीवन, इतिहास में तथ्य, लेखनी में भाववाही धारा तथा वक्तृत्व में ओज और व्यक्तित्व में सास्कृतिक माधुर्य है। आपकी सेवा और स्मरण-शक्ति विलक्षण है। आपकी वाणी में एक ऐसी अद्भुत शक्ति है, जिसका प्रभाव श्रोताओं पर बहुत ही हृदयग्राही होता है।

पूर्व और पश्चिम के विभिन्न धर्मों एवं दर्शनों का आपका गहरा अध्ययन है, जो आपके धर्म-समन्वयवादी विचारों और विश्वधर्म की परिकल्पनाओं के मूल में हैं। आपके नेत्रों में करुणा, मुख पर शान्ति तथा जीवन में अहिंसा की साधना है। विचारों में अनेकान्त और आचार में अहिंसा ही आपके जीवन-संगीत का मधुरतम स्वर है। आपके एक वाक्य-'धर्म आत्मा का संगीत है' में आपके धर्म-समन्वय, धर्मों के गहन अध्ययन और शाश्वत तत्त्वों का सार प्रकट होता है और आज यह विश्वधर्म का एक महान सूत्र हो गया। जिसे मान लेने के बाद बाह्य विभेदों और संघर्षों आदि की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है।

एक जैन मुनि होने के नाते उसकी मर्यादाओं के पालने में आप सर्वदा और सर्वत्र खुले शिर, खुले पैर और पैदल ही विहार करते हैं। किसी भी वाहन या अपनी सामग्रियों को ढोने के लिए किसी सेवक का उपयोग नहीं करते हैं। पहनने के लिए सफेद वस्त्र तथा लकड़ी के कुछ पात्र के सिवा किसी प्रकार का कोई परिग्रह नहीं रखते। आप अकिंचन बाल-ब्रह्मचारी हैं तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—पाँच महाव्रतों के आराधक हैं।

आपके उपदेशों से मध्य भारत, मध्य प्रदेश, बम्बई, कच्छ, सौराष्ट्र आदि राज्य-सरकारों द्वारा गांधी निर्वाण तिथि ३० जनवरी को बूचड़खानों को बन्द करने का निर्णय किया गया है। गुड़गाँव (पंजाब) में विगत अनेक वर्षों से चौगान माता के मन्दिर पर वाल्मीकि हरिजन जाति के लोगों द्वारा हजारों निरीह पशुओं का वध होता आ रहा था, किन्तु आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर उन लोगों ने उन हिंसक कुकृत्यों को सदैव के लिए नहीं करने का व्रत ग्रहण किया।

आपकी वाणी में एवं आचरणों में धर्म-समन्वय, सर्व-धर्म आदरभाव, अहिंसा एवं प्रेम सहज रूप में प्रकट होता है, जिसका अनुभव कोई भी आपके सम्पर्क में आने पर कर सकता है। जो भी एक बार आपसे धर्म की व्याख्या खुले हृदय से सुन लेगा, वह पुनः धर्म को न तो साम्प्रदायिकता की संज्ञा प्रदान करेगा और न तो उसे नास्तिकता का ही जामा पहनाना चाहेगा, ऐसा विश्वास है।

आप एक व्यक्ति नहीं, वरन् स्वयं में एक संस्था हैं। आप जन्मजात समन्वयवादी हैं। आप धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं करते हैं और न किसी नये धर्म की कल्पना में ही आस्था रखते हैं। आपने अंध श्रद्धाओं, परम्पराओं व कुरीतियों से आच्छन्न समाज में स्वस्थ चेतना का संचार किया है। आप सम्पूर्ण संसार में धर्म व अहिंसा की भाषा में एक क्रान्ति लाना चाहते हैं, जो चिरस्थायी व सही विश्व-शान्ति की आधारशिला होगी। इसके लिए आप वर्षों से प्रयत्नशील हैं। इसीके फलस्वरूप आपकी प्रेरणा से बम्बई, भीलवाड़ा, उज्जैन तथा वाराणसी में सर्व-धर्म-सम्मेलनों के आयोजन हुए, जिनका विकास १९५७ में दिल्ली के प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन तथा १९६० (फरवरी) के कलकत्ता में आयोजित द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन के रूप में हुआ और जिनमें संसार के प्रायः समस्त देशों के धार्मिक प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से मुनिश्री की योजना को विश्व-शान्ति के सही मार्ग की संज्ञा देते हुए न केवल सराहा ही, बल्कि अपने-अपने देशों में उसकी शाखाओं की स्थापना कर उसको कार्यान्वित करने का भी निश्चय किया।

डा० कालिदास नाग

वर्तमान निराशापूर्ण आध्यात्मिक वातावरण में एक सच्चे सात्विक नेता की तरह मुनि सुशील कुमारजी ने दो विश्वधर्म-सम्मेलनों का विराट आयोजन किया—पहला दिल्ली में सन् १९५७ में और दूसरा सन् १९६० के प्रारम्भ में कलकत्ता नगरी में।

इस द्वितीय सम्मेलन का हिन्दी रिपोर्ट अब सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत है और इसकी अंग्रेजी प्रति का प्रकाशन भी शीघ्र ही होने वाला है। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के नर-नारियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया और इसकी सबसे बड़ी सफलता परस्पर सद्भावना, मैत्रीपूर्ण वातावरण का विकास था, जिससे सम्मेलन के लक्ष्य को शान्ति मिल सकी। जैन और बौद्ध, हिन्दू एवं मुसलमान, क्रिश्चियन एवं सिक्ख तथा अनेक अन्य धर्मों के अनुयायियों ने बड़े सुन्दर ढंग से परस्पर-सहयोग को मूर्त रूप प्रदान किया। इसलिए हम लोग यह आशा करते हैं कि धीरे-धीरे बहुत शीघ्र ही भारत की ऐतिहासिक भूमि में विश्वधर्म के एक सबल स्थायी केन्द्र का सुन्दर ढंग से संगठन हो सकेगा। इसकी योजना को साकार करने का प्रयत्न चल रहा है। हमारे राष्ट्र की राजधानी, दिल्ली में जमीन प्राप्त करने की व्यवस्था की जा रही है, जहाँ एक सबल समिति कार्य कर रही है। कलकत्ता-चातुर्मास के बाद मुनिजी दिल्ली की ओर अपनी पदयात्रा पर अग्रसर हो रहे हैं। उनके वहाँ पहुँचने से कार्य को और भी गति प्राप्त हो सकेगी।

सम्मेलन की इस हिन्दी रिपोर्ट के देशी एवं विदेशी पाठकों से हम स्वस्थ समालोचनाओं एवं सुझावों की अपेक्षा रखते है। यही एकमात्र आकांक्षा है कि इस प्रकार के आध्यात्मिक सहयोग एवं जागरण से विश्व-एकात्मता एवं विश्व-शान्ति की प्राप्ति हो।

—डा० कालिदास नाग

जसवंत सिंह लोढ़ा

इस ऐतिहासिक सम्मेलन में विश्व के विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के महान प्रतिनिधियों का स्वागत एक महत्वपूर्ण घटना है।

मुझे इस बात की अतीव प्रसन्नता है कि द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन कलकत्ता में हुआ। भारत के इतिहास में बंगाल सांस्कृतिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। बंगाल न केवल राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, विद्यासागर आदि महान धार्मिक एवं सामाजिक सुधारकों की जन्मभूमि है, बल्कि वह चैतन्य, जयदेव, रामकृष्ण, विवेकानंद, श्री अरविंद एवं टैगोर सरीखे महान सन्तों एवं दार्शनिकों के पदरज से भी पवित्र हुआ है। बंगाल का सांस्कृतिक इतिहास इतना उज्ज्वल है कि इसके द्वारा मनुष्य के आत्मिक स्वतंत्रता को शिखर तक पहुँचाने, दुःख-दैन्य से मुक्त करने, संगठन एवं शान्ति आदि के कार्यों को आसानी से भुलाया नहीं जा सकता है।

भारतीय विचारधारा एवं संस्कृति के पुनरजागरण के अग्रणी नेता स्वामी विवेकानन्द ने भारत वर्ष को ठीक ही 'पुण्य भूमि' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम' के महान दर्शन एवं उसके प्रचारक महान साधु-सन्तों की जन्मभूमि कहा है। भारत ने विदेशी आक्रमणों एवं रक्तपात के अनेक दृश्यों को देखा है, पर वह विश्वप्रेम, करुणा, संगठन और शांति को अपने प्राचीन संस्कृति पर अचल रहा है। जहाँ अनेक प्राचीन संस्कृतियों की आज कोई निशानी नहीं है, वहाँ ऋषियों के द्वारा विकसित भारत संस्कृति आज अपने शुद्ध रूप में अक्षुण्ण है और मानव मात्र को संगठन एवं शक्ति के उन्नत पथ पर अग्रसर होने को आह्वान कर रहा है। जहाँ विश्वविजेताओं की कहानियाँ कार्यक्रम से भूल जायेंगी, वहाँ गौतम, याज्ञवल्क्य, महावीर, बुद्ध तथा वैदिक एवं उपनिषदीय ऋषियों की वाणियाँ युग-युग तक गूंजती रहेंगी और मानव मात्र को समाज एवं धर्म के प्रति कर्तव्य-पथ की ओर उन्मुख करती रहेंगी और विश्व को घृणा, हिंसा एवं विभिन्नताओं के बीच भी एकता एवं शक्ति का संबंध प्रबल करती रहेगी।

हम लोग यह आशा करें कि यह सम्मेलन मानव मात्र एवं उसके जीवन विकास एवं विश्वशांति की स्थापना की विविध समस्याओं को सुलझाने के पथ पर अग्रसर होने में एक कदम आगे बढ़ने के समान सिद्ध हो।

— जशवन्त सिंह लोढ़ा

ये हैं महात्मा गांधी, जिन्होंने सर्व धर्म-समभाव एवं अहिंसा के प्रचार को अपना जीवन-व्रत बना कर विश्वधर्म-सम्मेलन की अज्ञात पृष्ठ-भूमि तैयार कर दी थी।

पं० जवाहरलाल नेहरू

और ये हमारे देश के सम्मानीय प्रधान मंत्री, जिन्होंने प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन में अपने मन की वेदना व्यक्त करते हुए कहा था कि अब धर्म, भाषा और जाति के भेद-भाव को दूर किये बिना हमारा जीवन और संपूर्ण राष्ट्र विघटित हो जायेगा।

सन्त विनोबाजी

महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी संत विनोबा, जिनकी विश्वधर्म-सम्मेलन के साथ पूर्ण सहानुभूति है और विश्वधर्म-सम्मेलन को अपना संदेश भेजते हुए जिन्होंने धार्मिक झगड़ों के विरुद्ध पूर्ण सतर्कता से काम करने की कामना प्रकट की है।
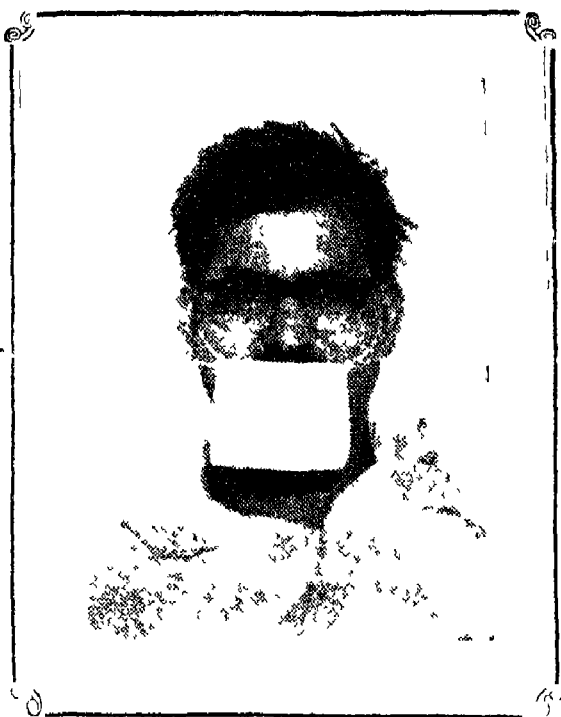
भारत का एक तरुण तपस्वी, जिसकी आँखों में तेज, वाणी में ओज और भावनाओं में वेग है।

नाम है—मुनिश्री सुशील कुमारजी !

- मैं भारत देश आया। वह भारत, जो धर्म और संस्कृति के सुरभित वातावरण में आज तक पला और आगे बढ़ा, जिसके कण-कण में वैराग्य का स्रोत बहता है। जहाँ पावन गंगा, यमुना, कृष्णा और कावेरी की धाराओं से हर मानव का मानस स्निग्ध मधुर है।

- जहाँ गांधी ने अपनी तपस्या से अहिंसा का दीप जलाया, विनोबा ने प्रेम का पैगाम फैलाया, राधाकृष्णन् ने संस्कृति का स्रोत बहाया और जवाहर ने 'पंचशील' का नारा लगाया।

• मैं भारत के अतीत को देखने लगा। उसका पूरा इतिहास धर्म की प्रेरणा से परिपूर्ण है। भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के करुणा और समन्वय के मधुर वचनों से जो देश आकंठ तृप्त है, नानक की प्रेम भरी वाणी का रसास्वादन करके जिस देश ने जहर को भी अमृत बना दिया, अरविंद की कल्पना का स्वर्ग धरती पर उतार लाने की कोशिश में जिस देश ने साधना का नया मार्ग खोल दिया, वह देश कितना सुंदर है !

• मैं भारत के संतों की परंपरा पर मुग्ध हो गया। घर-घर में अपने नाम की भाँति जिस ग्रंथ को याद रखा जाता है, उस रामायण का रचयिता तुलसीदास कितना महान था! भक्ति और साधना के प्रतीक रामकृष्ण परमहंस का जीवन कितना उदात्त था! भगवत् प्रेम में निरंतर रत रहने वाले चैतन्य महाप्रभु ने किस तरह सारी सृष्टि को भक्तिमय बना दिया! और नयी क्रान्ति का नया विचार लेकर आने वाला महर्षि दयानंद भारतीय जीवन का कैसा उज्ज्वल नक्षत्र है।

* महाराष्ट्र के संतों की परंपरा का प्रतिनिधित्व करने वाले ज्ञानेश्वर के जीवन के प्रति मैं आदरमुग्ध हो गया।

* स्वामी रामतीर्थ की जीवन-गाथा ने मुझे आनंद-विभोर कर दिया।

* महर्षि रमण की अध्यात्म साधना की कहानी सुन कर मेरा मन आश्चर्य में पड़ गया और विवेकानंद की बात तो मैंने अपने देश में भी सुनी थी।
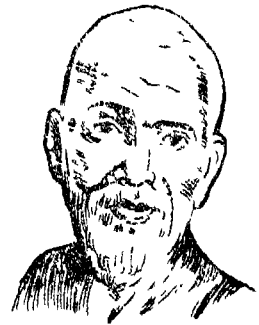
* ऐसे महापुरुषों की पुण्यभूमि में आकर मैं कितना प्रसन्न हूँ! विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिए मुझे जब निमंत्रण मिला, तो मैं भारत-दर्शन की उत्सुकता से भर गया।

• मैं भारत की राजधानी दिल्ली आया। वहाँ मुनिश्री सुशील कुमारजी (मध्य में), मुनिश्री सौभागचंद्रजी (बायें) और इन दोनों के परमादरणीय गुरुदेव श्री छोटेलालजी महाराज (दायें) से मिलने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ।

मैं सम्मेलन-स्थान, जो कि दिल्ली का सबसे बड़ा मैदान है, रामलीला ग्राउंड पहुँचा। विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् आए। सहज ही मेरे हाथ अभिवादन में ऊपर उठ गए।

एक तरफ अपार जनता बैठी थी और दूसरी तरफ देश के सम्माननीय नेतागण सभामंच पर विराजमान थे। वह कितना भव्य दृश्य था! विश्वधर्म-सम्मेलन का यह आयोजन इस देश की महान परंपराओं के अनुकूल ही था !

मैं भाव-विमुग्ध होकर सारा कार्यक्रम देख रहा था,
और सोच रहा था कि आज भी धर्म की प्रेरणा में
कितना अपार तथा असीम बल है !

मैं प्रधान मंत्री नेहरू से मिला। शांति और सहअस्तित्व की प्रेरणा से जिस व्यक्ति ने संपूर्ण विश्व को चमत्कार में डाल दिया है; वे, भारत के प्रधान मंत्री मुझे मित्र की भाँति प्रतीत हुए।
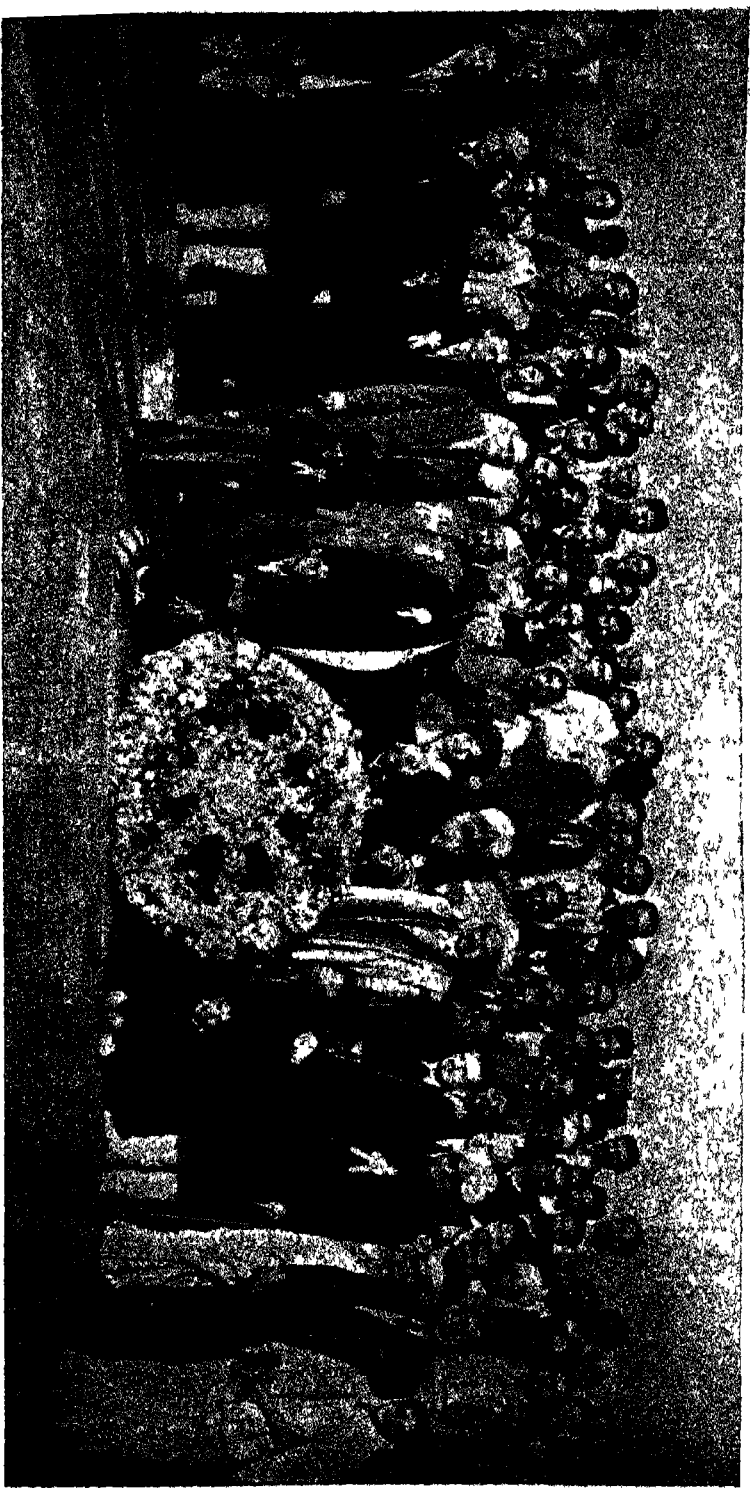
मैं भारत के भाग्य-विधाता महात्मा गांधी की समाधि पर पहुँचा। कितना सुरम्य, शांत और सुखद वातावरण था! मिट्टी का कण-कण भी चिरशांति का पैगाम सुना रहा था। मै गद्‌गद था!

ये दो महान विचारक मिल कर देश और दुनिया में धर्म के झगड़ों को मिटाना चाहते हैं। इनका अपना जीवन कितना प्राणमय है। एक हैं विश्वधर्म की प्रेरणा के सूत्रधार सुशीलमुनि और दूसरे हैं विश्वधर्म-संगम के अध्यक्ष संत कृपालसिंह ! दोनों को मेरे कोटि कोटि प्रणाम !

•

इस पुण्यभूमि में एक सप्ताह रह कर मैं स्वदेश के लिए रवाना हुआ। अब मेरे साथ हजार-हजार स्मृतियाँ थीं। मैं खाली आया था, पर झोली भर कर जा रहा था। मुझे सब लोगों की याद नित्य-निरंतर बनी रहेगी। ओ भारत! मेरे प्रणाम स्वीकार करो। यदि हो सका तो फिर शीघ्र ही आऊँगा!

अलविदा!

•

मैं अपने देश पहुँच कर भारत के शान्ति-संदेश को और भी अधिक तीव्रता से याद करने लगा। यदि हम आज इस संसार का निर्माण शान्ति से नहीं करेंगे, तो हमारी अगली पीढ़ी का क्या होगा ? ये करुणामय मासूम शिशु शान्ति, धर्म और अहिंसा के भरोसे पर ही जीवित हैं।

•

यह बालक ऊँचा उठ-उठ कर अपने नये जीवन का निर्माण कर रहा है। क्या हम हिंसा, युद्ध, स्वार्थ तथा अधर्म के कीचड़ में फँस कर इस उठते हुए जीवन को दबोच डालना चाहते हैं ? कितना बड़ा प्रश्न-चिह्न है यह दुनिया के सामने !

•
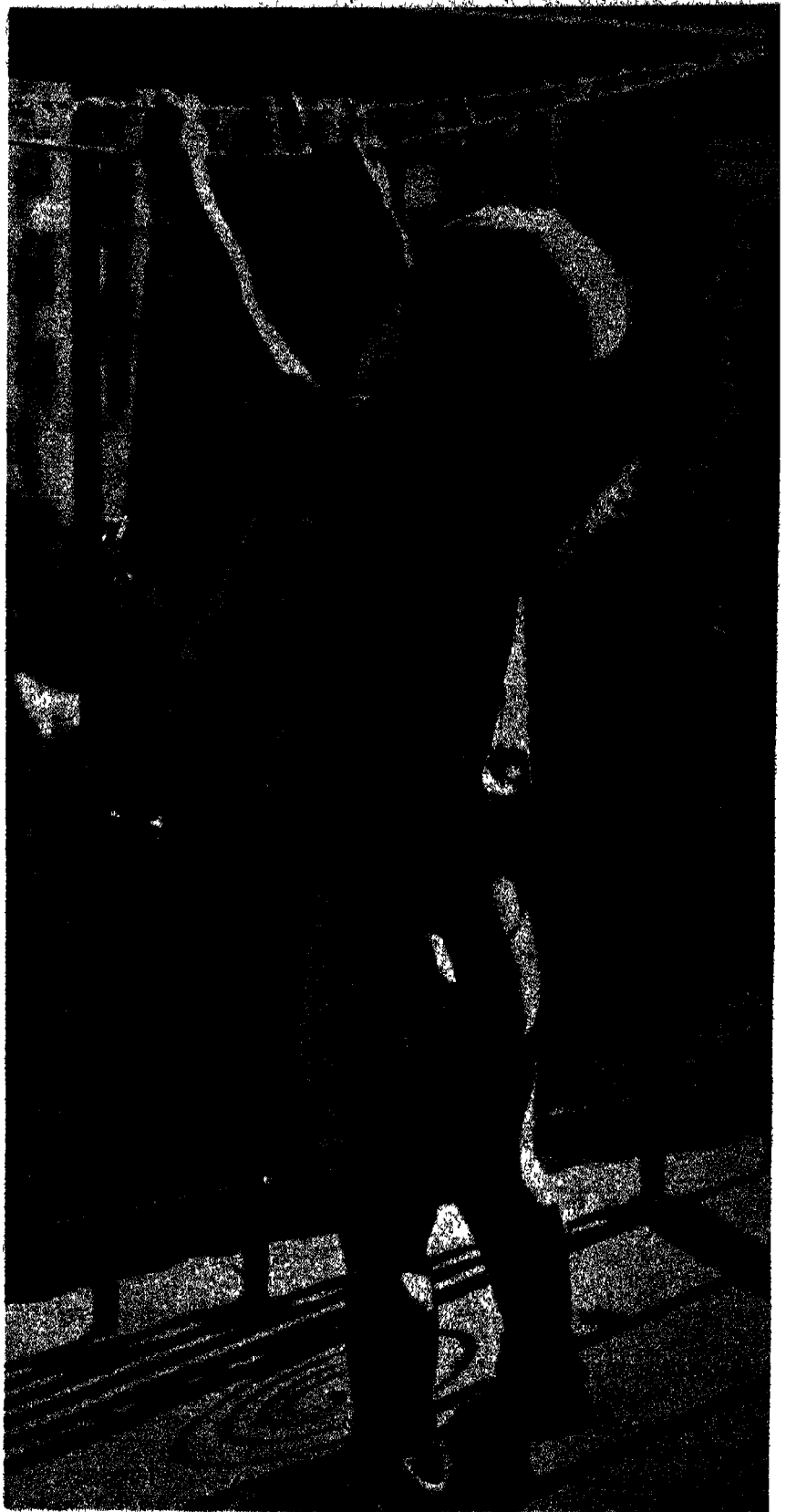
भारत में विश्वधर्म सम्मेलन
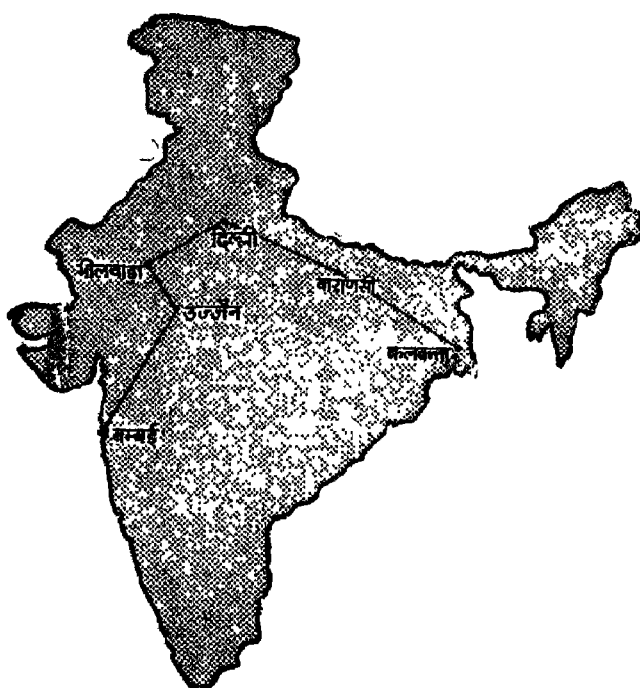
"विश्व धर्म-सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन भारत की महानगरी कलकत्ता में आयोजित किया गया है, इस अवसर पर आप अवश्य उपस्थित होकर हमें कृतार्थ करें।" मुझे निमंत्रण मिला! विश्वधर्म-संगम के

पूर्वाञ्चल विभाग ने मुझे याद किया। कितना रंगीन सपना था वह! एक बार फिर भारत की ओर मेरा मन घूम गया। शानदार पेड़ों से घिरी हुई खेतों और तालाबों वाली यह शान्त भूमि, ऊँची-नीची जमीन, उभरी पहाड़ियाँ, मूक शिलाएँ और प्राचीन पत्थर, घाटियों की ओर बहती हुई वेगवती जल-धाराएँ, ऐसे मनोरम भारत में फिर एक बार आने का यह वासंती अवसर कैसे खोया जा सकता था? वह भूमि, जिसकी पवित्र नदियों के तट मंदिरों से सुशोभित हैं और दक्षिणी महासागर, जिसके मंदिरों के चरण पखारता है, जहाँ धर्म, ईश्वर और देवताओं की चर्चा से गली-गली गुँजित है, प्रस्तर-शिलाओं पर अंकित जिसका अतीत आज भी सारे देश में जगह-जगह उपलब्ध है और हर जगह जहाँ गाँव हैं। ऐसा सुंदर भारत, उसकी महानगरी कलकत्ता और वहाँ मेरे पुराने श्रद्धेय मुनिश्री सुशील कुमार!

मैं कलकत्ता की ओर चल पड़ा!

बंबई का एयर पोर्ट ! वहाँ से पूरे देश की परिक्रमा करते हुए मैं पहुँचा हावड़ा स्टेशन ! कई नये-पुराने चेहरे मेरा स्वागत करने आये ! रवीन्द्रनाथ का देश बंगाल ! "सोनार बाँगला" ! गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का शहर कलकत्ता ! महान मानव-मेदिनी से भरी सड़कें ! डा० बी० सी० राय के नेतृत्व में प्रगति करने वाला जन-समूह !

त्रिदंडी स्वामी के, जिन्होंने भारतीय अध्यात्म विद्या के अभ्यास में अपना जीवन लगाया है, मैंने दर्शन किये ! जिस महान सम्मेलन में मैं भाग लेने आया था, उसका उद्घाटन इन्होंने ही किया।

कार्यक्रम आरंभ हुआ ! मनोहर मंच पर धर्म और अहिंसा के विशिष्ट साधक विराजमान थे और मैं सब मुग्धभाव से सुन रहा था, समझने का प्रयत्न कर रहा था।
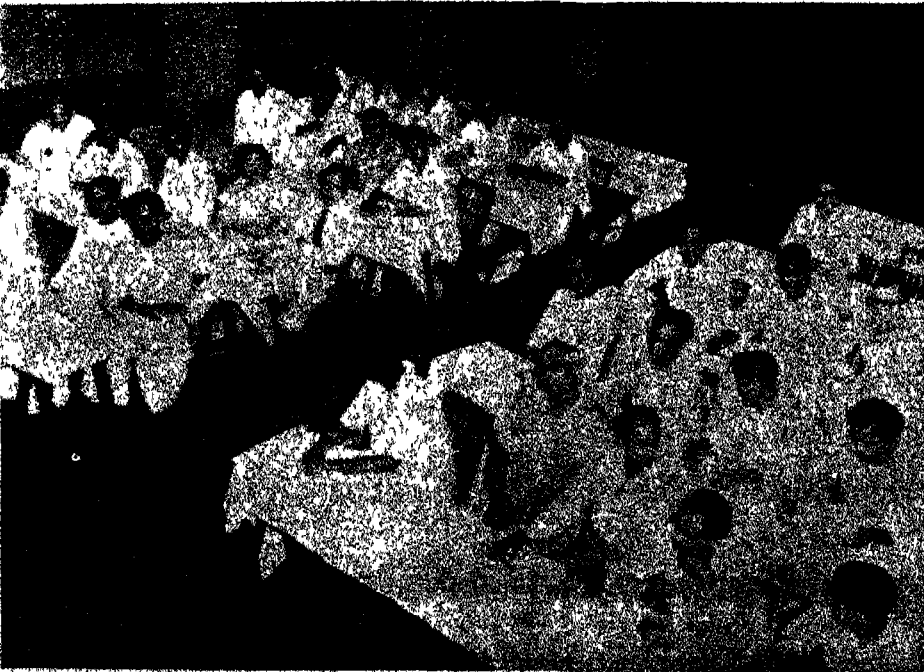
मैं अपने नये और पुराने भारतीय मित्रों के साथ और खास तौर से इस सारे आयोजन के महान प्रेरक मुनि सुशील कुमार के साथ कितना प्रसन्न था ! मैंने अनेक धार्मिक और सामाजिक प्रश्नों पर मुनिजी के साथ बहस की ! वे मेरे हर सवाल का सही उत्तर दे रहे थे !

विश्वधर्म-संगम के प्रमुख नेताओं और संचालकों को संसार की समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए देख कर मन में आशादीप जला ! अभी भी संसार को बचाया जा सकता है, यह विश्वास हुआ। हम सब साथ मिल कर अहिंसा की पुनः स्थापना कर सकते हैं !
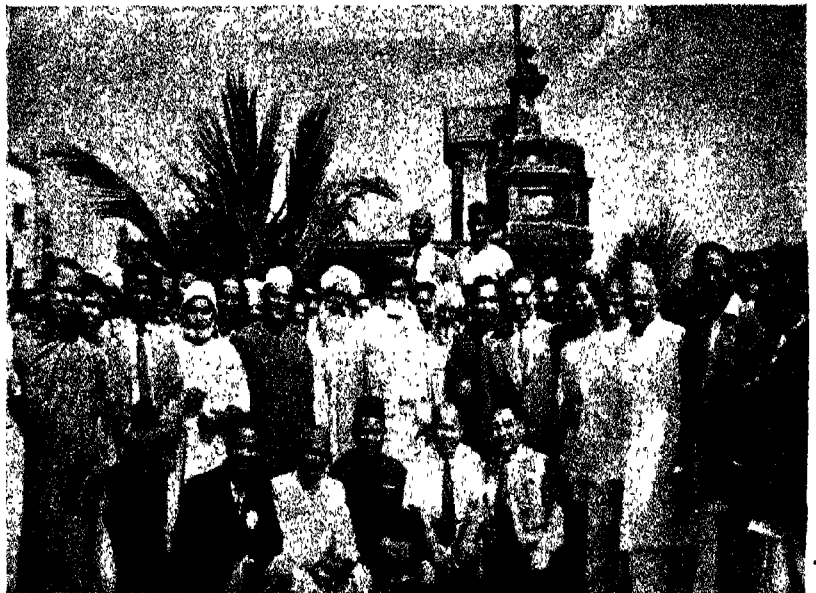
जिन्होंने इस सम्मेलन में रात-दिन परिश्रम किया—वे, संत कृपालसिंह, हीरालाल चोपड़ा, जसवंतसिंह लोढा, भालचंद्र शर्मा आदि कितनी मेहनत कर रहे थे ! मुनिजी के मार्गदर्शन में सब लोग अतिथियों का स्वागत और गंभीर विचार-विनिमय में संलग्न थे । कितने ही देशों के प्रतिनिधि आए थे ! सबकी एक ही लगन थी, धार्मिक भ्रातृभाव और अहिंसा की स्थापना !

ये और ऐसे कितने ही भारतीय विचारक इस सम्मेलन में विचार-विनिमय के लिए आये।

यह और ऐसी ही कितनी भारतीय महिलाएँ इस मोहक आयोजन की तैयारी कर रही थीं।

ये और ऐसे कितने ही प्रतिनिधि इस सम्मेलन को सफल करने के लिए कलकत्ता आये थे।
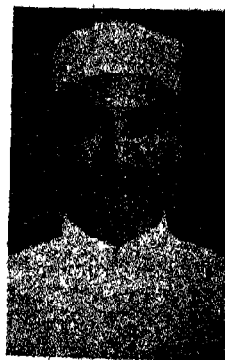
ये और ऐसे ही कितने साहित्यिक कार्यकर्ता प्रतिनिधियों से घुल-मिलकर सम्मेलन को यशस्वी बना रहे थे।

धर्म और विज्ञान

●

धर्म और विज्ञान मनुष्य के पुराने साथी हैं। प्रारम्भ से ही धर्म और विज्ञान के सहारे मनुष्य ने अनेक उत्थान एवं पतन देखे हैं। धर्म और विज्ञान, दोनों ही मनुष्य-जीवन के साधन हैं। आनन्द-जनित क्षुधा की तृप्ति ही मनुष्य का चरम उद्देश्य है और यह जीवन इस जगत् के धरातल पर खड़ी की हुई मनुष्य की सबसे बड़ी प्रयोगशाला है।

मनुष्य-जीवन के दो ही केन्द्र-बिन्दु हैं : एक अन्तर जीवन और दूसरा बहिर्जगत्। अन्तर-जीवन में वह धर्म का प्रकाश लेकर प्रवेश करता है। अब तक मनुष्य ने अपने जीवन के प्रति जितने भी विश्वास और धारणाएँ बनायी हैं, वे सभी उसकी अपनी नहीं हैं, बल्कि धर्म की देन हैं। आत्मा व अनात्मा, जड़ व चेतन, ब्रह्म व माया, शाश्वत जीवन व प्रवाहमय स्फुलिंग सब कुछ धर्म के द्वारा ही संचालित होते हैं। आस्तिक व नास्तिक सभी प्रकार की विचार-धाराएँ धर्म में समाविष्ट हो जाती हैं। मनुष्य चाहे किसी भी विचारधारा का अनुयाई हो, उसने अपने जीवन में चाहे किसी भी प्रकार के विश्वास को स्थान दिया हो, लेकिन अन्तर-जीवन के प्रति सभी प्रकार की धाराणाएँ धर्म से उद्भूत हुई हैं और बहिर्जगत् के प्रति हमारे सभी प्रकार के विश्वास विज्ञान ने जमाये हैं। चाहे वे विश्वास और धारणाएँ छह द्रव्यों के समूह की हों, मेरु पर्वत के चारों ओर अवस्थित हों अथवा अल्ला और खुदा की छह दिनों की सृष्टि हो, या जिहोवा का जहूर, अल्ला का नूर, परमात्मा का अंश, 'सर्वम् खलु इदं ब्रह्म' की रचना अथवा १९ करोड़ वर्गमील का ग्लोब हमारे मस्तिष्क में बैठा हो, किन्तु ये सभी धारणाएँ विज्ञान से उत्प्रेरित हैं।

धर्म और विज्ञान अन्तर और बाहर के विश्वासों का महल खड़ा करता है। जीवन के स्वप्न और जगत् के दर्शन का सम्मिश्रण—विज्ञान और धर्म—ने सृष्टि का नियन्त्रण अपने हाथों में रखा है। मनुष्य की महानता एवं मनुष्य की क्षुद्रता मनुष्य के विचारों से बँधी है और मनुष्य के विचार धर्म तथा विज्ञान से बँधे हैं। धर्म और विज्ञान मौलिक वस्तु नहीं है, क्योंकि धर्म और विज्ञान का मूल चेतन और जड़ के स्वतःसिद्ध अस्तित्व पर टिका हुआ है। संसार के करोड़ों एवं अरबों मनुष्यों की आकृतियाँ परस्पर नहीं मिलतीं, किन्तु कोई भी आकृति मौलिक नहीं है, कुछ आकृतियों का पूँजीभूत रूप ही है तथा वे कुछ आकृतियाँ भी प्रकृति में विद्यमान उपकरणों का पूँजीभूत रूप हैं और प्रकृति के उपकरण भी प्रकृति के ही हाथ में हैं। जीवन के प्रति जो विश्वास है, उसीका नाम धर्म है। सभी धार्मिक विश्वास जीवन के प्रति अनेक सम्भावनाओं का पूँजीभूत रूप हैं और वे अनेक प्रकार की सम्भावनाएँ जीवन की विविधताओं पर अवलम्बित हैं।

अब तक मनुष्य ने प्रकृति के जिन रूपों को निहारा है और जीवन के प्रति जिस प्रकार की सम्भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है, उन अभिव्यक्तियों एवं उपयोगिताओं को धर्म और विज्ञान के नाम से प्रतिष्ठित कर दिया गया है। विज्ञान के बिना धर्म जड़ता है और धर्म के बिना विज्ञान एक उन्माद है। धर्म और विज्ञान दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

धर्म का प्रारम्भिक रूप

प्रारम्भ में मनुष्य धर्म के प्रति इतना आस्थावान था कि वह धर्म के क्षेत्र के बाहर किसी अन्य प्रकार की सत्ता को स्वीकार करने की कल्पना तक नहीं कर सकता था। उस विश्वास का यह फल निकला कि धर्म ने सभी प्रकार के अन्तर-बाह्य विश्वासों को अपने अन्दर समेट लिया तथा धर्म के अखण्ड राज्य के बाहर जीवन और जगत् की कोई भी समस्या का समाधान नहीं रहने दिया। यही कारण है कि पिछले हजार वर्षों में मनुष्य ने अपने इतिहास को धर्म के इतिहास के रूप में देखा है। मनुष्य के युद्ध भी धर्म-युद्ध थे, जन्म से मृत्यु तक के सभी कार्य, कल्याण एवं अकल्याण के सभी पथ धर्म के अन्तर्गत मान लिये गये थे। किसी भी धर्म-शास्त्र को उठाकर देखें तो पता चलेगा कि वह मनुष्य को केवल नीति के उपदेश, अन्तर के विश्वास एवं जीवन के प्रति कुछ धारणाओं और साधनाओं का उपदेश करके विराम नहीं ले लेता है, अपितु वह एक वैज्ञानिक की तरह जगत के तत्त्वों एवं रहस्यों का उद्घाटन करता है, अभियन्ताओं (इंजीनियरों) की तरह सर्वे करता है और पहाड़ों, पत्थरों, नदी-नालों आदि का सांगोपांग वर्णन उपस्थित कर देता है। आज संसार का कोई ऐसा धर्म-शास्त्र नहीं है, जिसमें केवल आध्यात्मिक शान्ति एवं नीति के ही उपदेश दिये गये हों, बल्कि एक-तिहाई भाग भूगोल, खगोल, ज्योतिष एवं इतिहास आदि से भरा पड़ा है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक होते हुए भी सर्वथा पृथक् अस्तित्व रखते हैं। धर्म का मूल क्षेत्र अन्तर-जीवन है तथा विज्ञान का क्षेत्र भूत-जगत् है। आज युग बदल गया है। धर्म के अनेक रूपों का अनुसंधान करने से जैसे अनेक प्रकार की साधना एवं परम्पराएँ विकसित हुई हैं, वैसे ही विज्ञान के क्षेत्र में भी भूत-जगत् का बहुत विस्तृत अनुसंधान हुआ है।

इन पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम कर लिया है। धर्म के अंदर का नीति-शास्त्र; आज 'एथिक्स' अथवा समाज-शास्त्र का रूप लेकर अलग ढंग से विकसित हो रहा है तथा कला व सौन्दर्य-शास्त्र अपने पृथक् स्वरूप का निर्माण कर रहा है, भूगोल व खगोल, चिकित्सा एवं मनोविज्ञान अपने अलग-अलग क्षेत्रों में लगे हुए हैं। हमारे देखते-देखते इन पिछले दस वर्षों में मनोविज्ञान एवं वनस्पति-शास्त्र ने अपना एक अलग राज्य कायम कर लिया है। इसलिए अब धर्म के हाथ में केवल अन्तरात्मा के प्रति धारणाएँ निर्माण करने, आत्म-साक्षात्कार करने एवं आध्यात्मिक उन्नति करने का ही कार्य रह जायगा। अब धर्म वाले लोग स्कूल खोलकर धर्म का प्रचार करने का स्वप्न छोड़ दें। मन्दिर एवं धर्म-प्रासादों का निर्माण कर धर्म का प्रभाव बढ़ाने के स्वप्न लेने भूल जायँ। धर्म के चिह्न एवं उपकरणों के आश्रय पर अपने-अपने धर्म के पृथक् विश्वासों के आधार पर राज्य करने की कल्पना को तिलांजलि दे दें। ये सब धर्म के क्षेत्र की बातें नहीं हैं।

धर्म वस्तु की कक्षा नहीं है, वनस्पति का विज्ञान नहीं है, पदार्थ-विद्या तथा भू एवं नभ का सर्वेक्षण नहीं है। धर्म केवल आत्म-साक्षात्कार एवं आत्म-स्वभाव का नाम है। धर्म के नाम पर जितने भी मठ बनाये गये वे सब अपनी-अपनी परम्पराओं, सम्प्रदायों एवं स्वार्थों के म्यूजियम मात्र रह गये हैं। उनमें धर्म बन्द नहीं हो सका और न बन्द हो ही सकता है। धर्म जीवन के साथ इस प्रकार घुला-मिला है—जैसे चीनी के साथ मिठास, या जल के साथ शीतलता। धर्मवालों को राजनीति पर अधिकार करने की इच्छा छोड़ देनी चाहिए। जब हम धर्म के नाम पर गलत ढंग से सामाजिक कामों में हस्तक्षेप करते हैं, तब धर्म की ग्लानि तो होती ही है, साथ ही पराजय का भी मुख देखना पड़ता है। यह सब धोखा एवं प्रवञ्चना है, जो हम इस्लामी राज्य, बुद्धिष्ट राज्य या क्रिश्चियन राज्य की बातें और कल्पनाएँ करते हैं। राष्ट्र के समस्त व्यक्ति अपने आप में धर्म के द्वारा अपने जीवन को नियन्त्रित एवं अनुशासित कर सकते हैं, किन्तु जब हम धर्म के द्वारा दूसरों को अनुशासित करने का झण्डा उठाते हैं तब हमारे हाथ से धर्म खिसक जाता है।

धर्म और विश्व-शान्ति

●

आज संसार शस्त्रास्त्रों की होड़ में दौड़ लगा रहा है एवं विध्वंस की कल्पना से अशान्त है। उसका कारण विज्ञान का विकास नहीं और न औद्योगिक समृद्धि ही इसके लिए दोषी या उत्तरदायी है। विज्ञान मनुष्य को भूत-शक्ति प्रदान करता है। उसका उपयोग और प्रयोग किस तरह किया जाय, इसका निर्णय विज्ञान नहीं करता, स्वयं मनुष्य करता है। विज्ञान का उपयोग या दुरुपयोग मनुष्य की अपनी बुद्धि का निष्कर्ष है। अतः किसी भी प्रकार से जगत् की अशान्ति एवं मानव-सभ्यता के विध्वंस के लिए विज्ञान को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। मनुष्य की बुद्धि पर सद्-असद् का निर्णय करने के धार्मिक दायित्व को जब से हटा दिया गया है तथा धर्म को अन्तर-जीवन से निकालकर मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों और धर्म-शास्त्रों में बन्दी बना दिया गया है, तब से ही मनुष्य इस विध्वंस-लीला का दृश्य देख रहा है।

हम जगत् में धर्म का राज्य नहीं चाहते हैं, किन्तु यदि बुद्धि धर्म के अनुशासन से बाहर निकल गई तो यह बुद्धि-पिशाचिनी बनकर सारे संसार को खा जायगी। इसलिए धर्म का शासन आत्मा पर होना चाहिए। अहिंसा, संयम और तप, ज्ञान, भक्ति एवं उपासना ये आत्मा के दैवी गुण हैं। इन दैवी गुणों से ही मनुष्य अपने अतिमानवत्व या देवत्व को जगाये रख सकता है। दैवी गुणों का ही नाम धर्म है। धर्म मनुष्य के आत्म-संतोष स्वाभिमान, स्वावलम्बन एवं स्वाधीनता का ही समन्वित रूप है। आज जगत् की अशान्ति धर्म के अभाव के कारण हुई है। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति, समाज-शास्त्र, भूत-विद्या, पदार्थ-विद्या, इन सभी ने धर्म से अपना अस्तित्व पृथक् कर लिया है, किन्तु सद्-विवेक के अभाव में सभी शक्तियाँ मनुष्य के लिए हितकर नहीं हो सकती और न वरदान ही बन सकती है। हम इन सभी विद्याओं का विकास चाहते हैं, किन्तु श्रेय एवं अभ्युदय के लिए। श्रेय एवं अभ्युदय दैवी गुण है। धर्म के द्वारा इन्हीं दैवी गुणों का विस्तार किया जाता है। इसीलिए हम शिक्षा को संप्रदाय-परायण धर्माचार्यों के हाथों में नियन्त्रित नहीं देखना चाहते हैं और न इस विद्या को राजनीति के अखाड़े में लड़नेवाले पहलवानों की कठपुतली ही बना देना चाहते हैं। विद्या एक स्वतन्त्र विषय है। वह जगत्

के प्रति हमारे अज्ञान को नष्ट करे और हमें जीवन के अभ्युदय के लिए प्रेरित करे, इसके लिए हम धर्महीन विद्या नहीं, अपितु धर्मयुक्त विद्या के विकास को ही विश्व-शान्ति का मूल कारण समझते हैं।

संस्कृति के आदान-प्रदान के लिए एवं इतिहास की भूलें सुधारने के लिए 'यूनेस्को' ने मानव-जगत् के साहित्यिक पुनरुद्धार के लिए जो बीड़ा उठाया है, वह स्तुत्य है; किन्तु विद्या पर किसी भी प्रकार का प्रभुत्व हमें जीवन और जगत् के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं दे सकता। अतः धर्म-विवेक और वस्तु-विद्या की स्वतन्त्रता विद्या का सबसे बड़ा गुण है।

आज जिस प्रकार धर्म पर सम्प्रदायों के बड़े-बड़े आचार्यों का प्रभुत्व छाया हुआ है, उसी प्रकार विज्ञान और वैज्ञानिकों पर अपने-अपने स्वार्थों के लिए लड़नेवाले राजनीतिज्ञों का पूरा शासन जमा हुआ है। अगर वैज्ञानिकों पर से राजनीतिज्ञों का दबाव हटा लिया जाय, तो कोई भी वैज्ञानिक विज्ञान का उपयोग मनुष्य के ध्वंस के लिए नहीं, बल्कि मनुष्य के कल्याण के लिए करना ही अपने जीवन का परम कर्तव्य समझेगा। धर्म मे वह शक्ति है कि वह सत्ता से मदोन्मत्त राजनीतिकों को सद्बुद्धि प्रदान कर सके, किन्तु जब तक वह स्वयं सम्प्रदायों एवं स्वार्थी सम्प्रदायाचार्यों के नियन्त्रण मे आबद्ध है, तब तक ठीक काम नहीं बन सकता है। यही कारण है कि आज विश्व-विध्वंस की सम्भावना के समय भी धर्म अपना उत्तरदायित्व पूर्ण रूप से अदा नहीं कर रहा है।

विश्वधर्म-सम्मेलन एकमात्र मार्ग है, जिससे लोग धर्म के प्रति अपनी-अपनी मान्यताओं और धारणाओं को विशुद्ध बना सके। विश्वधर्म-सम्मेलन का मंच धर्म के नाम पर चलनेवाले अंधविश्वासों और रूढ़ियों के विरुद्ध उद्घोषण करता है और विश्वधर्म-संगम का मंच ही समस्त जगत् के धर्माचार्यों के मनोमालिन्य एवं संकीर्णताओं को दूर कर विश्व-बन्धु-भाव एवं 'विश्वभूत हिते रतः' की ओर प्रेरित करने में समर्थ है। यही कारण है कि हम विश्वधर्म-सम्मेलन को विश्व-शांति की मूल कड़ी समझते हैं। क्योंकि जगत् की अशांतियों को मिटाने का एकमात्र उपाय विश्व-राज्य का निर्माण ही माना जाता है, किन्तु विश्व राज्य से पहले विश्व-धर्म का विकास होना बहुत आवश्यक है।

विश्व-धर्म का अर्थ नया फिरका, अलग पंथ बनाना नहीं है या कोई नया धर्म भी खड़ा करना नहीं है, अपितु धर्म के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण ग्रहण करना है, जो हमें भगवान महावीर के अनेकान्तवाद में, भगवान बुद्ध की करुणा में तथा भगवान राम और भगवान कृष्ण के मर्यादा-पुरुषोत्तम एवं लोकरक्षक के रूप मे प्राप्त होता है। प्रभु ईसा के प्रेम, हजरत मुहम्मद के भ्रातृत्व, कनफूसियस के नैतिक जीवन एवं ताओ के आध्यात्मिक जीवन मे जो हमे उद्बोध मिलता है, मूसा की उद्घोषणाएँ एवं श्री जरथुस्त्र के प्रेरक वचन जिस अभ्युदय की ओर हमें ले जाना चाहते है, हम उसीके वास्तविक दृष्टिकोण को धर्म का स्वरूप मानते हैं। यदि धर्म के नाम से घृणा और संकीर्णता को मिटा दिया जाय तो यह धर्म-शास्त्र हमारी मनुष्य जाति के लिए प्रकाश-स्तम्भ के समान है। हम धर्माचार्यों एवं धर्मों के निष्कर्ष के रूप में दुनिया के समस्त राष्ट्रों मे धार्मिकता के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करना चाहते हैं और विज्ञान के साथ-साथ धर्म का भी पूरा विस्तार देखना चाहते हैं, क्योंकि विज्ञान और धर्म का असन्तुलन ही जगत् की अशान्ति का कारण है। जब तक धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक के रूप मे खड़े हैं, संसार विनाश के अन्धकार में भटक नहीं सकता। हमारे जीवन मे वह जब तक अस्तित्व बनाये है, मनुष्य के अँधेरे मे भटकने का डर नहीं है और न विज्ञान के विनाश की कल्पना का ही अस्तित्व है।

यान्त्रिक उत्कर्ष का प्रभाव

●

पिछली दो शताब्दियों में औद्योगिक समृद्धि एवं यान्त्रिक कार्य-कुशलता ने मनुष्य को भौतिक वैभव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। आज मानव प्रकृति-विजय की दुन्दुभि बजाता हुआ बड़ी द्रुत गति से आगे बढ़ता जा रहा है। इस दौड़ में उसने देश, काल, भू एवं नभ की परिसीमाओं को मापने का भी प्रयास किया है। यद्यपि सर्वप्रथम जब औद्योगिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ था, तो उस समय कौन जानता था कि उसका विकास इस सीमा तक पहुँच जायेगा, उस समय चाँद तक पहुँचने की ही नहीं, बल्कि मानव-निर्मित उपग्रहों द्वारा वहाँ जाकर बसने का स्वप्न किसने देखा था? जहाँ इस औद्योगिक एवं यान्त्रिक प्रगति ने मानव को भौतिक उपयोग के अनेक प्रकार के साधनों से युक्त किया है, वहाँ एक अभिमान का भी विकास होता जा रहा है कि एक दिन वह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेगा तथा यान्त्रिक पद्धति से मनुष्य को गढ़ सकेगा एवं उसमें जान भी डाल सकेगा। फलस्वरूप लोगों में नास्तिकता की वृद्धि तथा धर्म एवं ईश्वरत्व की भावनाओं में विश्वास का ह्रास होता जा रहा है। उसे अपनी शक्तियों का अभिमान बढ़ता जा रहा है। यद्यपि धर्म भी प्रत्येक व्यक्ति को उसके अन्तर की अतुलित आत्मिक शक्तियों की जानकारी प्रदान कर उसकी प्राप्ति एवं उसके सदुपयोग का मार्गदर्शन करता है, पर आज मानव अपनी जिन शक्तियों के अभिमान के नशे में दिन-प्रति-दिन वास्तविकता एवं सद्ज्ञान से दूर होता जा रहा है, वह आत्मा एवं अन्तर की शक्ति नहीं, बल्कि उसके खुराफाती मस्तिष्क की देन—हिंसक एवं संहारक शस्त्रास्त्रों एवं यन्त्रों की बाह्य शक्तियाँ हैं। वे समुद्र के ऊपरी सतह पर दृष्टिगोचर होनेवाले ज्वार हैं, न कि उसके अन्तर में छिपा बड़वानल का विस्तृत एवं अतुलित शक्ति-पुंज। आज मानव ने अन्तर-जगत् के अमृत के बदले बाह्य जगत् के शराब के नशे की शक्ति को पा लिया है और अपने को अन्तर से दीन, हीन एवं क्षीण तथा बाहर से अनियन्त्रित पा रहा है। इन्हीं शक्तियों को धर्मशास्त्रों में दैवी एवं आसुरी सम्पदा—देवयान एवं पितृयान—के रूप में चित्रित कर समझाया गया है।

इसी वास्तविक वस्तुस्थिति के कारण जहाँ एक ओर इस आधुनिक यान्त्रिक एवं औद्योगिक विकास के द्वारा मनुष्य के भौतिक सुखोपभोग के नाना प्रकार के साधनों की प्रचुर मात्रा एवं प्रकारों की वृद्धि हुई है और वह अल्पतम काल में पक्षियों की भाँति उड़ान भरकर विश्व का चक्कर लगा सकता है, दूसरे ग्रहों-उपग्रहों में भी जाकर अपनी घर-गृहस्थी को आबाद करने के स्वप्न को साकार होते देखने की आकांक्षा कर सकता है, पर दूसरी ओर आज सारा संसार, समस्त मानव जाति एवं समस्त प्राणी-जगत्, चर एवं अचर अर्थ एवं यन्त्र के चक्कर में पिसता जा रहा है! हिंसक एवं संहारक शस्त्रास्त्रों एवं आयुधों का अनुसन्धान, अन्वेषण, विकास एवं निर्माण ने उसे महाप्रलय एवं महाविनाश के कगारों पर ला खड़ा कर दिया है।

पर सूक्ष्म दृष्टि से अन्वेषण करने पर महाप्रलय एवं महाविनाश की काली घटाओं से आच्छन्न इस विश्वाकाश के अन्तर में छिपी ऐसी विद्युत शक्तियाँ विद्यमान मिलती हैं, जिनकी अपरिमेय शक्तियों का दर्शन यदा-कदा चपला की चमक की भाँति घटनाचक्र के मध्य सारे विश्व को किंचित् काल के लिए आलोकित करता-सा दृष्टिगोचर हो जाता है। ऐसा लगता है कि विश्व के विध्वंस का भय एवं भूविस्फोट का आतंक हमारे इस लहलहाते जगत् से दूर हो रहा है और हम अन्धकार से प्रकाश की ओर एवं हिंसक दुनिया से अहिंसा की ओर बढ़ रहे हैं तथा प्रेम एवं शान्ति के स्वर्गीय राज्य में प्रवेश कर रहे हैं।

माना कि शस्त्रास्त्रों की संहारक शक्तियों से किसीको भय लगता हो, किन्तु गहराई में उतरने पर हमें मालूम होगा कि लाखों शस्त्रास्त्र एवं कोटि-कोटि उद्‌जन एवं अणु बम भी मिलकर किसी एक मनुष्य के सिर के एक बाल तक को किसी प्रकार की हानि एवं क्षति नहीं पहुँचा सकते, जब तक कि उसे मनुष्य की कुमति एवं दुर्बुद्धि का सहारा नहीं मिलता है। हानि-लाभ का केन्द्र-बिन्दु तो मनुष्य है, मनुष्य का विचार है और मनुष्य की भावनाएँ हैं।

मनुष्य : एक विचित्र प्राणी

●

संसार के इस समस्त भूत जगत् में मनुष्य एक श्रेष्ठ शक्ति है। वह विचारों का एक यन्त्र है और विचार उसके प्रेरक हैं। उस पर विचारों का ही शासन चलता है। उसके विचारों की उत्तेजना एवं प्रतिहिंसा ही जगत् में प्रतिशोध एवं विनाश का दृश्य उपस्थित करती है और विचारों के बदलते ही समूचा जगत् बदल जाता है। मनुष्य के इन्हीं विचारों की विलक्षण शक्तियों के प्रवाह की दिशा को यदि अन्तर की ओर मोड़ दिया जाता है, तो उसमें अदम्य उत्साह, अतुलित शक्ति, अनुपम शौर्य, धैर्य एवं विश्वास का निर्माण होता है और इन गुणों के सहारे ऐसी परिस्थितियों में भी जब सारा विश्व बारूद-घर-सा बना हो और अग्नि की एक छोटी-सी शलाका ही ऐसे महाविनाश को साक्षात् रूप में उपस्थित कर सकती है कि जिसकी कल्पना कर सकना भी कठिन है! वह अपना जीवन-निर्वाह करता रहता है तथा भविष्य के लिए भी आशाएँ सँजोये रहता है और उसकी स्वर्णिम कल्पनाएँ करता रहता है। इस अन्धकार में भी वह निरन्तर अपने मार्ग की खोज एवं निर्माण करता रहता है। सृष्टि के आरम्भ से ही वह इस जीवन-संघर्ष में लगा है और जिसे धर्मशास्त्रों में देवासुर संग्राम के रूप में बड़े ही मनोरम ढंग से चित्रित किया गया है।

अतः आधुनिक तिमिराच्छन्न वातावरण में भी हम पाते हैं कि मनुष्य की इस विचित्रता ने प्रथम विश्वयुद्ध के गर्भ से 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र-परिषद्) को जन्म दिया तथा द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह परिस्थितियों में से संयुक्त राष्ट्र-संघ (यूनायटेड नेशन्स ऑरगैनिजेशन) का आविर्भाव हुआ। यह 'पैन्डोरा बक्स' की उस कथानक का, जिसमें यह बताया गया है कि किस प्रकार नियन्त्रण की सीमा को लाँघकर उसने जब उस बक्स को खोल दिया, जिसको छूने की भी मनाही थी, तो उसमें से सर्वप्रथम तो रोग, शोक, दुःख, दैन्य के भयंकर कीटाणुओं के समुदाय निकलकर चारों ओर से उसे डँसकर उसके जीवन को कष्टप्रद बना दिया, पर उसी बक्स से अन्त में आशा की परी का आविर्भाव हुआ और उसे कष्टों से राहत मिली तथा श्रीकृष्ण-जन्म की उस गाथा को जिसमें उनके जन्म-समय की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए बताया गया है कि किस प्रकार जब चारों ओर कंस रूपी यंत्र की शक्तियों के संहार की काली घटाएँ सर्वत्र व्याप्त थीं और वासुदेव अर्थात् सारी पृथ्वी उसके संत्रास के कारागार की बेड़ियों में जकड़ी थी, संत्रस्त मानव में आशा का संचार करने तथा त्राण दिलाने के लिए उसी कारागार की चहारदीवारी के अन्दर ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। स्मरण बरबस आता है। यह संयुक्त राष्ट्र-संघ विगत राष्ट्र-परिषद् से अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है, यह स्पष्ट है। आज विश्व में युद्ध के विरुद्ध एक प्रबल लोकमत का विकास होता जा रहा है, भले ही अभी उसमें वह सामर्थ्य नहीं है, जो स्थायी शान्ति की सुदृढ़ नींव का काम कर सके, फिर भी आज बड़े-से-बड़े राष्ट्र किसी छोटे राष्ट्र पर भी अनायास आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है।

हिंसा की पराकाष्ठा

पिछले हजार वर्षों में हिंसा एवं प्रतिशोध का भयंकर ताण्डव होता रहा है। उसकी पराकाष्ठा तब पहुँची, जब हिरोशिमा एवं नागसाकी में रात्रि की गोद में सुख की नींद लेते हुए लक्षावधि निरीह एवं निर्दोष प्राणियों पर अणु-बमों की वर्षा कर उनकी नृशंस हत्या की गयी और इस ज्वार की अन्तिम सीमा के बाद ही युद्ध-बन्दी का द्रुत भाटा दृष्टिगत हुआ। फिर भी राजनीतिक क्षेत्र में घात-प्रतिघात, दाव-पेंच चलते रहे, जिसे आज का मानव 'शीत-युद्ध' के नूतन या अर्वाचीन नाम से विशेष रूप से जानता है। पर वास्तविकता तो यह है कि सामान्य मानव तो हिंसा एवं प्रतिशोध से ऊब ही गया है, राजनीतिक लोग भी उससे ऊब गये हैं। शीत-युद्ध के दाव-पेंच को तो वे केवल अपने अन्तर के अविश्वास की वजह से व्याप्त भय एवं आशंकाओं के कारण अपनाये हैं। अन्तर से वे भी शान्ति के लिए व्याकुल हैं। उनके अविश्वास का कारण यह है कि उनमें भौतिकता का प्राधान्य एवं आध्यात्मिकता का अभाव है। इस सत्य की झलक तो हमें अर्वाचीन भारत के इतिहास में भी मिलती है कि किस प्रकार परतन्त्रता की विपरीत एवं भयावह परिस्थितियों में भी भारत ने अपने पूर्वजों एवं पुरातन ऋषि-मुनियों की देन के कारण तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति के कारण अपने स्वातन्त्र्य-संग्राम में शस्त्रास्त्रों का उपयोग नहीं किया, अपितु हृदय-परिवर्तन के माध्यम के रूप में अहिंसा, प्रेम एवं आत्मा की नैतिक शक्तियों का सहारा लिया और अपने लक्ष्य में सिद्ध होकर आज सारे विश्व के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करने में सफल हुआ। लेकिन राजनीतिज्ञ भी आज अपना आसन जमाये बैठे रहने के लिए अहिंसा एवं प्रेम का चोला पहन रहे हैं, पंचशील एवं सह-अस्तित्व के धार्मिक नारों को बुलन्द कर रहे हैं, न्याय एवं व्यवस्था की सभी संस्थाएँ अहिंसा एवं मानवता से सम्बन्ध जोड़े बैठी हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सारा मानव-समुदाय हिंसा के शस्त्रास्त्रों से ही नहीं, अपितु हिंसा की भाषा से भी घबराता है। यह भी देखा गया कि जहाँ एक ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मन्त्री श्री विंस्टन चर्चिल भारतीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में इस बात की उद्घोषणा करते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य से एक इंच भूमि का भी विलग होना वह नहीं देख सकते, वहीं उनकी ही आँखों के सामने ब्रिटिश साम्राज्यशाही से भारत, सिलोन, बर्मा आदि अनेक देशों को मुक्ति मिली। इतना ही नहीं, साम्राज्यशाही काल में जहाँ उनमें परस्पर-कटुता के वातावरण का विकास हुआ था, वहाँ वे अब ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के स्वतन्त्र सदस्य के रूप में परस्पर न केवल विचारों का ही आदान-प्रदान करते हैं, बल्कि एक-दूसरे के मित्र एवं सहयोगी बने हैं। दूसरी ओर यूनेस्को के माध्यम से शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति की आधार-शिलाओं पर विश्व के समस्त मानव समाज को संगठित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति

मनुष्य हिंसा के वातावरण से इतना दूर हो जाना चाहता है कि वह उसके मूल को ही समाप्त करने की योजनाएँ बना रहा है। इस विचार के अनुसार यूनेस्को की ओर से विश्व-इतिहास के परिष्कार का कार्य चल रहा है। ऐसा माना गया है कि शिक्षा के क्षेत्र में इतिहास का महत्त्व बहुत अधिक है, परन्तु इतिहास की वर्तमान पुस्तकों में केवल युद्धों एवं महायुद्धों का विवरण मात्र रह गया है, जिसका प्रभाव

बचपन से ही विद्यार्थियों पर बहुत बुरा पड़ता है। वह पुराने घावों को हरा-भरा रखकर बचपन से ही एक जाति के लोगों को दूसरी जाति के लोगों का, एक समाज को दूसरे समाज का और एक देश को दूसरे देश का शत्रु बनाये रखने में सफल रहा है। विद्या जहाँ मानव को विनयी बनाती है तथा परस्पर प्रेम, सहयोग, भाईचारा आदि की स्वाभाविक सद्‌गुणी शक्तियों का विकास करती है, वहाँ विद्वेष, वैर, विरोध एवं घृणा को प्रश्रय मिलता है। अतएव अनेक देशों में इसी दृष्टिकोण से इतिहास की पुस्तकों का परिशीलन चल रहा है। यूनेस्को की ओर से प्रकाशित मानव जाति का विस्तृत इतिहास पश्चिम के लोगों में उद्योग-प्रधान दृष्टिकोण एवं मनोवृत्ति के कारण पूर्व के लोगों के बारे में उत्पन्न भ्रान्तियों को दूर करने के प्रयास में सफल हो रहा है।

विज्ञान का चाहे कितना ही दुरुपयोग क्यों न किया जा रहा हो, परन्तु यूनेस्को की ओर से इसे स्वीकार लिया गया है कि विज्ञान किसी देश या राष्ट्र-विशेष की बपौती नहीं, बल्कि "सबै भूमि गोपाल की" की तरह वह सम्पूर्ण मानव जाति की सम्पत्ति है और उसका लाभ सभीको समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। परिणामस्वरूप अणु-शक्ति से लाभ उठाने का अवसर आधुनिक दृष्टि से पिछड़े हुए उन सभी देशों के लिए सुलभ करना आवश्यक समझा गया, जिनकी प्रगति उस दिशा में यथेष्ट नहीं हुई है।

राजनीति से संस्कृति को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा, विभिन्न देशों के बीच सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डलों के आदान-प्रदान का क्रम प्रारम्भ हुआ, विभिन्न दूतावासों में भी सांस्कृतिक विभागों का गठन एवं सांस्कृतिक प्रतिनिधियों का समावेश हुआ एवं विशिष्ट आयोजनों में, किसी देश में दूसरे देशों के प्रतिनिधियों एवं राज-नेताओं के आगमन पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं समारोहों के आयोजन को महत्त्व मिलने लगा। इस विचार को स्वीकार किया जाने लगा कि संस्कृति के नाते समस्त मानव जाति एक है एवं उसकी एकता की अखण्डता में देश, समाज, जाति, रंग, भाषा, विचार, आदि बाधक नहीं हो सकते। इतना ही नहीं, बल्कि विभिन्न देशों में परस्पर उनके सांस्कृतिक सम्बन्धों की प्राचीनतम कड़ी की खोज की जाने लगी।

इन घटना-चक्रों एवं तथ्यों के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त भयावह परिस्थितियों में भी साढ़े तीन हाथ का यह मानव प्राणी, जो अपने शैशव-काल (बचपन) में अन्य सभी जीवधारी प्राणियों की तुलना में सबसे अधिक असहाय प्राणी है और संरक्षण में तनिक भी विभेद होने से उसकी जीवन-लीला माँ की गोद में ही समाप्त हो सकती है, अपने मार्ग की खोज में सदा जुटा है एवं सतत प्रयत्नशील है। उसके इसी अथक प्रयास एवं अदम्य उत्साह ने उसे उत्तमाशा अन्तरीप के उस स्थल पर ला खड़ा किया है, जहाँ से उसे उसी प्रकार शान्तिमय जीवन की आशा की स्वर्णिम विद्युत-रेखा का प्रकाश मिलता है, जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका के दक्षिणी छोर उत्तमाशा अन्तरीप में पहुँचने पर वास्कोडिगामा को निश्चित रूप से भारत पहुँचने की आशा हुई थी। इसी आशा की ज्योति के कारण मनुष्य निराशाओं के वातावरण मे भी अपनी गाड़ी आगे बढ़ाते चला जा रहा है। मनुष्य में विचार-यन्त्रिका का समावेश उसके लिए एक बहुत बड़ी देन है। वह निराश होना नहीं जानता, घुटने टेकना नहीं जानता और अपनी हार आसानी से मानने को कभी राजी नहीं होता।

धर्म के अभाव में !

इस प्रकार राजनीति, विज्ञान, शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्रों में इन नये प्रयोगों का क्रम तो चला, जो वास्तव में धार्मिक भावनाओं की विजय का ही द्योतक है और यह सिद्ध हो गया कि अर्थ एवं राजनीति मानव को संगठित नहीं कर सकते, उन्हें प्रेम का अमृत नहीं पिला सकते और उनके जीवन में वास्तविक आनन्द नहीं ला सकते, बल्कि उल्टे उन्हें आसुरी लालसाओं, झूठी महत्त्वाकांक्षाओं, शोषण, उत्पीड़न, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, विरोध आदि के विषाक्त वातावरण में घसीटकर उनके जीवन को नारकीय बना सकता है। शिक्षा, संस्कृति, एवं विज्ञान के क्षेत्र में यूनेस्को के माध्यम से प्रयास, और यह प्रयास सराहनीय है, पर उन कार्यक्रमों का आयोजन राजनीतिक मंच से तथा राजनीतिकों के द्वारा होने के कारण आशानुरूप सफलता को प्राप्त करने में असमर्थ है। इतिहास में युद्धों एवं महायुद्धों के विवरणों, उसके कारणों एवं परिणामों आदि का वर्णन इसलिए नहीं दिया जाता रहा कि उससे पाठकों एवं विद्यार्थियों के वैर-विरोध को ताजा बनाये रखने में सहारा मिले, बल्कि उसके कारणों को जानें, उसकी विभीषिकाओं का अन्दाजा लगायें, उसके कारुणिक परिणामों का मनन करें और अपने अन्तर मे ऐसी भावनाओं को सँजोयें कि वे अपने जीवन मे वैसी परिस्थितियों का यथासम्भव निर्माण नहीं होने दें। यदि कोई व्यक्ति यह जानता है कि अमुक नदी मे अमुक स्थान पर पानी अधिक है या बहाव तेज है तो उसका सही उपयोग यह है कि नदी पार करते समय उस जानकारी का सदुपयोग करे। पर यदि कोई उस स्थिति को जानकर उसमें डूबने के लिए ही कूदता है, तो उसमें स्थिति की जानकारी का क्या दोष ? इसी प्रकार कोई इतिहास की घटनाओं का उपयोग वैर-विरोध को बनाये रखने में ही करे तो इसमें इतिहास का क्या दोष ? मेरी राय में इतिहास से घटनाओं का हटाना उचित नहीं है, क्योंकि वह तो वास्तव में इतिहास का अंग और सच्ची घटनाओं की कहानी है, जिससे पाठ ग्रहण करने की जरूरत है। मैं यूनेस्को के प्रयत्नों एवं उनके उद्देश्यों की सराहना करता हूँ। पर आवश्यकता यह है कि सारे प्रयत्न राजनीति से अलग होकर किये जायँ और उनका आधार धर्म एवं अध्यात्म हो। वास्तव मे तभी सच्ची सफलता एवं मानव का वास्तविक कल्याण व त्राण सम्भव है।

अब प्रश्न यह है कि जब चारों ओर इस प्रकार के प्रयास होते रहे तो धर्म के क्षेत्र में उदासी का वातावरण क्यों रहा ? धर्म को क्यों एक क्षेत्र में अफीम की संज्ञा दी गयी। नास्तिक भावनाओं का क्यों विकास हुआ ? अन्य देशों के अतिरिक्त धर्म-प्रधान एवं अनादि काल से धार्मिक संस्कृति पर आधारित तथा विश्व के अनेक महान धर्मों की जन्मभूमि इस भारत जैसे देश में भी धर्म-निरपेक्षता की आड़ में धर्म को क्यों निरर्थक समझा गया और धर्म को प्रगति के मार्ग का रोड़ा क्यों समझा गया ? इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि इसके भी यथेष्ट कारण हैं। जिस प्रकार धूएँ का दर्शन यह लक्षित करता है कि कहीं पर अग्नि अवश्य प्रज्वलित है, उसी प्रकार धर्म के प्रति लोगों की विरक्ति एवं वितृष्णा के पीछे भी कारण अवश्य हैं। उन कारणों पर विचार करना आवश्यक है और वहीं विश्वधर्म-सम्मेलन की भूमिका या वास्तविक पृष्ठभूमि है।

एक विहंगम दृष्टि

जिन कारणों से राजनीति एवं राजनीतिकों के प्रति आज लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं और खट्टी-मीठी उक्तियों का प्रयोग करते हैं, वे ही कारण धर्म पर भी लागू हो रहे हैं। धर्म के नाम पर अनेक दुर्भाव-

नाओं का विकास हुआ। धर्म के तत्त्व एवं मर्म के सद्ज्ञान का लोप हुआ एवं अज्ञानता के वातावरण का निर्माण हुआ। लोगों में धर्म के मर्म एवं आचरण का अभाव हुआ तथा धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के पाखण्ड, ढोंग एवं कुरीतियों का विकास हुआ। धर्म, आचरण एवं सद्व्यवहार तथा जीवन को सरल, उन्नत एवं सदाचारी बनाने का साधन था, जिसे लोगों ने अज्ञानता एवं स्वार्थ के कारण त्याग कर कुपथ का अनुसरण ही नहीं किया, बल्कि उसका जाल धर्म की आड़ में बिछाने का कार्यक्रम बनाया। लोग धर्म की पवित्र शिक्षाओं—प्रेम, अहिंसा, सत्य, सेवा, सहयोग, मैत्री, करुणा, बन्धुत्व, त्याग आदि को तो भूल गये और ऐसे अनेक वर्गों में विभक्त हो गये कि धर्म को ही कलंकित करने लगे। स्थिति इस प्रकार हो गयी कि एक ओर तो लोगों का एक ऐसे वर्ग का विकास हुआ, जो धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा एवं विश्वास रखते हैं; पर धर्म के तत्त्वों का ज्ञान उन्हें नहीं के बराबर है। उनकी अज्ञानता एवं धर्म के प्रति सहज श्रद्धा का धर्म के नाम पर स्वार्थ साधनेवाले कुछ लोग अनुचित लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करने लगे और धर्म के नाम पर भी कलंक का टीका लगाने लगे। इस प्रकार यद्यपि इस कोटि के लोग स्वयं तो निष्कलुष एवं निष्कपट कहे जा सकते हैं, पर उनकी अज्ञानता एवं अंध-श्रद्धा धर्म को कलंकित करने में अभिशाप सिद्ध हुई। इनमें से कुछ लोग ऐसे भी अवश्य हैं, जो विज्ञ हैं, जिन्हें धर्म के वास्तविक तत्त्वों का ज्ञान है एवं जिनके जीवन में धर्माचरण भी है; पर उनकी संख्या बहुत कम है। उनका जीवन वैयक्तिक साधना का क्षेत्र बन गया तथा धर्म के क्षेत्र में भी स्वार्थी एवं निरक्षर भट्टाचार्यों की धाँधली तथा डण्डों की शक्ति के आधिपत्य के वातावरण में उनका भी समाज के लिए कोई अधिक उपयोग या लाभ नहीं हुआ और उनमें भी "कोउ नृप होहिं, हमें क्या हानि" की भावना का उदय हुआ। फिर एक ऐसे वर्ग के लोग हैं, जो विभिन्न धर्मों पर महन्त, मठाधीश, पोप, पुरोहित, आचार्य, पुजारी, मुल्ला आदि के रूप में छाये हैं। इनमें भी बहुतेरे धर्म में निपट अनाड़ी की संज्ञा को चरितार्थ करते हैं, पर पैतृक प्राप्ति के रूप धर्म की ठीकेदारी की बपौती, गद्दी प्राप्त हो गयी है और अपने उन अनुयायियों का, जिनमें धर्म के प्रति अन्धश्रद्धा है, का अनुचित लाभ उठाते है। साथ ही वे धर्म के नाम पर अपनी अज्ञानता के कारण लोगों में धर्म के बारे में अजीब-अजीब भावनाओं को भरते हैं। दूसरे कुछ ऐसे है, जिन्हें धर्म के बारे में जानकारी तो है, पर उनका ज्ञान एकान्तिक है और उनमें भी रूढ़िवादिता, कट्टरपंथी एवं धर्मान्धता है। उनमें भी अपनी गद्दी के प्रति स्वार्थ है और वे भी आधुनिक भौतिकवादी सुखोपभोग के चक्कर में स्वयं तो उलझ ही गये हैं, अपने अनुयायियों को भी गुमराह करते है तथा धर्म के नाम को बदनाम ही करते हैं। जिन्हें धर्म का ज्ञान भी है तो उनका अध्ययन विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक ढंग से नहीं होने के कारण उनमें अन्य धर्मों के प्रति हीनता एवं अपने धर्म के प्रति महानता की एक ऐसी भावना काम करती है कि उसीके कारण अनेक धर्मों के द्वारा समय-समय पर धर्मपरिवर्तन के कार्यक्रम अपनाये गये और इस कार्यक्रम के पीछे खून की नदियाँ तक भी बहायी गयीं। जोर-जबरदस्ती, भय, प्रलोभन आदि के द्वारा धर्मपरिवर्तन में वे विश्वास करते हैं। परिणामस्वरूप अन्य धर्मों एवं विचारों के प्रति सद्भावना तो दूर रही, परस्पर कटुता, विरोध, वैर एवं कलह के वातावरण का निर्माण हुआ। विश्व के इतिहास में इस प्रकार के भयंकर कलहों का काफी वर्णन मिलता है। काश, इन कलहों एवं धर्मपरिवर्तनों में अर्थ एवं शक्ति का जो दुरुपयोग हुआ उसका सदुपयोग यदि मानव मात्र में प्रेम, अहिंसा एवं बन्धुत्व के प्रसार में होता तो यही संसार स्वर्ग होता और इस उक्ति को चरितार्थ करता कि "वैकुण्ठ तो यही है, इसमें ही रमा करना।" धर्म के गद्दीधारी स्वार्थ एवं सत्ता के प्रलोभनों में आसक्त आचार्यों ने धर्म में राजनीतिक दाँव-पेंच को स्थान दिया तथा अपने अनुयायियों को भी उसके लिए प्रेरित किया और उनका दुरुपयोग किया।

धर्म के नाम पर कालिख का एक पोत और चढ़ाया गया। धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियों का विकास हुआ। साथ ही इन दो सौ वर्षों में जो औद्योगिक एवं यान्त्रिक विकास हुआ और लोगों में नयी रोशनी आयी तो लोगों में एक नये दृष्टिकोण का उदय हुआ और पुरानी चीजों को हेय दृष्टि से देखने लगे। धर्म के अच्छे रीति-रिवाजों की तह में जाने या उसके सृजन के उद्देश्यों एवं परिस्थितियों को तो समझने की क्षमता का अभाव रहा, बस सभी को अन्धविश्वास कह-कर उसका बहिष्कार करने लगे। धर्म के तत्त्वों को भी वे भौतिकता के माप-दण्ड पर कसने लगे। स्थिति विपरीत हो गयी। जहाँ भौतिकता को धर्म की कसौटी पर कसने की आवश्यकता थी, जिससे उसकी बुरा-इयाँ नियंत्रित रह पातीं, वहाँ धार्मिक शिक्षाओं एवं व्यवहारों को भौतिकता की तराजू पर तौला जाने लगा। अन्य कुछ लोगों ने धर्म के बाह्याचरण को धर्म के तत्त्वों की प्राप्ति का साधन या उस लक्ष्य तक पहुँचने का सोपान मानने के बदले उसे ही सर्वस्व मान लिया और उसमें ही उलझ गये। इसके द्वारा भी धर्मान्धता के विकास को बल मिला तथा दूसरी ओर धर्म का नाम बदनाम हुआ। इतना ही नहीं, 'धर्म खतरे में' के भी नारे समय-समय पर लगाये गये और परिणामस्वरूप खून की होली खेली गयी। धर्म के नाम पर लोगोंने एक-दूसरे के रक्तपिपासु बनकर खून की नदियाँ बहायीं। इसके तह में भी या तो अज्ञानता थी या राजनीतिकों की अपनी चालबाजियाँ। पर जो भी हो, नाम तो धर्म का बदनाम हुआ। कैसी विचित्र बात है कहना कि 'धर्म खतरे में है।' भला धर्म भी कभी किसी खतरे में पड़ता है। वह तो शाश्वत एवं सार्वभौम सत्य है, जो चिरन्तन, चिरयुगीन है। खतरे में तो वास्तव में लोग होते हैं, जिनमें धर्म का अभाव होता है। धर्म के क्षेत्र में ऐसे भी लोग पाये जाते हैं जो मंदिर, मस्जिद, गिरजा आदि में जाते, भजन-कीर्तन, जप-ध्यान आदि में भी समय लगाते हैं, पर उसके बाहर उनका आचरण ऐसा होता है कि सामान्य अधार्मिक या नास्तिक भी मात खा जाते हैं। कुछ लोग तो धर्म को अपनी अधार्मिकता एवं स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाने लगे और चोरी के लिए चलते समय भी धर्म के नाम पर उसमें सफलता की कामना करने लगे!

इस प्रकार सब मिल-मिलाकर लोगों में धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा, आदर, निष्ठा का ह्रास हुआ, वितृष्णा की भावना का विकास हुआ और धर्म को निकम्मा समझा जाने लगा। धर्म के वास्तविक रूप पर घना पर्दा पड़ गया और जो बचा रह गया, वह धर्म नहीं, बल्कि धर्म के नाम अधर्म एवं धर्म का ढोंग है। लोग भूल गये कि धर्म के शाश्वत तत्त्वों को जीवन मे अपनाकर मानवोचित सद्गुणों का विकास किया जाता है। परन्तु धर्म के संबंध में जो सत्यता एवं वस्तुस्थिति है, वह सर्वथा भिन्न है। वास्तविकता तो यह है कि आज के युग की जितनी बुराइयाँ हैं, जितने पापाचार हैं, सभी धर्म के तत्त्वों पर पर्दा डालने के ही कारण हैं—चाहे वे धर्म के नाम पर ही क्यो न होते हों। पर इसके लिए यह कभी उचित नहीं है कि धर्म को ही दूर कर दिया जाय। दूर तो धर्म के नाम को कलंकित करने वाले लोगों को करना है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें समाप्त कर दिया जाय। वास्तव में वे तो स्वयं दूर हो जाते हैं, यदि धर्म की सही भावना का विकास होता है और धर्माचरण पर से धर्मान्धता एवं अज्ञानता का पर्दा हट जाता है। यदि किसी के नाक पर मक्खी बैठ जाती है तो वह मक्खी को उड़ाता है, न कि नाक को ही काट फेंकता है। शरीर में घाव हो जाता है तो उस घाव की चिकित्सा करता है, शरीर को ही नहीं त्याग देता। इसी प्रकार आवश्यकता इस बात की है कि धर्म के शाश्वत तत्त्वों—प्रेम, अहिंसा, मैत्रि एवं समन्वय की भावना का विकास किया जाय। इसके लिए धर्म को जीवन के लिए आवश्यक बनाने की जरूरत है और जरूरत है उसकी उचित, तुलनात्मक एवं व्यावहारिक शिक्षा की अनिवार्यता की। आज

भौतिक जगत् में अनेक गवेषणाओं, अनुसंधानों (रिसर्चों) तथा प्रयोगों आदि का कार्यक्रम चालू है, पर धर्म के क्षेत्र में भी उसकी आवश्यकता है, जिससे वह अभी वंचित है—भले यह विचारणीय विषय है। कि धर्म के क्षेत्र में अनुसंधान के तरीके भिन्न प्रकार के होंगे। अतः धर्म के प्रति उदासीन या उससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि आवश्यकता है लगन, त्याग, हिम्मत, विश्वास एवं उत्साह के साथ उसकी उपादेयता एवं व्यावहारिकता को प्रत्यक्ष करने तथा अपनाने की।

धर्म का तत्त्व एवं रूप

धर्म एक शाश्वत एवं चिरंतन सत्य है। उसका स्वरूप नितांत उज्ज्वल, शुभ्र एवं कलुषहीन है। उसमें किसी प्रकार की भी गन्दगी के आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। वह आत्मा का संगीत है और आत्मा के अनुरूप ही निर्मल है तथा आनन्द का अनुपम भण्डार है। उसकी अनुभूति उसीको होती है जो जानता है, खोजता है और प्राप्त करता है—"जो जाने सो पावे" या "जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ"— अर्थात् जो धर्म की साधना-मार्ग की कठिनाइयों की परवाह नहीं कर गोता लगाता है, वही उसे पा सकता है, पर "मैं बौरी डूबन डरा, रहा किनारे बैठ" की भावना से जो असमंजस में ही पड़ा रहेगा या आत्मा है या नहीं, और धर्म को ढोंग आदि ही समझता रह जायगा उसकी स्थिति तो समुद्र के किनारे डर एवं आशंका से बैठे रहनेवाले के ही समान होगी। उसे मोती कहाँ से प्राप्त हो सकेंगे ? उसके तो घोंघा, सीप एवं बालु कण ही हाथ लगेंगे। मोती तो उसे प्राप्त होगा, जो गहरे पानी में हिम्मत, उत्साह एवं विश्वास से गोता लगायेगा। जिसे धर्म का तत्त्व प्राप्त हो गया, उसके लिए बाकी सब कुछ निरर्थक प्रतीत होगा। उसे तो एक ऐसे स्वर्गीय संसार का आलोक प्राप्त हो जाता है कि उसे यह संसार उसी प्रकार निस्सार प्रतीत होता है, जिस प्रकार स्वप्न से जगे हुए व्यक्ति को स्वप्निल संसार प्रतीत होता है।

विभिन्न देशों में समय-समय पर धर्म के उस शाश्वत तत्त्व की प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्गों का निरूपण हुआ। जिन्होंने धर्म उस शाश्वत तत्त्व एवं आनन्द का एक अंश भी जिस किसी मार्ग से पा लिया, उन्होंने उसी मार्ग का प्रतिपादन किया। इस प्रकार विभिन्न धर्मों या धर्म के विभिन्न रूपों का विकास हुआ। वास्तव में यह कहना उचित नहीं है कि विभिन्न धर्मों का विकास हुआ, क्योंकि धर्म के तत्त्व तो एक ही हैं और धर्म के इस तत्त्व को प्रारंभिक अवस्था में समझने के लिए एवं उसे प्राप्त करने लिए विभिन्न रूपों की कल्पना की गयी एवं विभिन्न मार्गों का प्रतिपादन किया गया। स्थिति तो यही है कि—"एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।"

परिष्कार एवं शोध

अब प्रश्न यह है कि धर्म एक शुभ्र तत्त्व है। उसमें तो किसी प्रकार के परिष्कार की कतई कोई आवश्यकता एवं सम्भावना ही नहीं है। हाँ, यह निश्चित हो जाता है कि उस अनुपम चिरन्तन सत्य का बहिष्कार करना अज्ञानता एवं अपने पैरों में ही कुल्हाडी मारने के समान है। अतः आज जो

उसके बहिष्कार की एक प्रवृत्ति पनप रही है, उसे रोकने की आवश्यकता है। उसके लिए पुनः उन सभी परिस्थितियों एवं कारणों पर विचार करना होगा, जिनके कारण लोगों में नास्तिकता एवं धर्म के प्रति वितृष्णा की भावनाओं का विकास हो रहा है। यह स्पष्ट है कि हमें धर्म के उज्ज्वल एवं ज्वलन्त रूप को लोगों के सामने प्रकट करना होगा, जिससे लोग दूर हो गये हैं। इसके लिए धर्म की आड़ में जो कलुषता पनप रही है और धर्म का जो विकृत रूप आज लोगों सामने है, उसमें परिष्कार करने की जरूरत है।

सड़कों एवं भवनों की भी समय-समय पर सफाई, मरम्मत आदि की जरूरत होती है। उस पर भी चूना एवं अलकतरा आदि चढ़ाया जाता है। हम स्वच्छ कपड़े पहनते हैं, वह भी काल-क्रम से गन्दे हो जाते हैं और उसमें सफाई की जरूरत होती है। यदि कोई स्वच्छ वस्त्र उपयोग में नहीं भी आता हो, फिर भी उसमें काल-क्रम से गन्दगी आ जाती है और उसकी सफाई की आवश्यकता होती है। फिर इसके अतिरिक्त पृथ्वी की सतह, भूगर्भ, वायुमण्डल एवं सागर के गर्भ में भी तो आकस्मिक परिवर्तन आते हैं, जीवन-क्रम आदि में भी परिवर्तनों का क्रम आता ही रहता है। काल में तो परिवर्तन होता ही रहता है। मान लिया जाय कि भारत और लंका के बीच जो अभी सागर का भाग है, वह यदि आकस्मिक परिवर्तनों के कारण मिट्टी से भर जाय और दोनों भागों को रेल-पथ से संयुक्त कर दिया जाय, तो क्या उस स्थिति में यह कहना उचित होगा कि इस रेल-पथ का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह उचित मार्ग नहीं है और हमारे पूर्वज इस मार्ग से नहीं जाते थे? वास्तव में विचारणीय तो गन्तव्य है, न कि मार्ग। उसी प्रकार काल-क्रम से जीवन के मापदण्डों आदि के परिवर्तित होने से धर्म के तत्त्वों की प्राप्ति के तरीकों में भी किंचित् परिष्कार की आवश्यकता होती है और वह आवश्यक भी है। इस प्रकार के अनेक परिवर्तन आज देखे जाते हैं। आज पहले की अपेक्षा लोगों की आयु की अवधि में कमी आती जा रही है, लोगों में यौवन के चिह्न अब अल्पायु में ही प्रकट होते हैं, तो हमें इस प्रकार के परिवर्तनों का ध्यान तो रखना ही होगा। नहीं तो हम उसी कहानी को चरितार्थ करेंगे कि किसीके बाबा ने यज्ञ करते समय एक बिल्ली के बहुत तंग करने पर उसे पकड़ कर यज्ञशाला के एक कोने में बँधवा दिया और जब पोते ने भी यज्ञ प्रारम्भ किया तो उसे कहीं बिल्ली नहीं मिली, तो बहुत बेचैन हुआ और चिन्ता में पड़ गया कि मैं यदि बिल्ली नहीं बाँधूँगा तो मेरा यज्ञ ही अधूरा रह जायगा! इसी प्रकार हमें धर्म की प्राप्ति के साधनों एवं मार्गों में निश्चित रूप से परिष्कार, परिवर्तन आदि की आवश्यकता को समझना और विचारना होगा तथा तदनुरूप निर्णय लेकर उस पर अमल करना होगा। लकीर के फकीर बना रहना उचित नहीं। पर इस परिवर्तन, परिष्कार का यह कतई अर्थ नहीं है कि हम कहें कि युग बदल गया है, मापदण्ड बदल गये हैं, अब धर्म की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। भगवान महावीर ने संसार को अनेकान्त का महान सिद्धान्त दिया। आज भी उनके अनुयायी काफी संख्या में हैं; पर विश्व के सभी धर्मों को ठीक बतानेवाले को वे धर्म के पथ से च्युत कहें तो यह अनेकान्त के विपरीत एवं अज्ञानता का द्योतक होगा। एक तो ऐसा कहा गया है कि "संघे शक्ति कलियुगे" और जब सभी धर्मों में "एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" के अनुरूप एक ही चिरन्तन सत्य है, तो विश्व के सभी धर्मों को एक मंच पर लाकर इस चिरन्तन सत्य का साक्षात्कार करना आज के परिवर्तित युग में अनेकान्त का महान दर्शन है और विभिन्न भुजाओं जैसे धार्मिकता, नैतिकता, आध्यात्मिकता आदि विभिन्न रूपों में विभिन्न सात्त्विक शस्त्रास्त्रों से युक्त दुर्गा का अवतार है। इस प्रकार विश्वधर्म-सम्मेलन और विश्वधर्म-संगम की योजना महान अनेकान्तवाद या शक्ति दुर्गा का ही अर्वाचीन रूप है। हमें उसकी आराधना करना है, जिससे उसके प्रसाद से धर्मान्धता एवं नास्तिकता का विनाश हो और संसार में एक बार फिर से धर्म के आधार

पर स्थायी सुख,शान्ति और अहिंसा, प्रेम एवं विश्व-बन्धुत्व साकार हो उठे तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की कल्पना शास्त्रों की वस्तु न रहकर साक्षात् पृथ्वी पर विराजित दृष्टिगोचर हो।

इस प्रकार यह निश्चत है कि हमें धर्म का बहिष्कार नहीं, बल्कि उसकी प्राप्ति के लिए अपने को तथा उसके साधनों को परिष्कृत करने की आवश्यकता है, जिसके लिए "विश्वधर्म" मार्गदर्शन करता है। मानव जब तक केवली या भगवान नहीं बन जाता है, उसमें कमियों का होना अवश्यम्भावी एवं स्वाभाविक है। पर उसमें विचारयन्त्रिका की जो अपूर्व देन है, उसके सहारे वह सदा अपनी कमियों का अन्वेषण करता रहता है और उसे दूर करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। समय-समय पर उसकी कमियों के कारण धर्म पर अज्ञानता का आवरण छाया है, जो आज भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। अब उस आवरण को विचार-कौशल के द्वारा हटाकर दूर फेंकने की जरूरत है। साथ ही कालक्रम की गति के कारण जो उसके विभिन्न रूपों या मार्गों में गन्दगी आयी है उसे भी साफ करना है। संशोधन, परिष्कार एवं सफाई का यह क्रम सृष्टि के आदिकाल से चला आ रहा है। परिवर्तन होते ही रहे हैं। इन्हीं परिवर्तनों को तो उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तथा सत्युग से कलियुग तक के विभाजन एवं पुनः सत्युग की स्थापना के रूप में धर्म-शास्त्रों में वर्णन किया गया है। परिष्कार एवं शोध के इन्हीं प्रयत्नों के कारण तो विभिन्न विचारों, दर्शनों एवं धर्मों के इतने महान ग्रन्थों, शास्त्रों एवं सूत्रों के समृद्ध भण्डार का विकास हुआ। श्रीकृष्ण, महावीर, बुद्ध, शंकर, ईसा आदि विभिन्न धर्मों के अनेकानेक प्रवर्तक, सन्त, महात्मा आदि इसी तथ्य के सूत्रधार एवं प्रणेता थे।

जिस प्रकार पानी के एक स्थान पर रुक जाने से उसमें दुर्गन्ध एवं विकारों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार जीवन का सामाजिक एवं धार्मिक क्रम भी प्रवाह एवं जीवन में व्यवहार के अभाव में दूषित हो जाता है, उसके लिए शोध की जरूरत होती है। साधारण कृषि में भी अनावश्यक घास आदि के पौधों को निकाला जाता है, तो शाश्वत धर्म के मार्गबाधक बनकर आनेवाले अनुपयोगी और विकारक तत्त्वों को क्यों नहीं दूर किया जाय? धर्म के सम्बन्ध में भी इस वास्तविकता से आँखें मूँदने की जरूरत नहीं है—अन्यथा वह पंक से आवेष्टित हो जायगा और उसके सामीप्य में जानेवाला व्यक्ति धर्म के तत्त्व की प्राप्ति के बदले पंक की गंदगी का ही शिकार होगा। परिणामस्वरूप उसमें धर्म से ही वितृष्णा उत्पन्न हो जायगी। आज भी यही स्थिति है और इसी कारण से अधार्मिकता एवं नास्तिकता की भावनाओं को बल मिल रहा है।

धार्मिक जगत् की विशिष्टता

●

धार्मिक जगत् की एक बहुत बड़ी विशिष्टता रही है कि जब कभी भी धर्म के रूप में ह्रास हुआ है, लोगों में अधार्मिकता, नास्तिकता या धर्मान्धता का बोलबाला हुआ है, कुछ ऐसे महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है कि उनके सत्प्रयत्नों से उसमे उचित संस्कार, परिष्कार एवं शोध किया गया। परंतु कालक्रम से उनका वह परिष्कार भी एक पंथ बनता गया और वे महापुरुष भी देवता बन गये। परिणामस्वरूप लोग उनके उपदेशों एवं मन्तव्यों को तो भूल गये और उनकी मूर्तियों को मन्दिरों में पूजने लगे, उनके नाम के पीछे झगड़ने लगे। इस प्रकार उनके नाम पर सम्प्रदायों का भी विकास हुआ और अज्ञानता के वातावरण में विभिन्न सम्प्रदायों में कटुता, कलह, द्वेष एवं संघर्षों ने सिर उठाया।

मध्यकालीन युग में भी धर्मसमन्वय की भावना के विकास एवं धर्मान्धता को दूर करने में संत कबीर का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर उसी कबीर की मृत्यु पर जिसने मस्जिद-मन्दिर दोनों को चुनौती दी, प्राणी-मात्र के अहिंसा एवं प्रेम का प्रचार किया, उसीके शव के लिए झगड़े हुए! भगवान महावीर एवं भगवान बुद्ध के अनुयायियों के नाम पर अनेक भेद एवं संघर्ष हुए। इस प्रकार सारे संसार में २२०० से भी अधिक धर्मों के रूप व नाम बताये जाते हैं, ७०० से भी अधिक उनके लक्षण एवं व्याख्याएँ उपस्थित की जाती हैं और उन व्याख्याओं एवं रूपों को स्पष्ट करने के लिए दर्शनों की भी संख्या १२०० के करीब बतायी जाती है। ऐसे स्थिति में धर्म के संबंध में निश्चित रूप से विचारक साधारण मानव के समक्ष उसका वास्तविक रूप उपस्थित करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे लोगों की भ्रान्तिय दूर हों, परस्पर कटुता के स्थान पर प्रेम एवं अहिंसा का प्रसार हो और विश्व-बन्धुत्व तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की स्थापना हो। फिर विश्व-शांति के नारे की कहीं आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। वह तो स्वयं छाया की तरह साथ रहेगी।

आदिकाल से ही एशिया विभिन्न एवं संसार के अधिकतर महान धर्मों एवं धर्म-संस्कृतियों की जन्मभूमि एवं क्रीड़ाभूमि रहा है और भारत उसका केन्द्र-बिन्दु या आत्मा है। शायद यही कारण है कि भारत को धर्म-भूमि, धर्म-क्षेत्र एवं 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहा गया। धर्म के प्रादुर्भाव एवं शोध का जो कार्यक्रम सदा से यहाँ चलता रहा है, वह अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। आज के इस भौतिकप्रधान युग में भी जहाँ अन्य देशों के लोग भौतिक समृद्धि के अन्वेषण, खोज एवं शोध में लगे हैं, और सारा मानव-समुदाय उसी मृगतृष्णा की ओर द्रुत गति से दौड़ता नजर आयगा, भारत में अभी तक सामान्य जन भी दुख-दैन्य एवं आवश्यकताओं और अभावों के बीच भी 'संतोषः परमं सुखम्' के महामन्त्र के सहारे मस्त नजर आयेगा। यहाँ ऐसे अनेक लोग मिलेंगे, जो अपने जीवन की सारी भौतिक अभिलाषाओं को तिलांजलि देकर एवं सारे भौतिक सुखसमृद्धियों की ठोकर मारकर धर्म की साधना में कठोर जीवन बिता रहे हैं। यद्यपि उनका वह जीवन दूसरे दर्शकों को बहुत कठोर एवं अव्यावहारिक प्रतीत होता हो, पर उन्हें तो उसीमें आनन्द मिल रहा है और वे आज के सुख-साधनों की प्रचुरता में पड़े लोगों को "विषकीड़ा विष खात" की तरह समझते हैं।

भारत सदा से धर्मों की प्रयोग-भूमि रहा है। जहाँ आर्थिक दृष्टि से भारत को एक कृषिप्रधान देश कहा जाता है, वहाँ वैचारिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं वास्तविक दृष्टि से उसे ऋषि-प्रधान या धर्म-प्रधान देश कहा जायगा। यहाँ सदा से ऋषि-मुनियों ने विचार, धर्म एवं आध्यात्म के क्षेत्रों में अन्वेषण एवं शोध किये हैं। भारत की यही विशेषता है। भौतिक विज्ञान की शोध में जहाँ अनेक यंत्रों की आवश्यकता होती है, वहाँ धार्मिक शोध-कार्य में मानव स्वयं यंत्र का कार्य करता है और उस पर विचारों का प्रयोग आचरणों एवं व्यवहारों के द्वारा चलता है। इस प्रकार जो परिणाम प्रकट होता है वह राकेट, स्पुतनिक आदि की तरह व्यक्ति का धर्मपूर्ण जीवन होता है। आज के युग में महात्मा गांधी ने राजनीति जैसे बदनाम क्षेत्र में भी धार्मिकता—सत्य एवं अहिंसा का महान् प्रयोग प्रस्तुत किया। उन्होंने कोई नई चीज नहीं दी। धर्म के अतिप्राचीन एवं शाश्वत तत्त्वों को ही परिवर्तित स्थिति में प्रयोग करके उज्ज्वल, अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

धर्म-सम्मेलनों का इतिहास

●

भारत अनेक धर्मों की जन्मभूमि एवं क्रीड़ास्थली तथा एक धर्म-प्रधान देश तो रहा ही, यहाँ वाद-विवादों, विचार-विमर्शों, गोष्ठियों एवं सम्मेलनों के आयोजनों की परम्परा भी अतीत काल से ही होना

स्वाभाविक है। यहाँ प्राचीन काल से ही धर्म-सम्मेलनों की परम्परा पायी जाती है तथा "वादे वादे जायते तत्त्वबोधः" एवं "यस्य कर्णे अनुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः" की उक्तियाँ प्रचलित हुई। यहाँ इस देश में सदा ही वाद-विवादों का आयोजन होता था एवं धर्म और विचारों को तर्क, तुलना एवं उपयोगिता आदि की कसौटियों पर कसा जाता था। इस प्रकार धर्म-शोध का कार्य यहाँ सदा से ही चलता रहा है। आज के युग में वाद-विवाद का परिणाम कलह-सत्संग की परणति बदसंग एवं कुसंग में हो जाती है। बौद्ध-काल में भी अशोक, कनिष्क एवं हर्षवर्धन आदि के राज्यत्व काल में धर्म-सम्मेलनों का आयोजन हुआ। शंकर और मंडन मिश्र के वाद-विवाद की गाथाएँ आज भी लोगों को उसकी याद दिलती है। धर्मसभा में अष्टावक्र की उक्तियाँ आज भी नीति-बोध करती हैं। सम्राट अकबर ने भी दीन इलाही का सूत्रपात कर धर्मसमन्वय के हेतु धर्मसम्मेलन का आयोजन किया था। धार्मिक उत्सवों, तीर्थों, यात्राओं, कुम्भ, मकर आदि का आयोजन यद्यपि आज अधिकतर रूढ़ि या परम्परा के रूप में विद्यमान है। लेकिन उनके पीछे भी धर्म के शोध एवं परिष्कार के उद्देश्य ही परिलक्षित हैं। लोग अपने-अपने क्षेत्रों में अलग-अलग कूपमण्डूक न बन जायें, सीमाबद्ध हो जाने के कारण उनमें गन्दगी न आ जाय तथा विभिन्न भूभागों के लोगों का परस्पर मिलन, विचारविमर्श होता रहे, एक-दूसरे को एक-दूसरे के विचारों, रहन-सहन, रीति-रिवाजों का, दर्शनों, विभिन्नताओं तथा उनमें निहित एकत्व का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त होता रहे, इन्हीं उज्ज्वल प्रयोजनों से इन तीर्थाटनों, सम्मेलनों आदि का गठन किया गया।

धर्माचार्यों एवं धर्म-गुरुओं आदि का वास्तविक कार्य लोगों का मार्ग-दर्शन करना था, पर आज तो स्थिति यह है कि उन्हें स्वयं वास्तविक मार्ग का ज्ञान नहीं है और वे स्वयं केवल परम्परागत पुरानी रूढ़ियों की लकीर के फकीर बनकर वास्तविकता से दूर हैं तथा मात्र अन्धविश्वासों एवं आडम्बरों के प्रहरी बने बैठे हैं। उनमें ही वे इस कदर दाँत गड़ाये हुए हैं कि स्वयं तो गुमराह बने रहते ही हैं, दूसरों को भी गुमराह बनाने में सहायक एवं प्रेरक सिद्ध होते हैं। साथ ही धर्म के वास्तविक रूप को प्रकट करनेवालों को ही वे नास्तिकों की संज्ञा देकर उनके विरोध में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। यह सचमुच में दुर्भाग्य का ही विषय है कि धर्म के प्रहरी अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त करने के बदले स्वयं उसके शिकार बन गये हैं, तो फिर औरों का क्या कहना है? परिणामस्वरूप संकीर्ण भावनाओं के कारण नित नये-नये सम्प्रदायों को जन्म देते गये और चारों ओर के वातावरण पर उनके मायाजाल का इस प्रकार रंग चढ़ा दिया गया कि वस्तुस्थिति दिग्भ्रान्त-सी हो गयी है। इस चक्रवात में साधारण मानव के लिए तो मार्गदर्शन करना या मार्ग की थाह लेना भी दुष्कर हो गया है और वे या तो नास्तिकता की ओर अग्रसर होते हैं या किंकर्तव्यविमूढ़ता के शिकार होते हैं। शास्त्रार्थों एवं वाद-विवादों की जो परम्परा देश में रही, उसके नये संस्करण के रूप में वितण्डावाद एवं कुतर्क के सहारे एक-दूसरे को समझने एवं उनकी अच्छी बातों को मानने एवं अपनाने के बदले एक-दूसरे को नीचा दिखाने तथा अपने-आप को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में लग गये।

इन भावनाओं के प्रभाव में आधुनिक युग में जो प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन हुआ, वह १८९३ में भौतिक समृद्धि का देश, अमेरिका की शिकागो नगरी में डॉ० जौन बरोज के पवित्र प्रयासों से धर्म-संसद के नाम से आयोजित किया गया। इस आयोजन के पीछे एक धर्मविशेष को संसार में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की भावना काम कर रही थी। पर उक्त सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने धर्म का ज्वलन्त तत्त्व प्रस्तुत किया। उस सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् के शुभ्र आलोक में अन्धकार का लोप

हो गया और संकुचित भावना को सफलता नहीं मिल सकी। इस प्रकार पुनः औद्योगिक क्रान्ति के इस वर्तमान युग में भी धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में भारत की परम्परा को पहचाना गया। उसके श्रेष्ठत्व की चकाचौंध को देखा गया, क्योंकि भारत इस समय परतन्त्र था। फिर भी सत्य पर अधिक काल तक पर्दा नहीं डाला जा सकता और उस विचारधारा की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस सम्मेलन की प्रतिध्वनि के रूप में सन् १९२९ में कलकत्ता में, और पुनः १९३३ में शिकागो में, १९३६ में दूसरी बार श्री रामकृष्ण परमहंस के शताब्दि-समारोह के अवसर पर विचार-संसद (पार्लियामेन्ट ऑफ फेथ्स) के नाम से पुनः कलकत्ता में इस प्रकार के सम्मेलनों का आयोजन हुआ। १९३६ में भी इसी प्रकार के प्रयास के द्वारा सर यंग फ्रान्सिस हसबैण्ड ने द्वितीय विश्वयुद्ध के भय को दूर करने का प्रयत्न किया। तदुपरान्त १९३८ में शिकागो में, १९४० में मद्रास में और एक छोटा-सा आयोजन १९५० में दिल्ली में हुआ। इस परम्परा में भी उसी सत्य का दर्शन होता है कि मनुष्य में सदा ही प्रकाश की ओर बढ़ने और उसकी खोज में लगे रहने की एक विलक्षण प्रवृत्ति है और यही प्रवृत्ति "तमसो मा ज्योतिर्गमय" तथा "असतो मा सद्गमय" की सूक्ति-वाक्यों में मानव की उस चिरंतन अभिलाषा की उत्कटता को प्रकट करती है। मनुष्य के यही प्रवृत्ति उसे संसार के अन्य सभी प्राणियों में, चाहे वे स्थूल शरीर या शारीरिक शक्ति में क्यों न बढ़े हुए हों, श्रेष्ठता प्रदान करती है।

नया विचार, नयी कड़ी, नया मोड़

●

आज के इस बदले युग में भी एक विशेषता है और वह यह कि वह विभिन्नता में भी एकता का दर्शन करना चाहता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना, यूनेस्को का प्रयास एवं राजनीति में सह-अस्तित्व, पंचशील, सत्याग्रह, अहिंसा आदि का प्रयोग इसी सत्य को प्रकट करता है। ये तत्त्व तो धार्मिक ही हैं, तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही था कि धर्म के क्षेत्र में व्यावहारिक रूप से इन्हें अंगीकार क्यों नहीं किया गया? अतः सर्वत्र यह माना जाने लगा कि विभिन्न विचारों, मतों, आराध्यों विश्वासों, मान्यताओं एवं धर्म-ग्रन्थों के बाह्य विभेदों के होते हुए भी खरबूजे की तरह अन्तर में सब एक हैं और उस एकता को प्रकट किया जा सकता है। सभी धर्मों के प्रति समभाव, सद्भाव एवं समन्वयमूलक दृष्टि रखने के पीछे यही अभिप्राय है।

बम्बई-सम्मेलन

●

इसी दृष्टिकोण से भारत में कुछ वर्षों से जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक विद्वान् एवं विचारशील मुनि श्री सुशील कुमारजी महाराज 'भास्कर' का प्रयत्न चल रहा था। यों तो बचपन से ही उनमें इस भावना की उर्मियाँ उठ रही थीं, पर "समय पाय तरुवर फले, केतिक सींचो नीर" की उक्ति को चरितार्थ करते हुए उनके दृष्टिकोण का विशद पैमाने पर प्रकटीकरण सर्वप्रथम १९५४ में बम्बई के सर्व-धर्म-सम्मेलन में हुआ, जिसका सूत्रपात करने के पीछे उन्हींकी साधना काम कर रही थी। उन दिनों राज्यों के पुनस्संगठन के प्रश्न को लेकर विभिन्न भाषाओं के परस्पर विरोध की समस्या ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया था। सर्वप्रथम भाषाओं की कटुता को दूर कर समन्वय स्थापित करने का

विचार चला, पर ऐसा निश्चय किया गया कि सभी के मूल में धर्म की स्थिति है और इसलिए धर्म-सम्मेलन के माध्यम से ही "एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय, जो तू सींचे मूल को फूले फले अघाय" की सूक्ति के अनुसार समस्याओं का हल करने का विचार किया गया। विकट परिस्थिति के होते हुए भी बम्बई के अनेक कर्मठ एवं अध्यवसायी कार्यकर्ताओं, जिनमें श्री मगनलालभाई दोशी और श्री जगन्नाथजी जैन के नाम उल्लेखनीय हैं, के परिश्रम एवं उत्साह से बम्बई सर्व-धर्म-सम्मेलन आयोजित किया गया। बम्बई के तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री मोरारजी देसाई की सहानुभूति ने बल दिया और सम्मेलन का उद्घाटन उन्हींके द्वारा सम्पन्न हुआ।

उक्त सम्मेलन में मुनिजी ने धर्म के प्रति अपनी उदात्त एवं ओजपूर्ण भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा था—"मेरा विश्वास है कि आत्म-शांति के लिए यदि धर्म को आवश्यक समझते हैं, तो विश्व-शांति के लिए उसका समन्वय भी आवश्यक है।" उन्होंने उस महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक भाषण में यह बताया कि "धर्म की जानकारी अपनी आत्मा की आवाज को सुनने से हो सकती है, अर्थात् स्वभाव ही धर्म है। धर्म के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थ कोई अनिवार्य नहीं। अन्तरात्मा की ध्वनि ही हृदय में धर्म के स्वरूप को प्रकट करती है। मनुष्य के जीवन की तीन आवश्यकताएँ हैं—शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक। शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामाजिक एवं राष्ट्रीय नेतागण प्रयत्नशील हैं। मानसिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साहित्य-निर्माताओं की साधनाएँ चल रही हैं, पर आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं शांति के लिए धर्मात्माओं की नैतिक प्रेरणाओं की आवश्यकता है।

"आज एक ओर परम्परा के मोह में विज्ञान का विरोध दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर भौतिक आविष्कारों की चकाचौंध में धर्म के प्रति अरुचि बढ़ रही है। ये दोनों ही अभीष्ट नहीं हैं। जहाँ एक के कारण यथार्थ और स्वार्थ से अनभिज्ञ रह जाते हैं, वहाँ दूसरे के कारण परार्थ और परमार्थ के आनंद से वंचित रह जाते हैं। अतः त्याग एवं लोक-सेवा, अहिंसा एवं रक्षण, अपरिग्रह एवं दान, आत्मगौरव एवं विनय की युग्म आवश्यकताओं को समझकर सर्वत्र समभाव की दृष्टि रखना ही धर्म का लक्ष्य है। तात्पर्य यह है कि हमारे आचार-विचार में प्रेम, सेवा, अहिंसा, विवेक एवं सत्य का आधार हो।"

उज्जैन-सम्मेलन

ठीक दूसरे ही वर्ष, १९५५ ई० में वैदिक, जैन तथा बौद्ध धर्म की विचारधाराओं का संगम-स्थल एवं अति प्राचीन सांस्कृतिक नगरी उज्जैन में मुनिजी का चातुर्मास हुआ और आपके निर्देशन में वहाँ पर ता० २६, २७ और २८ नवम्बर को सुप्रसिद्ध महाकाल के मंदिर के मैदान में द्वितीय सर्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन हुआ। इसका उद्घाटन मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा के द्वारा संपन्न हुआ था।

अब तक ब्रह्म एवं जीव के अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन तो हुआ था, पर इस सम्मेलन में मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज ने विभिन्न धर्मों के अद्वैतवाद के सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने कहा—"ऐसा सम्भव है कि विचार-भिन्नताएँ संघर्ष के कारण बनी हों, किन्तु भगवान महावीर का

अनेकान्तवाद, भगवान बुद्ध का विभज्यवाद, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, ईसा का अनुग्रहवाद, मुहम्मद का प्रत्येक कौमों के महापुरुषों को परमात्मीय सन्देश-वाहक मानने का श्रद्धावाद, महात्मा गांधी का महाशस्त्र—सत्य एवं अहिंसा, कबीर की गुणपूजा, संत नानक की बंधु-भावना, रामकृष्ण परमहंस की मैत्री-भावना अनेक रूपों एवं नामों में रहकर धर्म के तत्त्व की एकात्मकता का ही उद्घोष करते हैं, जो ध्रुव एवं शाश्वत हैं। धर्म ने मानव के विचारों को मोड़ दिया है और दैवी गुणों के प्रति आकर्षण प्रदान किया है, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रेम, शान्ति, सद्भावना, सहिष्णुता एवं संयम ही सब धर्मों की मुख्य विशेषताएँ हैं। उसके समक्ष देश, जाति, रंग आदि का किसी प्रकार का भेद नहीं है। मानवमात्र ही नहीं, प्राणीमात्र एवं चर और अचर एक कुटुम्ब है। अतः विश्व-शांति के लिए सार्वभौम राज्य नहीं, अपितु सार्वभौम धर्म की आवश्यकता है।"

इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए पोलैण्ड से डॉ० निमित्स विक्टर के नेतृत्व में चार धर्मगुरुओं का एक प्रतिनिधि मण्डल तथा जापानी बौद्ध भिक्षु श्री टेनजो बटनवे आये थे। भाग लेनेवाले भारतीयों में स्वामी प्रेमानन्दजी, हरिद्वार के श्री अखण्डानन्दजी और श्री शुकदेवानन्दजी, राजस्थान के अर्थ-मन्त्री तथा अजमेर राज्य के तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री हरिभाऊजी उपाध्याय, वृन्दावन के श्री बन महाराज, भोपाल राज्य विधान-सभा के अध्यक्ष श्री सुल्तान मोहम्मद, मध्यभारत के राजस्व एवं स्वायत्त शासन मन्त्री श्री सौभाग्यमलजी जैन, विनोबा भावे के कनिष्ठ भ्राता श्री शिवाजी भावे, संसद् सदस्य सेठ अचलसिंहजी एवं श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन,' थियोसोफिकल सोसाइटी के श्री सत्यनारायण चौधरी, रामजस कॉलेज, दिल्ली के प्राध्यापक श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री, जमीयत उलेमा हिन्द के मध्यभारतीय अध्यक्ष मौलाना सिद्दीकी, अमृतसर के ज्ञानी अमरसिंह चाकर आदि सैकड़ों प्रतिनिधि थे।

जहाँ बम्बई धर्म-सम्मेलन में १८ धर्मगुरुओं ने मिलकर अध्यात्म वृत्ति, सहअस्तित्व, सत्य, अहिंसा एवं प्रेम को विश्वधर्म-सम्मेलन के लिए आधार-भूमि के रूप में पाँच सिद्धान्त स्थिर किये, वहाँ उज्जैन-सम्मेलन में दिल्ली में विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन करने का निश्चय करते हुए यह प्रस्ताव पारित किया गया कि

(१) एक ऐसी धार्मिक संस्था बनायी जाय, जिससे संसार की समस्त धार्मिक संस्थाएँ सम्बंधित हों।
(२) धर्म के नाम पर उत्पन्न साम्प्रदायिक द्वेष को मिटाकर समभाव उत्पन्न किया जाय।
(३) समस्त धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए सुविधाएँ जुटायी जायँ।
(४) इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन किया जाय।

इस प्रस्ताव से यह स्पष्ट है कि दिल्ली में विश्वधर्म-संगम एवं अहिंसा शोधपीठ की स्थापना की कल्पना उज्जैन में ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगी थी।

भीलवाड़ा-सम्मेलन

•

इसी क्रम के अन्तर्गत फरवरी १९५६ में भीलवाड़ा में मध्यभारत राजस्थान प्रान्तीय सर्व-धर्म-सम्मेलन का आयोजन बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के प्रभाव से वहाँ उपस्थित ४० हजार नर-नारियों ने समभाव रखने की प्रतिज्ञा ग्रहण की।

इस प्रकार बम्बई, उज्जैन और भीलवाड़ा में दिल्ली के प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन के लिए सुदृढ़ पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ। इस भूमिका में उज्जैन-सम्मेलन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उक्त सम्मेलन में मुनिश्री ने कहा था कि "विश्व-धर्म के बिना विश्वराज्य की कल्पना हवाई किले की कल्पना के समान है। सार्वभौम धर्म की खोज के बिना जीवन अमृत नहीं बन सकता है। तत्त्व-रूप में धर्म एक है, अनेक नहीं; किन्तु भाषा, भाव आदि अन्यान्य विभिन्नताओं के कारण उसकी अभिव्यक्तियाँ विविध हैं और दृष्टियाँ पृथक् पृथक् हैं। उन सभी के समीकरण से इस भूतल पर एक विराट धर्म का दर्शन होता है। मानव एक है, पर विचार, व्यवहार एवं आवश्यकताओं और प्रादेशिक सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण अनेक हैं। इस अनेकरूपता में एक ऐसा अखण्डत्व अवश्य है, जो मानवमात्र के बन्धुत्व के स्वर को प्रतिध्वनित करता रहता है। समस्त वसुन्धरा एक कुटुम्ब है, सभी एक ही परिवार के अभिन्न सदस्य हैं, एक ही पूर्वज के सन्तान हैं और सभी की धमनियों में रक्त की गति भी एक-सी ही है। वह तत्त्व जो हृदय-ग्रन्थियों को भेद कर संशय, अविश्वास तथा भेद-भाव के संसार से परे ले जाकर अभिन्नता का दर्शन कराता है, धर्म ही है। भौतिक विकास भेदमूलक विश्लेषण पर और धर्म अभेदमूलक संश्लेषण पर बल देता है, यही धर्म की उपयोगिता है।"

मानव-धर्म की एक शाश्वत कमजोरी का विवेचन करते हुए उन्होंने कहा था कि "अपनी कमजोरियों को धर्म पर लादकर मनुष्य उसे एक गूढ़ रहस्य बना देता है। इससे ही धर्म की अनेक परिभाषाओं का विकास हुआ। धर्म के नाम पर होनेवाले संघर्षों के पीछे इसीका रूप प्रकट होता है। पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि जगत् के विभिन्न धर्मों का सापेक्ष दृष्टि से अलग-अलग अपना महत्त्व है। सभी अहिंसा एवं सत्य के हिमायती हैं। पिछली शताब्दियों में राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त, कनफ्यूसियस, लाओत्से, ईसा, मुहम्मद जैसे अवतार, तीर्थंकर, तथागत एवं पैगम्बरों का दर्शन मानव कर चुका है। वे महामानव थे और मानवता के ज्वलन्त प्रहरी तथा आत्मा के सन्देशवाहक थे। इन सभी को धर्म-प्रवर्तक कहा जाता है। धर्म का अर्थ मूल में स्वभाव है, समाज में सदाचार है, संस्कृति में आदर्श है, सभ्यता में सद्व्यवहार है, कला और साहित्य के क्षेत्र में श्रेय एवं अभ्युदय, सन्तों में सर्वोदय तथा मानसशास्त्रियों में स्वस्थता है। धर्म के अर्थ अगणित हैं, पर तात्पर्य एक ही है कि चैतन्य का धर्म चैतन्य है, जिसे आत्म-स्वभाव कह सकते हैं। आत्मा ही धर्म के स्रोत का उद्गम-स्थल है और आत्म-स्वभाव के परिपूर्ण विकास को ही धर्म मान सकते हैं।

"जहाँ भारत की सांस्कृतिक चेतना ने वैदिक, जैन एवं बौद्ध, तीन प्रमुख धर्म के स्वरूपों को प्रकट किया, वहाँ ईरान और पैलेस्टाइन ने पारसी, यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम धर्मों को जन्म दिया। कालक्रम से इनमें भी अनेक भेद एवं प्रभेद हुए। इस प्रकार संसार के प्रमुख धर्मों के रूप में आज वैष्णव, शैव, शाक्त, भागवत, सौरमत, संतपंथ, आर्यसमाज, दिगम्बर, श्वेताम्बर, मन्दिरमार्गी, स्थानकवासी, तेरापंथी, बौद्धों में हीनयान, महायान, सौतान्त्रिक, वैभाषिक, माध्यमिक, योगाचार आदि, ईसाइयों में रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, और इस प्रकार बोहरा, कादियानी, बहाई, सूफी, पारसी, यहूदी, कन्फ्यूसियस, सिन्तो, ताओ आदि के नाम आते हैं। जहाँ पश्चिमीय देशों में धर्म को एक सामाजिक संस्कार, जातीय एकता का प्रशस्त पंथ, राष्ट्रीय सुदृढ़ता की दीवार, लोक-सुखपरायणता का माध्यम माना जाता है, वहाँ पूर्व के तमाम देशों में उसे आन्तरिक अनुभूति, संयम, तप, समाधि, आध्यात्मिक स्वस्थता, परदुःखकातरता, सेवा और जीवन-मुक्ति का कारण माना जाता है।

आज धर्म पर अधर्म का शैवाल जम गया है। एक ओर वह वहम, अन्धश्रद्धा, कट्टरता, आडम्बर आदि का अजायबघर बन गया है। दूसरी ओर आध्यात्मिक अनुभवों का वह विशाल भण्डार है। इसका एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य में संशोधक वृत्तियों का अभाव होता जा रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि शोध और संस्कार के अभाव में संसार की कितनी ही उन्नत सभ्यताएँ, संस्कृतियाँ और धर्म के रूप समाप्त हो गये। धर्म मानव के लिए तभी तक अमरता प्रदान कर सकेगा, जब तक अतीत में और कालक्रम से उत्पन्न होनेवाली बुराइयों को निकाला जाता रहेगा तथा तत्त्वानुभवों की नयी पद्धतियों का निर्माण होता रहेगा।

धर्म वह है, जो व्यक्ति की कुंठित शक्तियों को जगा दे, संकल्पों को प्रोत्साहन दे, व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो, समष्टि को आत्मसात करने की प्रेरणा दे, व्यष्टि का विश्व में विलय करने की सामर्थ्य दे तथा विवेक एवं अप्रमाद की भावनाओं को जाग्रत करे। परन्तु दयाहीन एवं सेवा-सहायता को लौकिक धर्म कहना भी धर्म से परे की बातें हैं। वह धर्म नहीं, जो संकीर्णताओं से संकुल, रूढ़ियों से ग्रस्त, अन्धविश्वासों से निश्चेतन और बाह्य आडम्बरों से आवेष्ठित हो। वह तो धर्म पर अभिशाप है!

सभी धर्म वास्तव में एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं। सभी के मूल में प्रेम-रस, अखंड आनन्द और अलभ्य अमृत का स्रोत बह रहा है, जो निरंतर हमारे ज्ञान, श्रद्धा और चरित्र की अपूर्णता को भर रहा है। धर्म की सच्ची निष्ठा अभय एवं अहिंसा है। ज्ञान प्रेम, स्वतन्त्रता और समभाव धर्म के वरदान हैं। धर्म ने ही मानव को भौतिक शक्तियों से सावधान किया है। वैदिकों के ऋषभदेव, जैनों के आदिनाथ, ईसाइयों के हौवा, मुसल्मानों के बाबा आदम—सभी एक ही हैं और विश्व के समस्त मानव उसी एक ही की संतान या वंशज हैं। इस नाते सभी भाई-भाई हैं। अतः धर्म-श्रद्धालुओं का यह कर्तव्य है कि वे धर्म को भौतिकता, नास्तिकता, जड़वाद और धर्मान्धता से पराभूत होने से बचाने में लग जायें और आगे बढ़कर धर्मसमन्वय के महान् कार्य में जुट जायें और इस प्रकार—"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।" को चरितार्थ करें।

यही वह परम पवित्र एवं ऊँची भावना है, जो सर्वधर्म-सम्मेलनों के आयोजनों की मूलभूत आधार-शिला है। संक्षेप में दिल्ली में १९५७ ई० में आयोजित किये गये प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन तथा कलकत्ता के द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का यही लक्ष्य अथवा उद्देश्य था कि भौतिकवाद की संकीर्णता से ऊपर उठकर अध्यात्मवाद के प्रशस्त आधार पर मानव हृदयों में आत्मिक एकता को जगाकर विश्व-बन्धुत्व, विश्व-एकता एवं विश्वशान्ति के स्वप्न को साकार किया जाय।

• • •

प्रथम संचरण

दिल्ली का महत्त्व विश्व में अतीत काल से तो रहा ही है, भले उसका नाम समय-समय पर हस्तिनापुर आदि जो भी रहा हो, पर आज के युग में भी इसका महत्त्व अनूठा ही है। विश्व के समस्त देशों एवं राष्ट्रों की आँखें उसकी ओर लगी रहती हैं और लोग यह जोहते रहते हैं कि किसी अन्तरराष्ट्रीय समस्या या प्रश्न पर भारत के क्या विचार हैं? साथ ही सभी को ऐसी आशा है कि वास्तविक विश्वशान्ति का सन्देश भारत से ही आयेगा और एशिया की आत्मा भारत की राजधानी होने के नाते उसकी ओर सभी का ध्यान लगा रहना स्वाभाविक ही है। हाँ, एक बात आज की दिल्ली में यह अवश्य है कि वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति राजनीति के पीछे पागल है या उसे अपने व्यापार-व्यवसाय और काम-काज से इतनी भी फुरसत नहीं है कि वह कुछ समय निकालकर धर्म की दो बातों को सुन ले, किसीके दुख-दर्द को देखकर अपने दिल में करुणा या सेवा के भावों को उठने का भी अवसर दे।

विश्वधर्म-सम्मेलन की भावना के प्रेरक मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज उक्त निर्णय के अनुसार माघ संक्रान्ति, तदनुसार १३ जनवरी को दिल्ली पधारे और अपने उद्देश्य की प्राप्ति में लग गये। कुछ दिनों तक तो उनका समय विभिन्न लोगों से मिलने-जुलने और अपने सम्पर्क में आनेवाले लोगों में सम्मेलन की भावना को भरने में गया और वह जरूरी भी था, क्योंकि यह उक्ति बहुत सत्य एवं ठोस भावना की द्योतक है कि "एक दीप से जले दूसरा, ऐसे अगणित होवें", क्योंकि उसका प्रभाव लोगों पर चिरस्थायी होता है। इस अवधि में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डॉ० एस० राधाकृष्णन्, प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त। मौलाना अबुल कलाम आजाद, लोकसभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर, श्री गुलजारीलाल नन्दा, सेठ गोविन्ददास, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', श्री जैनेन्द्रकुमार आदि लोगों के अतिरिक्त रूस, जापान, हंगरी, वीयतनाम, चीन आदि देशों के राजदूत एवं विशिष्ट अधिकारी आपके सम्पर्क में आये।

कुतूहल

●

सम्मेलन की भावनाओं एवं कार्यक्रमों से पत्रकारों एवं उनके माध्यम से देश-विदेश के लोगों को अवगत कराने के उद्देश्य से आयोजित प्रथम पत्रकार-सम्मेलन में ३० मई १९५७ को मुनिजी द्वारा विषय पर प्रकाश डाला गया और उसका जब प्रसार हुआ तथा सम्मेलन में भाग लेने के लिए भेजे गये निमन्त्रण-पत्र एवं घोषणाएँ हजारों की संख्या में विभिन्न देशों के विभिन्न धर्मों के आचार्यों, प्रतिनिधियों, दार्शनिकों, विचारकों, साहित्यिकों और राजनीतिकों आदि को प्राप्त हुए तो बरबस उनका ध्यान 'विश्वधर्म-सम्मेलन' के इस नूतन नारे की ओर खिंचा और उनके मस्तिष्क को थोड़ा बल पड़ा। वे एक बार विचारों में तल्लीन हो गये। उनको वर्तमान विपरीत परिस्थिति में धर्म के आधार से विश्व-बन्धुत्व की स्थापना और उसके द्वारा विश्व-शान्ति की स्थापना के स्वप्न को साकार करने का यह नारा कुतूहलपूर्ण प्रतीत हुआ।

समर्थन

●

विचारदोहन, विचारविमर्श, पत्राचार एवं साक्षात् सम्पर्क के द्वारा वे लोग भी सम्मेलन के इस मत से कायल हो गये कि ये अखण्ड सत्य पर आधारित धर्म एक अविभाज्य तत्त्व हैं। मानव-जाति की शान्ति, सुरक्षा एवं आध्यात्मिकता का विकास, जिसके अभाव में समाज पतन की ओर अग्रसर हो रहा है, धर्म पर आधारित है। पर संकुचित मनोवृत्ति के कारण धर्म विभक्त हो गया है। लोगों ने सम्मेलन के सार्वभौम धर्म की खोज द्वारा और मानव-समुदाय को विशुद्ध धर्म के प्रचार के द्वारा एक धर्म परिवार एवं विश्व-बन्धुत्व का निर्माण करने के उद्देश्यों को सराहा, स्वीकार किया और सम्मेलन को सफल बनाने के लिए उनके सहयोग के वादे प्राप्त हुए। इतना ही नहीं, धर्म के नाम पर होनेवाले जघन्य कुकृत्यों के कारण अपने देश की राजनीति से धर्म का पल्ला छुड़ाकर धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करनेवाले शीर्ष नेताओं में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू, तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री एवं इस्लाम धर्म के एक विशिष्ट व्याख्याता और विचारक मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि का समर्थन और सहयोग भी प्राप्त हुआ। उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् का सहयोग प्राप्त होना तो स्वाभाविक ही था, क्योंकि उनमें तो यह भावना किसी-न-किसी रूप में विद्यमान थी ही, जिसका प्रकाश उनकी पुस्तकों में भी मिलता है। मुनिश्री द्वारा प्रेरित इस सम्मेलन के द्वारा उनके विचारों को भी व्यावहारिकता का जामा पहनाने का सफल प्रयास हो रहा था।

विदेशियों की आँखें तो भारत की ओर लगी ही थी। इस नवीन नारे से और इस जानकारी के कारण कि भारत की मिट्टी युग-युग से धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध है, इसने सदा ही विश्व को प्रेम, अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि के सन्देश दिये हैं, प्रेम का राज्य जरूर स्थापित किया है, पर कहीं अपने सामरिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया, शस्त्रास्त्र नहीं भेजे हैं, अतः आज के इस संत्रस्त युग में धर्म के नाम पर विश्वधर्म का यह नारा अवश्य ही विश्व-शान्ति का सही मार्ग है, ऐसा उन्हें भान होने लगा। अतः विदेशों के प्रतिनिधियों ने अपूर्व उत्साह से इस सम्मेलन में भाग लिया। उसी समय विश्व शाकाहार-सम्मेलन का भी भारत में ही आयोजन हो रहा था। अतः उन्हें एक पंथ दो काज का बड़ा

कार्यकारिणी के सदस्यगण, जिनके श्रम ने मानवीय श्रद्धा के इस महान आंदोलन को व्यापक बनाया।
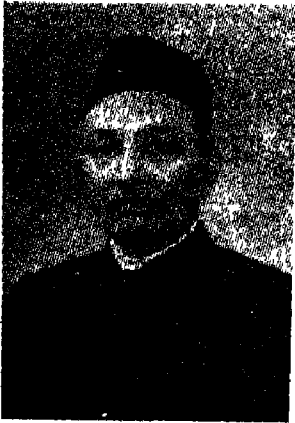
टी. डी. दामाणी, अर्थमंत्री

दीपचंद कांकरिया
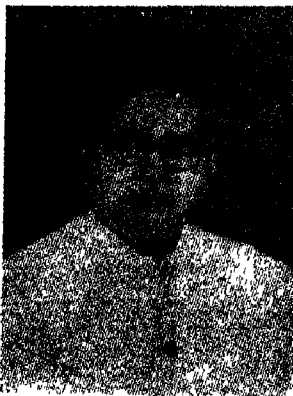
गिरधरलाल हंसराज कमाणी
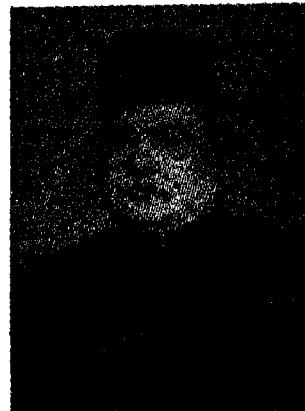
कानजी पानाचंद भिमाणी

ये हैं विश्वधर्म-सम्मेलन कलकत्ता के आधार-स्तंभ
और पूर्वांचल विभाग की कार्यकारिणी के सदस्यगण,
जिनके अपरिमित उत्साह ने समारोह को सफल बनाया।
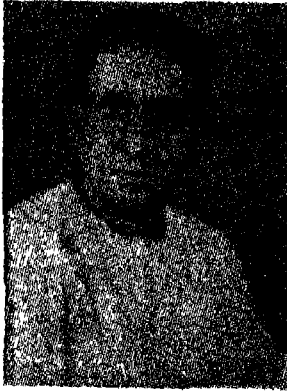
धर्मचंद सरावगी

जयचंदलाल रामपुरिया
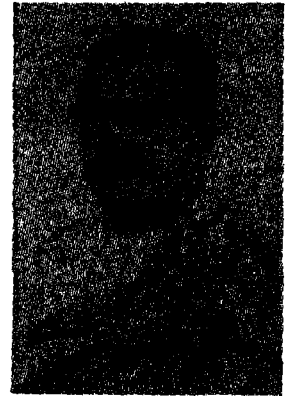
राजेन्द्र सिह सिंघी

रतनलाल रामपुरिया

चुनीलाल भाईचंद शाह

माणिकचंद रामपुरिया

सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही वास्तविकता तो यह है कि शाकाहार की भावनाओं के विकास को तब तक पूर्ण सफलता नहीं मिल सकेगी, जब तक वह आर्थिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी पहलुओं तक ही सीमित है। उसकी भी सफलता धर्म की भावनाओं के विकास से ही सम्भव है। इस प्रकार विश्वधर्म-सम्मेलन एवं विश्व शाकाहार-सम्मेलन, दोनों का भारत में ही और बहुत ही कम अन्तर के साथ एक समय में होना एक महत्त्वपूर्ण एवं अद्भुत घटना थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें अवश्य ही कोई ईश्वरीय प्रेरणा काम कर रही थी। परिणामस्वरूप दिल्ली में ता० १७,१८ और १९ नवम्बर को आयोजित प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन में २५ देशों के २६० प्रतिनिधियों ने भाग लिया और यह सम्मेलन अपने उद्देश्य में अत्यंत सफल रहा।

सहयोग

इस सम्मेलल्न को सफल बनाने में दिल्ली के अनेक सामाजिक राजनीतिक, एवं धार्मिक कार्यकर्ताओं का अपूर्व सहयोग मिला और सम्मेलन की सफलता उनके सहयोग का स्वयं ज्वलन्त प्रमाण है, फिर भी उनमें से संसद् सदस्य सेठ अचलसिंह, संसद् सदस्य सेठ गोविन्ददास, रूहानी सत्संग सावन आश्रम के सन्त कृपालसिंहजी महाराज, सेठ आनन्दराजजी सुराणा, सेठ सोहनलाल दूगड, काकासाहब कालेलकर, मौलाना हफिज़ुर रहमान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अनोखापन

इस सम्मेलन की जो कई अनोखी बातें थीं, वे ये हैं—(१) रूस के बारे में अन्य देशों में एक सामान्य भावना है कि वहाँ धर्म नाम की कोई चीज नहीं है और वहाँ तो धर्म का नाम लेना भी गुनाह है, आदि आदि। पर उस रूस से भी सरकारी प्रबन्ध से भेजे गये दो धार्मिक प्रतिनिधि—ताशकन्द एक्लेसियस्टिकल एकेडेमी के आर्चप्रीस्ट मुफ्ती जियाउद्दीन बाबा खानोव और एक्लेसियस्टिकल अकादमी, ट्रिथी सरगीयर के रेवरेन्ड कान्स्टेन्टिन ने इस सम्मेलन में भाग लिया। (२) दूसरी बात यह है कि दिल्ली का लाल किला सम्मेलन के लिए उपलब्ध हो सका, जो कभी किसी अराजकीय कार्यों के लिए उपलब्ध नहीं होता है, और (३) तीसरी बात इस सम्मेलन के आयोजन के लिए प्रबन्ध समिति की प्रथम महत्त्व-पूर्ण बैठक 'राष्ट्रपति भवन' में हुई। इसके अतिरिक्त विभिन्न दूतावासों का भी यथेष्ट सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रकार 'संघे शक्तिः कलियुगे' और 'दस की लाठी एक का बोझा' को चरितार्थ करते हुए सभी के सहयोग से यह सम्मेलन अपने उद्देश्य की नींव डालने में काफी सफल रहा।

आकर्षण

इस सम्मेलन से सारे विश्व के लोगों को विचारने का एक नया मसाला मिला, विश्व-शांति के लिए एक नया मार्ग खुला। भले ही उस पर चलना या न चलना लोगों पर निर्भर करता है और धर्म के

आधार पर विश्व-बन्धुत्व का एक नया सन्देश मिला। यद्यपि यह संदेश कोई नया आविष्कार नहीं था; फिर भी विस्मृति एवं अज्ञानता के कारण इसे नया कहा जा सकता है। वास्तव में इस संदेश से निकट भूत के दो प्रलयकारी विश्व-युद्धों, उसकी विभीषिकाओं तथा उसके उपरान्त संसार में व्याप्त भय, आशंका, तनाव एवं शीत-युद्ध के वातावरण और शस्त्रास्त्रों के निर्माण की होड़ एवं दौड़ से उत्पन्न तृतीय भयंकरतम विश्व-युद्ध और उससे उत्पन्न महाविनाश की आशंकाओं से संत्रस्त मानव को राहत मिली। परन्तु यह सम्मेलन तो अभी लोगों की आँखों में उँगली डालकर इतना भर केवल बता पाया है कि वास्तविक मार्ग क्या है और लोगों को किस ओर जाना चाहिए एवं अभी वे जा किधर रहे हैं और स्थिति क्या है? उस मार्ग पर लोगों को लाना, उस सन्देश को व्यावहारिकता प्रदान करना आदि तो बाकी ही है। इसी कारण से उस सम्मेलन में तीन वर्षों के बाद पुनः द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन के आयोजन का निर्णय किया गया और उसके संयोजन का भार मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज के कंधों पर दिया गया।

प्रस्ताव

●

उक्त सम्मेलन में उसके लक्ष्यों को व्यावहारिकता प्रदान करने के हेतु उपस्थित प्रतिनिधियों की सर्वसम्मति से १८ नवम्बर, १९५७ ई० को लाल किले के अधिवेशन में दो प्रस्ताव पारित हुए :—

प्रथम प्रस्ताव के अनुसार धर्म के आधार पर विश्व-बन्धुत्व की भावना के उद्रेक, विकास, प्रसार एवं प्रचार के लिए "विश्वधर्म-संगम" नामक एक संस्था की स्थापना की गयी। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार सभी धर्मों में परस्पर धर्म के नाम पर होनेवाले मतभेदों तथा अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझने की भावनाओं का त्याग करने तथा परस्पर प्रेम, सौहार्द एवं सहयोग के लिए प्रयास करने पर बल दिया गया। साथ ही विभिन्न व्यक्तियों, जातियों एवं राष्ट्रों में प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की भावना की स्थापना एवं विकास के लिए समुचित साधनों, उपायों आदि की जानकारी के उद्देश्यों से अहिंसा, सत्य एवं प्रेम की शक्तियों एवं क्षमताओं के अनुसन्धान और युग-युग के आध्यात्मिक आन्दोलनों एवं विचारों के सूक्ष्म अध्ययन के लिए एक अहिंसा शोधपीठ (अहिंसा रिसर्च इन्स्टीट्यूट) की स्थापना की गयी।

क्रियान्विति

●

प्रथम प्रस्ताव के अनुसार "विश्वधर्म-संगम" का गठन किया गया। सम्मेलन में भाग लेने-वाले विभिन्न प्रतिनिधियों के सहयोग से उसका एक संविधान तैयार किया गया और तदुपरान्त इस संस्था को भारतीय सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया। अभी इसकी ११ शाखाएँ विदेशों में और ४५ शाखाएँ भारत के अन्दर काम कर रही हैं। ये शाखाएँ अपने-अपने क्षेत्रों में विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच पारस्परिक सहयोग, प्रेम, भ्रातृत्व एवं अहिंसा के वातावरण के निर्माण में यथेष्ट रूप से प्रयत्नशील हैं। जहाँ तक संगम के प्रचारात्मक पहलू का प्रश्न है, संगम की भावनाओं के प्रसार के निमित्त "विश्वधर्म" मासिक पत्रिका का प्रकाशन अक्टूबर, १९५९ से किया जा रहा है। अभी इसका केवल हिन्दी संस्करण ही प्रकाशित होता है। धीरे-धीरे दूसरी भाषाओं में भी इसके

संस्करणों के प्रकाशन की योजना है। इसके ग्राहकों की संख्या काफी तेजी से बढ़ रही है, जो इस बात का प्रमाण है कि लोगों में उसकी भावनाओं के प्रति अभिरुचि है। साथ ही इस पत्रिका को विचारशील बौद्धिक वर्ग के लोगों ने काफी सराहा है। आशा है, यह पत्रिका लोगों के हृदयों और मस्तिष्कों को विश्व-धर्म की उन्नत भावनाओं के प्रकाश से आलोकित कर उनके जीवन को तदनुरूप बनाने में उपयोगी सिद्ध होगी।

दूसरे प्रस्ताव के अन्तर्गत "विश्व-अहिंसा संघ" की स्थापना की गयी, जिसका उद्देश्य अहिंसा शोधपीठ की स्थापना रखा गया। विश्व-अहिंसा संघ के अन्तर्गत पाँच समितियों का गठन किया गया। प्रथम दो समितियों का काम दिल्ली में अहिंसा विश्वविद्यालय एवं शोधपीठ के लिए भूमि और भवन आदि के लिए अर्थ आदि की व्यवस्था करना है और इस दिशा में काफी प्रगति हुई है। तीसरी समिति है अहिंसा विश्वकोष समिति। इस समिति का भी कार्य काफी आगे बढ़ा है। संसद् सदस्य सेठ गोविन्द-दास तो विश्व-अहिंसा संघ के अध्यक्ष हैं ही। उनकी देख-रेख में कोष के स्वरूप का निर्धारण हो चुका है, शीर्षकों का निश्चय किया गया है, कुछ ग्रन्थों एवं पुस्तकों का संकलन किया गया है। कोष के सम्पादन-कार्य के लिए सर्वश्री काका कालेलकर, वासुदेव शरण अग्रवाल, गोपीनाथ कविराज (वाराणसी), दलसुख भाई मालवणिया (अहमदाबाद), सोमेन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ० सतकौरी मुखर्जी, डॉ० नथमल टांटिया, डॉ० हीरालाल चोपड़ा, डॉ० कालिदास नाग, आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, श्री पुण्यविजयजी महाराज आदि से सहयोग का आश्वासन मिला है। प्रचार-समिति के द्वारा दो प्रकार के काम किये गये हैं—पहला, हिंसा-निरोध और दूसरा, अहिंसा-प्रसार। हिंसा-निरोध की दिशा में माता के नाम पर गुड़गाँव में होनेवाले २५-३० हजार सूकरों के वध की परम्परा को मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज के प्रयास से बन्द किया जा सका। अहिंसा की भावना के प्रसार के लिए हर तीन महीने बाद 'विश्वधर्म' का 'अहिंसा-अंक' प्रकाशित किया जा रहा है और समय-समय पर अहिसा-गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। पाँचवीं, समिति—अहिंसा-चिकित्सा अनुसन्धान समिति का भार संत कृपाल सिंहजी महाराज पर है। वे एवं देश के दूसरे वरिष्ठ महात्मागण भारतीय अहिंसात्मक चिकित्सा-पद्धति के गौरव को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। इस दिशा में कुष्ठ रोग के लिए एक औषध का अनुसन्धान किया गया है; आशा है, शीघ्र ही उसका परीक्षण सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के बाद वह कुष्ठ रोग के रोगियों के लिए रोग से मुक्ति दिलाने मे काफी सहायक हो सकेगा। इसके अतिरिक्त अहिंसा विषय पर अनुसन्धान करने और उस विषय में 'डाक्टरेट' की डिग्री प्राप्त करने के लिए अहिंसा स्कौलरशिप की भी योजना है।

घोषणाएँ

'विश्वधर्म-संगम' की स्थापना धर्म (शाश्वत धर्म) के आधार पर निम्नांकित उद्देश्यों से हुई है :—

(१) वह लोगों में धर्म की भावना के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने एवं उसके विकास के लिए प्रयास करेगा।

(२) वह लोगों में जीवन एवं धर्म के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने एवं प्रेरणा प्रदान करने का प्रयास करेगा।

(३) वह विश्व-शान्ति एवं मानव मात्र के सर्वांगीण विकास एवं प्रगति के लिए लोगों के नैतिक स्तर को उन्नत बनाने का प्रयास करेगा, और

(४) धर्म, जाति, राष्ट्र या अन्य किसी भेदोत्पादक तत्त्वों के नाम या आधार पर होनेवाली उत्तेजनाओं में वह शान्ति की स्थापना करने एवं शांति बनाये रखने का प्रयास करेगा।

उक्तियाँ

(१) "यह (विश्वधर्म-सम्मेलन) बहुत ही नेक काम है। भौतिकता धर्म को नहीं निगल सकती और पाप धर्म को नहीं खा सकता। विश्वधर्म-सम्मेलन का महान आयोजन संसार के लिए कल्याणकारी है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, भारत और विदेशों में प्रचलित सभी धर्मों का सार अहिंसा और सत्य है। सभी धर्मों का प्रथम विधान यही है कि मनुष्य भाई-भाई की तरह रहे, अहिंसा और सत्य की ओर झुके, सभी को प्रेम से एक-दूसरे के निकट लाये और मानवता के नाते घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे। भौतिकता आज हमारे ऊपर असर डाल रही है। विश्व के लिए यह संकट-काल है। धर्म सम्बन्धी विश्वास यदि डिगा, तो मानव जाति को सँभलने का कोई आधार नही रह जायगा।"

—डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

(२) "विश्वधर्म-सम्मेलन आपको सभी मनुष्यों एवं धर्मों के प्रति समादर का भाव रखने को प्रेरित करता है और वह अनुभव कराता है कि कोई एक व्यक्ति, जाति, धर्म या राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई एवं ईश्वरत्व की प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा रहती है। आपको समझना चाहिए कि यह बहुत बड़ा काम सम्पन्न कर रहा है।"

—डॉ० एस० राधाकृष्णन्

(३) "विश्वधर्म-सम्मेलन की योजना एक बहुत नेक काम है। इसमें कोई दो मत नही हो सकता। परन्तु विश्वधर्म-सम्मेलन का विशेष ध्यान भाषा, जाति, मत एवं विचारों के नाते होनेवाली हिंसाओं को भी रोकने की ओर जाना चाहिए।"

—जवाहरलाल नेहरू,

(४) "जिस उद्देश्य और मकसद को लेकर विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है, वह इतना खुला है कि बहस की कोई जरूरत ही नही है। मजहब के जरिये से और तमाम दरवाजों से शांति का प्रचार किया जाय। चुनांचे मुझे निहायत खुशी है कि इसी मकसद के लिए यह विश्वधर्म-सम्मेलन हुआ और मेरी दिली ख्वाहिश है कि यह सम्मेलन अपने मकसद में कामयाब हो।"

—स्व० मौलाना अबुल कलाम आजाद

इनके अतिरिक्त इस सम्मेलन में अनेक विद्वानों एवं प्रतिनिधियों के भाषण हुए, जिनमें सर्वश्री काकासाहब कालेलकर, सन्त कृपाल सिंहजी महाराज, सिद्धाचार्य डॉ० सर्वागानन्द चैतन्य, स्वामी शरणानन्दजी, जापानी प्रतिनिधि ईसा इसानी, मुनिश्री नगराजजी, स्वामी प्रेमानन्दजी, मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, यू० एन० ढेबर, पाकिस्तान के सैयद मुहम्मद काबिल, अमेरिका के अलेक्जेन्डर मार्क, पीर जामिन निजामी, रूस के आर्च प्रीस्ट रूशात्सकी, हंगरी के रेवरेण्ड फैरिज बर्की,

कम्बोडिया के भिक्षु ह्वयफान और चंद्ररत्न हंगरी के जौन डोबोज, अमेरिका के रिचर्ड ग्रे, पण्डित धर्मदेवजी, श्रीमती शिरन बोमान, पाण्डिचेरी के डॉ० इन्द्रसेन, सेठ गोबिन्ददास, रणछोड़दासजी गोस्वामी, मुफ्ती जियाउद्दीन बाबा खानोव, पूर्व पाकिस्तान के स्वामी विशुद्धानन्द, कैलिफोर्निया के टेलर, ईरान के ए० हिकमत, स्विट्जरलैण्ड के हतिपाल, हालीवुड (अमेरिका) के इन्द्र देवा, जर्मनी के फ्रैडरिक, डेन्मार्क के ओल्यूफएगर्ड, हौलैण्ड की मेरी स्टुअर्ट, सेठ अचल सिंह, राजा शिवदान सिंह (जयपुर), सरदार लाल सिंह, सेठ सोहनलाल दूगड़ तथा स्वागताध्यक्ष साहू शांतिप्रसाद जैन के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस सम्मेलन में उसके प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमारजी महाराज द्वारा दिये गये भाषणों का सार इस प्रकार है :—

"विश्व विनाश और प्रलय के द्वार पर खड़ा है, जिसके प्रधान कारण हमारे विचार से तीन हैं :

(१) व्यक्तिगत एवं समष्टिगत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हिंसा की अत्यधिक वृद्धि हो गयी है।

(२) भौतिकता एवं भोग-लिप्सा ने मनुष्य की आध्यात्मिकता को पराजित करने के लिए आक्रमण कर दिया है।

(३) नास्तिकता, जड़वाद एवं मर्यादाहीनता के कारण मानवता का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है और परिणामस्वरूप नैतिकता एवं सदाचार के नियम टूट रहे हैं।

अतः जब तक हिंसक शक्तियों के विरुद्ध अहिंसा का विश्वव्यापी मोर्चा स्थापित नहीं किया जायगा और विश्व के हृदय में अहिंसा, भूतदया और पारस्परिक सहयोग भावना की प्राणप्रतिष्ठा नहीं की जायगी, तब तक विश्व-शांति स्वप्न मात्र ही रहेगा।

धर्म को धन दबोच न ले एवं मनुष्य के अस्तित्व को सत्ता तथा सम्पत्ति विनष्ट न कर दे, इस खतरे से बचने के लिए मानव जाति के धार्मिक और आध्यात्मिक द्रष्टाओं के संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है। मेरी दृष्टि में विश्वधर्म इसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन है।

यह निश्चित है कि भौतिक शक्तियो से आत्मा की शक्ति का झरना नहीं बहेगा, परमाणु बम और उद्जन बम प्रेम और आनन्द का कूप नहीं खोद सकेगा। यह चमत्कार अहिंसा में ही है कि वह आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में सभी प्रकार से मानवता को पोषण दे सकती है। हमारा विश्वास है कि :—

(क) राजनीतिक समझौतों से युद्धों का अन्त नहीं हो सकता है।

(ख) कपट, कूटनीति और संघर्षों से मानवता का विकास नहीं हो सकता है।

(ग) सामाजिक रूढ़ियों, प्राणी-निर्दयता, वर्गभेद और जाति-द्वेष से संसार का लाभ कभी भी और किसी भी तरह नहीं हो सकता है।

(घ) उच्छृंखलता, संग्रह-वृत्ति और शोषण मनुष्य जाति के लिए कदापि हितकर नहीं है।

विश्व-शांति का सूर्य तो अहिंसा के आकाश में ही चमकेगा और अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है। प्रश्न यही है कि यह विश्व-व्यापी महान कार्य किस प्रकार हो और व्यक्ति एवं समष्टि के क्षेत्र में पैठती हुई हिंसा का निरोध किस पद्धति से हो ? ● ● ●

दिल्ली की उपलब्धियाँ

सम्मेलन का जो पौधा बम्बई के धर्म-सम्मेलन में लगाया गया और जिसे दिल्ली के विश्वधर्म-सम्मेलन के द्वारा सींचा गया, उसमें कोंपलें तो अब निकलते दृष्टिगोचर हो रही हैं, जिसे सम्मेलन की वास्तविक सफलता कही जा सकती है। सच ही है कि विशाल वट-वृक्ष का बीज एवं अंकुर भी बहुत छोटा होता है और बड़ी-से-बड़ी नदियाँ भी अपने उद्गम-स्थान में एक छोटी-सी धारा ही रहती है। उसी प्रकार सम्मेलन के उस लघु बीज का रूप अब प्रगट होता-सा दीख रहा है, भले ही वह सम्मेलन के नाम से न हो, पर उसीकी भावनाएँ आज विश्व के महान राष्ट्रों के कर्णधारों पर भी असर कर रही हैं। यह सम्मेलन की भावनाओं की शाश्वत सत्यता एवं सफलता का ही परिचायक है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिंसा का दम टूट गया है और विश्व के विध्वंस का भय एवं भू-विस्फोट का आतंक हमारे इस लहलहाते जगत् से दूर हो रहा है तथा हम सभी हिंसक संसार से अहिंसा, प्रेम और शांति के स्वर्गीय राज्य में प्रवेश कर रहे हैं। राजनीति भी अहिंसा और प्रेम का चोला पहन कर अपने स्थिर आसन को जमाये बैठी है तथा न्याय और व्यवस्था की संस्थाएँ भी अहिंसा और मानवता से अपना नाता जोड़े बैठी हैं। हिंसा की धमकियाँ देने वाले बड़े-बड़े राष्ट्र भी अहिंसा की भाषा में बोलने लगे हैं। जब हम रूस जैसे समर्थ राष्ट्र के एकमात्र तानाशाह श्री ख्रुश्चेव की सन्तों-सी वाणी सुनते हैं कि सारे शस्त्रास्त्रों को समुद्र में डुबो दो, सेनाओं को भंग कर दो, सैनिक गठबन्धन समाप्त कर दो, मानवता को शांति की साँस लेने दो, अर्थ एवं उद्योग के नीचे मनुष्यता का शोषण मत करो, आदि। जब हम देखते हैं कि 'लौह-आवरण का देश' कहे जाने वाले रूस के प्रधान मंत्री एवं अन्य शीर्ष नेतागण विभिन्न देशों की सद्भावना-यात्रा करते हैं तथा अन्य देशों के नेताओं को अपने देश में निमंत्रित करते हैं और यह देखते हैं कि सामान्य भाषा में वर्तमान विश्व के दो महान शक्तिशाली एवं तथाकथित विरोधी राष्ट्रों के नेता—आइसन हावर और ख्रुश्चेव एक-दूसरे के देशों में जाकर एक-दूसरे से मित्रवत् मिल रहे हैं, तो ऐसा लगता है कि विश्वधर्म-सम्मेलन की भावनाएँ लोगों के दिलों में घर कर रही हैं तथा युग हिंसा से अहिंसा की ओर मोड़ लेना चाहता है। कलियुग समाप्त हो रहा है।

जब अमेरिका जैसे भौतिक समृद्धि के शिखर पर विराजित विशाल देश के राष्ट्रपति श्री आइसन-हावर यूनाइटेड चर्च में यह कहते हैं कि "धर्म की डोर ही समूची मनुष्य जाति को प्रेम के सूत्र में बाँध सकती है" और जब संयुक्त अरब गणराज्य के सर्वेसर्वा कर्नल नासिर यह कहते हैं कि "इस्लाम और ईसा के मानने वाले एक हो जाओ, धर्म की भावना ही हमें बुराइयों से ऊपर उठा सकती है" तथा भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् कहते हैं कि "विश्वधर्म के बिना विश्व-संस्कृति का विकास असंभव है।" तब ऐसा स्पष्ट रूप से लगता है कि १९५७ में दिल्ली में जो विश्वधर्म-सम्मेलन हुआ उसकी भावना आज समस्त विश्व में साकार हो रही है। सम्मेलन की यही बड़ी सफलता है। आवश्यकता केवल इस्लाम और ईसा के ही मानने वालों को एक होने की नहीं है, बल्कि समस्त विश्व के सारे धर्मों को मानने वालों के एक होने की है। परन्तु अभी इसी सफलता पर खुश होने और प्रसन्न होकर चुप बैठ जाने की जरूरत नहीं है। यह तो गाड़ी खुलने के पहले की सीटी है! अभी इसके इंजिन को चलना है, रफ्तार बढ़ाना है और सकुशल मंजिल तक पहुँचना है। संपूर्ण विश्व को एक 'स्वीट होम' बनाना बाकी है, जहाँ सभी भाई-भाई की तरह प्रेम और शांति एवं सहयोग से रह सकें; जहाँ कलह, द्वेष, घृणा, विभेद, शोषण आदि का नाम न हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि सम्मेलन का केवल नारा ही न लगाया जाय और भावनाओं का केवल उच्चारण ही न करें, बल्कि उन्हें अपने जीवन में अपनायें, आचरण मे उतारें। ● ● ●

धर्म का ध्येय — संत कृपाल सिंह

मैं तो एक ही बात जानता हूँ कि प्रेम से बढ़कर इस दुनिया में कुछ नहीं है। मैं मुनिश्री सुशील कुमार से इसलिए चमत्कृत हूँ, क्योंकि उन्होंने आपस में झगड़ने वाले धर्म-धुरंधरों को प्रेम के मंच पर इकट्ठा किया। उनका यह महान मिशन अवश्य सफल होगा, अन्यथा दुनिया बच नहीं सकती!

द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन २ फरवरी १९६० को अपराह्न में वैदिक, जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख, बहाई, पारसी आदि धर्मों के मंगलाचरण-पाठ से प्रारंभ हुआ। तदनन्तर विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों द्वारा अपने देश के संदेशों का पाठ किया गया।

स्वागत-भाषण में स्वागताध्यक्ष श्री मोहनलाल जालान ने कहा :

आज हम यहाँ धर्मगुरुओं का स्वागत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव करते हैं। उन सभी के प्रति आभार प्रदर्शन करता हूँ, जिन्होंने अनेक असुविधाओं के होते हुए यहाँ आकर सम्मेलन में योगदान प्रदान किया है। कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि दूर देशों की यात्रा आदि की कठिनाइयो को सहते हुए जिन महानुभावों ने पधारने का कष्ट किया है, उनके हम कृतज्ञ हैं। इस सम्मेलन से विचारों के स्पष्टीकरण का सुअवसर मिला है और आशा है कि इसमें सफलता मिलेगी। विभिन्न धर्म विभिन्न मार्ग के समान हैं, जिनके लक्ष्य एक ही हैं। विश्वधर्म-सम्मेलन का उद्देश्य धर्म के सच्चे तत्त्वों के प्रति रुचि उत्पन्न करने का है। संसार भर के लोग एक-दूसरे की बात सोचें, तत्त्वों को पहचानें, बन्धुत्व की भावना को समस्त विश्व में फैलायें।

किसी महापुरुष ने कहा कि धर्म जीवन से भिन्न नहीं है, जीवन ही धर्म है, धर्म के बिना जीवन मनुष्य-जीवन नहीं, बल्कि पशु-जीवन है। सामान्य धर्म का जीवन में लाभ है, वह धर्म का अंग है। महात्मा गांधी ने कहा—आज से जिन्दगी को गौर से देखिए, किस प्रकार खाना, पीना, बैठना अन्य बर्ताव कैसा करना। उसके बाद जो छाप पड़े, वही मेरा धर्म है। जैसा अपने धर्म को महत्त्व दें, वैसा ही दूसरे के धर्मों को भी महत्त्व दें। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका इससे अलग कोई अस्तित्व नहीं है। अपने जीवन के व्यवहारों में समाज से जो भी प्राणी सम्बन्धित हो, वह इस समाज का अंग है। व्यक्ति, समुदाय, व्रत आदि अलग होते हुए भी सभी के आधार एक हैं। सभी उचित को पुण्य एवं अनुचित को पाप की संज्ञा देते हैं। सभी धर्मों में उपकार को बड़ा धर्म-कार्य तथा अपकार एवं पीड़ा को पाप कहा गया है। इसे मानव-धर्म कहते हैं। हम जिसे अपने लिए अच्छा नहीं समझते, दूसरों के साथ वैसा व्यवहार न करें। यही पर-पीड़ा की भावना का खयाल धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग है। दूसरे को पीड़ा पहुँचाने की अज्ञानता को पाप कहते हैं। अज्ञानता से पाप और ज्ञान से पुण्य होता है। मन के सभी

ये हैं विश्वधर्म-सम्मेलन के वे उत्साही कार्यकर्तागण, जिनके रात-दिन के परिश्रम से धर्म-समन्वय का विचार जन-जन तक पहुंचा और विचार-प्रचार का महान कार्य हुआ।

बलदेवराज जैन

महेन्द्र भाई मेहता
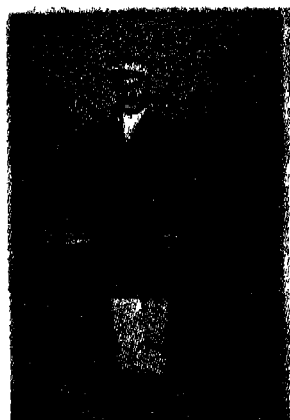
प्राणजीवन हरिदास गांधी
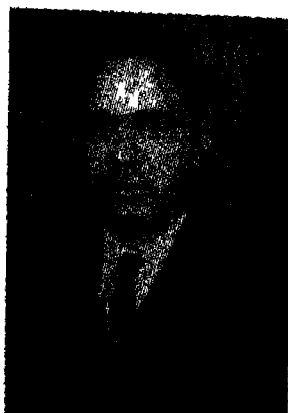
माणिकचंद गेलड़ा
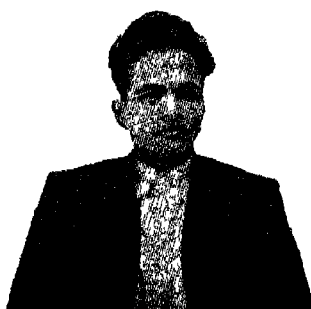
भँवरलाल दस्सानी

जोगेन्द्रलाल ओसवाल

साथ ही तन-मन-धन से पूरा सहयोग अर्पित करते हुए यह बता दिया कि हम सभी धर्मों व धर्माचार्यों को प्रेम के एक ही मंच पर एकत्रित करना चाहते हैं !

छोटेलाल मेहता — शांतिलाल नाहर — भूधरमल राजगढ़िया
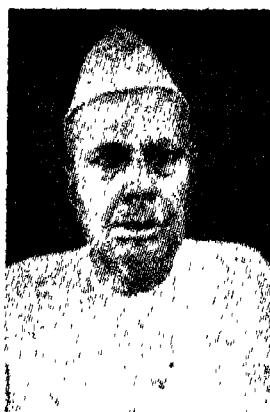
सुरेन्द्रप्रकाश जैन — उदयचंद जैन — मणीलाल नरसीदास

प्रभुदास हेमाणी — शांतिभाई संघवी — दलसुखलाल एन. सेठ
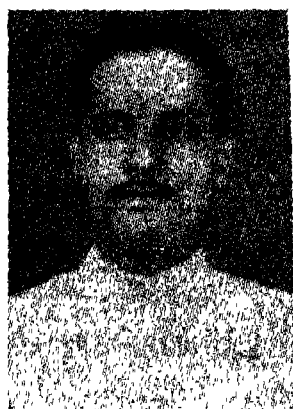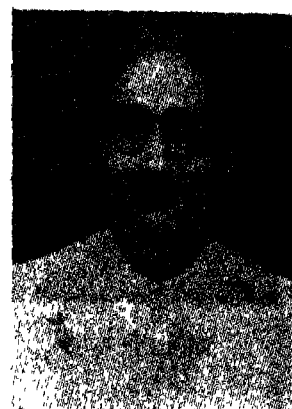
दरवाजे खुले हों, उस समय जो विचार करें वह धर्म में सम्मिलित है। वह धर्म-बोध का कारण है। विचार की भिन्नता, वाद-विवाद, संघर्ष-हिंसा आदि का परिणाम बहुत दुखद होता है। जिन्हें हिंसा पसन्द है, उनके पापों की सीमा नहीं है। आज शस्त्रास्त्रों का निर्माण किया जा रहा है और युद्ध के आयुधों की होड़ लगी है। अब आध्यात्मिक शक्तियों का विश्व-शान्ति के लिए सफल कार्यक्रम हो। इसी उद्देश्य से विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन किया गया है।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए अपने उद्घाटन-भाषण में चैतन्य मठ, मायापुर के आचार्य त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति विलास तीर्थ महाराज ने कहा :

विश्वधर्म-संगम के विचार-विमर्शों में भाग लेने के लिए भारत एवं विदेशों के विभिन्न भागों से आये हुए पवित्र एवं धर्मात्मा नर-नारियों के इस महान सम्मेलन का उद्घाटन करने का जो मुझसे आग्रह किया गया है, उसे मैं अपने लिए एक महान अवसर और अनुपम सम्मान का विषय मानता हूँ।

आज विश्व के विचारशील लोग इस बात से बहुत ही विक्षिप्त एवं उद्विग्न हैं कि संसार अपने पथ से दूर किधर बढ़ा जा रहा है। विगत दो विश्व-व्यापी महायुद्धों से महाविनाश एवं संहार की उत्पत्ति हुई, पर ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध-जनित मानव-यन्त्रणाओं एवं वेदनाओं इतिहास से संसार को इतना शीघ्र विस्मरण हो गया है कि वह सिर पर आणविक शस्त्रास्त्रों को लाद कर शीत-युद्ध के लिये सन्नद्ध है।

विश्व-व्यापी खतरे की इस घड़ी में सद्ज्ञानी मानव चुपचाप बैठा नहीं रह सकता। सभ्यता एवं मानवता को विनाश से बचाने के उपायों एवं साधनों का पता लगाने के लिए मानवता हम सभी को प्रेरित कर रही है। विनाशकारी युद्धों और महायुद्धों की पुनरावृत्ति को रोकने के सदुद्देश्यों से ही राष्ट्र-परिषद् एवं संयुक्त राष्ट्र-संघ का गठन हुआ, परन्तु वे असफल रहे या असफलता ही हाथ लगने को है। इन असफलताओं एवं सम्भावित असफलताओं के कारणों को समझना कठिन नहीं है। जब तक व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के द्वारा परस्पर एक-दूसरे की हिंसा, घृणा एवं शोषण को पूर्ण रूप से बन्द नहीं किया जाता, उन्हें विश्व-शान्ति की स्थापना एवं उस स्थिति को बनाये रखने में सफलता नहीं मिल सकती। हम यह विश्वास नहीं कर सकते कि कोई व्यक्ति या राष्ट्र उस स्तर को प्राप्त कर सकता है, जब तक एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ एकत्व के आधारभूत सिद्धान्त पर अपने को पूर्ण रूप से एक सूत्र में बाँध नहीं लेता। एकत्व की स्थापना शक्ति या दूसरों पर अपनी श्रेष्ठता थोप कर सम्भव नहीं है। हम लोग यह विश्वास नहीं करते हैं कि आध्यात्मिक चेतना की सतह पर प्रेम एवं सेवा की भावनाओं के विकास के सिवा और किसी भी उपाय से वैसे एकता स्थापित हो सकती है। सूर्य की किरणें अनेक हो सकती हैं, पर यह निश्चित है कि उनका केन्द्र या उद्गम एक है और किरणों के गुण समान हैं। प्रत्येक एवं सभी प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, की आत्मा निश्चित रूप से एक ही आध्यात्मिक चेतना का अंग है और वहाँ किसी प्रकार के विभेद, घृणा, द्वेष, श्रेष्ठता या निकृष्टता की कोई गुंजाइश नहीं है। इसीलिए आध्यात्मिक प्रेम एवं सेवा के सिवा अन्य किसी भी उपाय से व्यक्तियों एवं राष्ट्रों को एक सूत्र में बांधने

का प्रयास कृत्रिम और पूर्णतः अस्थायी होगा । व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के बीच परस्पर एकत्व के बोध के बिना विश्व-शांति की स्थापना एवं विकास सम्भव नहीं है । यह सत्य है कि सफलता जादू की तरह या रातों रात नहीं मिल सकती है, परन्तु सभी सही विचारकों के द्वारा चतुर्दिक प्रयास अवश्य किये जाने चाहिए और वह प्रयास मनुष्यों की भावनाओं, इच्छाओं एवं आचरणों को पथ-प्रदर्शित करने में एक महान शक्ति सिद्ध होगा । प्रत्येक व्यक्ति सर्वप्रथम अपने में शांति की स्थापना करके स्वयं अपनी बुद्धि एवं विचारों का स्वामी बने और तब उसका प्रसार दूसरों में करे ।

मैं विश्व के आध्यात्मिक आचार्यों से इस महान कार्य को अपने कंधों पर उठाने की अपील करता, हूँ क्योंकि केवल वे ही इस आन्दोलन का श्रीगणेश कर सकते हैं और सफल भी हो सकते हैं । अपने अनुयायियों पर अपने आध्यात्मिक प्रभाव के द्वारा मानवीय गुणों के आधार पर एकता के माध्यम से वे एक नये विश्व का निर्माण कर सकते हैं । हम लोग यह विश्वास नहीं करते हैं कि लोगों के जीवन में बिना आध्यात्मिक वातावरण एवं नैतिक पृष्ठभूमि के इस महान उद्देश्य की सिद्धि मिल सकती है ।

लोगों का शिक्षण एवं विकास स्वार्थ के आधार से हो रहा है । वे किसी को उसका जो उचित हक है, वह नहीं देते । यदि उसके लिए कभी बाध्य होना पड़ता है, तो उसे अपनी दया की संज्ञा देते हैं और यह भूल जाते हैं कि किसी को उसका उचित अधिकार देना दया नहीं है । मानव मात्र का लक्ष्य सर्वथा एक है । जिस निरन्तर प्रवाहित स्रोत से हम सभी निकले हैं, वह एक है और विभिन्न व्यक्तियों एवं उनके द्वारा विभिन्न राष्ट्रों में विभेदों का विकास माया के कारण होता है और विश्व की सारी बुराइयों का वही मूल कारण है । विभेद से विभिन्न व्यक्तियों एवं राष्ट्रों में कलह की उत्पत्ति होती है । व्यक्तियों से ही राष्ट्रों का निर्माण होता है । और हम लोगों को चाहिए कि व्यक्ति अपने अन्तर में शान्ति लेकर उसकी स्थापना करे और उसके लिए अपने वैयक्तिक जीवन में वैराग्य की शिक्षा बचपन से वृद्धावस्था तक दे ।

हमारे देश के पुरातन ऋषियों की पद्धतियों में कुछ भिन्नता रही हो, परन्तु मानवीय लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन्होंने भी सर्वसम्मति से हिंसा, द्वेष एवं शक्ति-प्रयोग के बहिष्कार को स्वीकार किया है । वे उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए शान्ति, प्रेम और सेवा के शान्तिमय तरीकों में विश्वास करते थे ।

आहार, निद्रा, भय और मैथुन में जानवरों और मनुष्यों में क्या अन्तर है ? यह सत्य है कि ये सभी दोनों में समान हैं । परन्तु पशुओं में एक चीज की कमी है, जो मनुष्यों में पायी जाती है और वह है जीवन में आध्यात्मिक गुणों का विकास ।

चैतन्य महाप्रभु के गद्दी के आचार्य होने के नाते मैं उनकी शिक्षाओं के रूप में इतना कहूँगा कि दूसरों के प्रति हमारा आचरण एवं व्यवहार इस प्रकार का हो :

तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना
अमानिनां मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ।

दूसरों से मिलने का हमारा ढंग इस प्रकार हो कि :

दन्तैन निधाय तृणाकम् पादायूर निपात्या,
कृत्वा च काकुशतं एतदहं अहम ब्रवीमि ।

संसार के सभी विचारशील व्यक्ति दूसरों के प्रति सहिष्णुता, समादर का बर्ताव करें, उचित अधिकारों को सहर्ष दें, उनके दिलों को प्रेम एवं करुणा से जीतें, शक्ति-प्रयोग के सारे तरीकों का बहिष्कार करें तथा उन्हें ईश्वरीय प्रेम एवं सेवा के द्वारा जीतें। अहिंसा सचमुच में शक्ति को समाप्त करने का अस्त्र है। विचारशील लोगों का आधारभूत सिद्धांत अहिंसा ही है। हिंसा पशुओं में विराजती है। यदि हम सभी अपने को पशुओं से उन्नत समझते हैं, तो हिंसा से विचारों एवं कार्यों दोनों में ऊपर उठना होगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने उक्त अहिंसा को अपने देश के ऋषियों की वाणी से प्राप्त किया। हम लोग अपने ऋषियों में विश्वास करते हैं। वे सभी युग युग के त्रिकालज्ञ सन्त थे। उनकी वाणी सदा के लिए सत्य है। अहिंसा के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज शांति की स्थापना नहीं कर सकती।

मैं इस अवसर पर पूज्य मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज के प्रति विश्वधर्म-संगम के महान प्रयत्नों के लिए अपना व्यक्तिगत आभार-प्रदर्शन किये बिना नहीं रह सकता।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ और उसके अशीर्वाद से सम्मेलन का उद्घाटन करता हूँ।

● ● ●

सब धर्म एक हैं !

> कौन नहीं कहता कि हिंसा मत करो, किसीको दुःख न दो! झूठ पाप है। जीवन-व्रत के सिद्धांत और मानवीय मुक्ति का लक्ष्य सबका एक समान है। फिर केवल अलग-अलग रास्तों के कारण हम आपस में क्यों झगड़ें?
>
> —सुशील मुनि

हम सब एक हैं!

•

द्वितीय विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक

मुनिश्री सुशील कुमारजी का प्रारम्भिक भाषण : २ फरवरी १९६०

मैं विश्व के उन समस्त धार्मिक प्रतिनिधियों का आध्यात्मिक व हार्दिक अभिनन्दन करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ, जो विश्वधर्म-संगम द्वारा कलकत्ता में आयोजित द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन में मार्ग की लम्बाई, यातायात की कठिनाई और जलवायु एवं सरकारी कायदे-कानून की कठिनाइयाँ सहन करते हुए यहाँ पहुँचे हैं। हिन्दुस्तान के लिए यह कोई नयी बात नहीं है, क्योंकि भूतकाल में यहाँ से बहुत से धर्मदूत आज से बहुत ज्यादा मुसीबतें और तकलीफें झेल कर दूर-दूर के देशों में गये हैं।

मैं भारत के प्रतिनिधियों का भी, जो इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए आये हैं, प्रेमाभिनन्दन करता हूँ। जिस विषय पर विचार-विमर्श के लिए आप सभी यहाँ उपस्थित हुए हैं, वह विषय बहुत से लोगों को शुष्क, नीरस एवं फीका मालूम पड़ता है तथा कुछ को तो इस विषय पर बात-चीत करना भी निश्चित रूप से एक बुरा काम मालूम पड़ता है। क्या यह सही नहीं है कि वर्तमान काल के एक महान राजनीतिक-वेत्ता ने धर्म को जनता के लिए अफीम बताया है और एक राष्ट्र ने तो उसी महान पुरुष के चरणों पर चलते हुए धर्म एवं अफीम, दोनों को एक साथ ही तिलाजलि दे दी है? आज उसी तथाकथित अफीम या अमृत के बारे में बातचीत करने के लिए हम इकट्ठे हुए हैं। यह निश्चय ही एक खास बात है। असल बात तो यह है कि धर्म के सभी प्रवर्तक, बड़े से बड़े पैगम्बरों से लेकर साधारण फकीर भी, बड़े हिम्मतवर रहे हैं और उनकी हिम्मत के बारे में किसी को कभी सन्देह नहीं हुआ।

जैसे-जैसे समय गुजरता जाता है, वैसे-वैसे पुराने साहस की जगह हमें एक नये साहस की आवश्यकता पड़ती जा रही है—ऐसा साहस जो कड़ा से-कड़ा-मुकाबिला ले सके—सरकारों से, तथाकथित जनमत से, संशय करने वाले बुद्धिजीवियों से, पत्थरनुमा सख्त क्रान्तिकारियों से, शुष्क शोधक वैज्ञानिकों से एवं कोरे तार्किक इन्सानों से। आज सारे संसार में जनता के दिमाग पर रंग चढ़ाने का कारोबार चालू है और बहुत-सी जगह सरकारें गर्भगत बच्चे से लेकर बढ़ते हुए उमर तक जनता के दिमागों पर धर्म-विहीनता एवं भोगवाद का खाका बैठाने में लगी हुई हैं। ऐसे वातावरण में धर्म की बातें करना वास्तव में एक अद्भुत साहस का काम है। हमें उम्मीद है कि हममें वह साहस है। वह साहस ऐसा होना चाहिए, जो कि हवा के विरुद्ध जा सके एवं भयंकर प्रवाह के विरुद्ध तैर सके। बहुत से मुल्कों में धार्मिक लोगों को आज भी महान मुसीबतें उठानी पड़ रही हैं। धार्मिक लोगों को वहाँ आज भी कैदखाने की यंत्रणाएँ दी जाती हैं, उनका मजाक उड़ाया जाता है तथा अपने घरों, धंधों एवं

राष्ट्रों को छोड़ने के लिए बाध्य किया जाता है। उनके पीछे अनेक संहिताकार एवं विश्लेषणकर्ता पड़े हुए हैं, जो कि अर्थ का अनर्थ करते हैं ! जैसे-जैसे जमाना बढ़ेगा, वैसे-वैसे हालत भी अधिक-से-अधिक भयंकर बनेंगे।

आज धार्मिकों को प्रतिक्रियावादियों के नाम से पुकारा जाता है, और सम्भव है कि कुछ दिनों के बाद उन्हें अछूतों की नजर से देखा जाय। संसार में आज जो अपना रोब फैलाने के लिए लड़ रहे हैं और जो अपने अस्तित्व एवं रुपये पाने के निमित्त संघर्ष में एक-दूसरे को दबोच रहे हैं, वे इस बारे में एकमत हैं कि सारे संसार में उद्योग-धन्धों को फैला कर धर्म की भावना को हटा दिया जाय। फिर भी सही बात तो यह है कि उन्होंने रुपयों की जो मीनारें खड़ी कर दी हैं, उन्हीं मीनारों के कारण वे धर्म के प्रति कठोर हो गये हैं। ऐसी दशा में हमारा यह सम्मेलन क्या करता है और हम लोगों को इसे किस तरह आगे बढ़ाना है, इसीका विचार हमें आज यहाँ पर करना है।

सभ्यता पर धर्म का प्रभाव

●

आज जगत् के जन-मानस में धर्म के विरुद्ध जो तूफान एवं उपेक्षा दिखाई दे रही है, उसका कारण शिक्षा व सभ्यता का गलत प्रवाह है। धर्म का सम्बन्ध केवल हमारे आन्तरिक आनन्द की लालसा से ही जुड़ा हुआ नहीं है, अपितु धर्म के नैतिक नियम, उदात्त शिष्टाचार व उदारतापूर्ण दृष्टिकोण ही सभ्यता का निर्माण करते हैं। आज बहुत-से लोग इससे असहमत हो सकते हैं। अतः हमें सबसे पहले इस प्रश्न के बारे में पूर्ण रूप से सोचना एवं विश्लेषण करना है कि सभ्यताओं के प्रारम्भ एवं विकास में धर्म का क्या हिस्सा रहा है, सभ्यताओं का क्रम किस प्रकार से चला है, बड़े-बड़े पैगम्बरों एवं धर्म-दूतों का क्या प्रभाव रहा है, भौतिक विज्ञान के उदय एवं विकास में धार्मिक विचारों का क्या असर पड़ा है, नयी-नयी आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार बनती जा रही हैं, भौतिक उन्नति से क्या खतरा हो सकता है, इन सभी विषयों पर हमें विचार करना है, तभी हम इन सभी समस्याओं का इलाज ढूँढ़ने में एवं उस इलाज को क्रियान्वित करने में सफल हो सकेंगे।

सबसे पहले हमें इतिहास के मूल तत्त्व पर विचार करना है कि किस तरह सभ्यताएँ उतार-चढ़ाव पार करती हुई विकसित हुई हैं। प्रायः कहा जाता है कि मनुष्य दूसरे जानवरों की औलाद है और धीरे-धीरे मनुष्य ने अपनी पशु-अवस्था से अपना ज्ञान बढ़ाया है। इस कथन के अनुसार एक ऐसा विश्वास जम रहा है कि मनुष्य धीरे-धीरे मूर्ख से अक्लमंद बना है तथा हर पीढ़ी अपनी पीछे की पीढ़ी से ज्यादा अक्लमंद होती जा रही है। आम तौर से यह विश्वास भी जमता जा रहा है कि मनुष्य की सभ्यता का इतिहास सिर्फ ५ से १० हजार वर्ष पुराना है और इसके पहले मनुष्य एक जंगली जानवर था तथा इस जंगलीपन में ही अनेक फिर्के इतिहास में मौजूद थे एवं किसी तरह की कोई सभ्यता या धर्म, जिसकी हम कीमत आँक सकें, संसार में मौजूद नहीं था। इस आश्चर्यजनक सिद्धांत के पीछे पुराने स्मारक, लिखावटें आदि प्रमाण के रूप में उपस्थित किये जाते हैं। इतिहास के बारे में जानने का यह तरीका भी अधिक से अधिक २०० वर्ष पुराना है। उसके अनुसार २०० वर्ष पहले मनुष्य की सभ्यता इससे भी ज्यादा खराब थी। इस सिद्धान्त को अगर हम मान लेते हैं, तो धर्म के सिद्धांतों की जड़ ही खोखली हो जाती है, धर्म के जो ऊँचे सिद्धात हैं वे, खाली जंगली जातियों की उपज दिखाई पड़ते हैं और बड़े बड़े पैगम्बर कल्पित तस्वीरें-सी दीखती हैं !

वास्तविकता

●

इतिहास के ये महान वेत्ता एक साधारण-सी बात भूल जाते हैं कि ये स्मारक जो उनके आधार-स्तम्भ हैं, उनका जीवन-काल बहुत थोड़ा ही होता है। बहुत पुराने स्तम्भ कुदरत के द्वारा कभी खत्म कर दिये जाते हैं ! रासायनिक तरीकों से हर चीज की आयु बंधी हुई होती है। जहाँ तक स्मारकों का सवाल है, कुछ हजार वर्षों से ज्यादा वे अपने असली हालत में हमें देखने को नहीं मिल सकते। इन स्मारकों पर भी कुदरत उसी तरह का काम करती है, जैसे कि वह संसार की अन्य चीजों पर करती है। इस बात से कोई वस्तु या किसी का शरीर अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता, हम यह साबित नहीं कर सकते कि वे कभी इस संसार में थे ही नहीं। कोलम्बस ने कभी अमरीका का पता लगाया था लेकिन कोलम्बस के पता लगाने के बहुत पहले भी अमरीका का अस्तित्व खत्म नहीं हुआ था—चाहे योरोप की महान सभ्य जातियाँ यह मानती रही हों कि एटलांटिक के पश्चिम में केवल भूत-प्रेत ही बसते थे, फिर भी अमरीका मौजूद था। इसी तरह हमारी धरती के अलावा जो लोक हैं, उनमें यदि जिन्दगी है भी तो भी हमें मालूम नहीं है। हमें बहुत-सी चीजों का पता नहीं है, पर एक बहुत बड़ी सम्भावना है कि धरती पर रहने वाले मनुष्यों की सभ्यता अन्य लोगों की सभ्यता से करीब-करीब मिलती हो। जिस तरह अमरीका का पता लगाने के समय स्पेनिस डाकुओ की सभ्यता के बारे में मालूम नहीं था। यह हमें मानना पड़ेगा कि अलग-अलग जमानों के अन्दर सभ्यताएँ बार-बार उठी और फिर गिरी है। बहुत-सी सभ्यताओं के बाद इन्सान में बार बार जंगलीपन छाया है और जंगलीपन के बाद, पुनः सभ्यता का उदय हुआ है। 'मनुष्य की अक्ल हर युग में बढ़ती ही जा रही है, यह एक ऐसा बवन्डर है, जिससे हमको बचना चाहिए तथा सुअवसर पा करके हमें अपनी बुद्धि को विकसित करना चाहिये।

आधुनिक शिक्षण एवं धर्मोपदेश में सबसे बड़ा अंतर यही है कि धर्म मनुष्य को देवत्व से ही विकसित करता है और देवत्व में ही विलय कर देता है, किन्तु डर है कि पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार मनुष्य पहले तो पशु था ही किन्तु अब आग उगलता हुआ राक्षस न बन जाय।

समूचे जगत् के इतिहास का मंथन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि मनुष्य ने अन्तरात्मा के प्रति दृष्टिकोण बनाने में और सामाजिक संतुलन को स्थापित करने में धर्म का द्विविध प्रयोग किया। मनुष्य का अन्तर-दर्शन-ही उसे नैतिक नियमों के प्रति आस्थावान बनाने में सहायक होता है और नैतिकता की धारणा ही सामाजिक सन्तुलन की सबसे पहली सीढी है। अतः जहाँ तक सभ्यताओं के नैतिक पहलू का प्रश्न है, वह धर्म से अवश्य प्रभावित है, क्योंकि धर्म समाज की सार्वभौम एकता, समस्त प्राणिवर्ग की तादात्म्यता, अखिल ब्रह्मांड की अखंडता, पारिवारिक व्यवस्था एवं राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समानता का एकमात्र माध्यम है। धर्म ही एक ऐसा धागा है, जो समूचे विश्व के मानस में आत्मौपम्य-वृत्ति की रागात्मकता का आलाप लगाते हुए एक सूत्र मे आबद्ध कर सकता है। पर अधर्म से ऐसे काम होते हैं, जिनसे समाज का संतुलन नष्ट होता है। कोई भी जाति पूर्ण रूप में अधर्म एवं अराजकता में बढ़ सके, यह असम्भव है। हर जाति में एक सामाजिक संतुलन को बनाने में धर्म का खास हाथ है। जैसे-जैसे इस सामाजिक संतुलन को धक्का लगना शुरू हुआ और इसका रूप बिगड़ने लगा, वैसे-वैसे नये तरीके को काम में लाया जाने लगा। हालाँकि अलग-अलग धर्मों ने इस मूल्य को अलग-अलग तरीकों से व्यक्त किया है। फिर भी इसके बारे में उनका मत था कि सामाजिक संतुलन को धक्का न लगे तथा समाज के अन्दर शांति और व्यवस्था बनी रहे। कभी-कभी कुछ

मतान्धों ने अपनी बेहोशी के समय में इस आधारभूत उद्देश्य को धक्का लगाया और उन्होंने दमादमी की बात करनी शुरू की। यह एक चालू हालत रही है और आज इस बीसवीं शताब्दी में भी इसी प्रकार से अनेक सम्प्रदाय पैदा हो रहे हैं, चाहे ये सम्प्रदाय धर्म को न मानें या धर्म के नाम पर गाली ही क्यों न दें !

नया संप्रदायवाद ?

●

अगर यह सही नहीं है तो फिर हम समाजवाद और साम्यवाद के रूपों में नये धर्मों का उदय किस तरह समझ सकते हैं ? इस समाजवाद और साम्यवाद के रूप में भी सामाजिक संतुलन बनाने का नया तरीका ढूंढ़ा जा रहा है और इस तरीके को हावी करने के लिए इस पंथ के अनुयायी महान साहस का परिचय दे रहे हैं। उन्होंने इसके लिए काफी तकलीफें स्वीकार की हैं। इस नये फिर्के में भी रद्दो-बदल बराबर जारी है। साथ ही साथ उसके मूल रूप में भी परिवर्तन होना शुरू हो गया है। अगर ऐसा नहीं होता तो वे ही कम्युनिस्ट, जो आज से १० वर्ष पहले विश्व-क्रांति की बातें कर रहे थे, आज विश्व-निःशस्त्रीकरण की बातें नहीं करते तथा जिस वर्ग में युद्ध की बातें रोज होती थीं वहाँ सह-अस्तित्व की बातें नहीं चलतीं। यह सही है कि सामाजिक संतुलन का आदर्श हमेशा जाति के लिए आवश्यक रहा है। जाति के रिवाज बदले है, रूप बदले हैं, आभास बदले हैं, लेकिन मूल रूप में परिवर्तन नहीं हुआ है। इस मूल आदर्श (धर्म) को अफीम कह कर हम उससे पिंड नहीं छुड़ा सकते।

धर्म हमेशा चोरी, शोषण, हत्या आदि के विरुद्ध रहा है। धर्म का मूल आदर्श सहयोग रहा है। अतः एक बड़े धर्माचार्य ने उद्घोषणा की थी कि ऊँट के लिए सुई की नोक से निकलना सम्भव है, लेकिन एक अमीर आदमी के लिए स्वर्ग के फाटक से निकलना सम्भव नहीं है। इसी तरह से और सारे पैगम्बर भी गरीब व अमीर में भेद-भाव को मिटाते रहे हैं। वे जनता के बीच ही घूमते रहे और जनजीवन में शांति व प्रेम का सन्तुलन स्थापित करते रहे हैं।

पिछली दो शताब्दियों में जो उन्नति हुई है, उससे धर्म के सन्देश और भी जरूरी हो गये हैं। लेकिन इन सन्देशों को एक नया लिबास पहनाना है। यांत्रिक उन्नति से समाज में बहुत ही हेरफेर हुए हैं तथा आदमी के काम करने की शक्ति और भी ऊँचे स्तर पर चली गयी है। जब दिमाग में शक्ति की भावना पैदा होती है, तो एक नया हथियार हाथ में आता है, जिसका उपयोग भलाई एवं बुराई दोनों ही कामों में हो सकता है। ऐसी हालत में अगर दिमाग को ठीक तरह से सन्तुलित नहीं बनाया गया तो शक्ति के दुरुपयोग की बहुत बड़ी सम्भावना रहती है, जिससे बहुत नुकसान हो सकता है। अणु-विज्ञान एवं राकेट-विज्ञान में जो नयी प्रगति हुई है, उससे मनुष्य जाति के पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने का खाका नये रूप में सामने आ गया है। ऐसे समय में अगर संतुलन खराब हुआ, तो इस दो पैर वाले मनुष्य का इस पृथ्वी से नामोनिशान ही मिट जायगा ! यदि दिमाग का संतुलन खराब हो गया और मानवता दब गयी तो कोई भी कौम जंग का स्वाद लेने का फैसला कर सकती है और इसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर इन्सान का दिखाई पड़ना ही बन्द हो जायगा तथा केवल अन्धेरी रात ही बाकी बच जायगी ! वह एक ऐसी रात होगी, जिसे प्रलय की रात कही जा सकेगी, जिसका पुराणों में बहुत बार जिक्र किया गया है। इससे एक सबक लेना है और वह यह कि जैसे-जैसे यांत्रिक उन्नति

होती है वैसे-वैसे नैतिक उन्नति भी साथ ही साथ होनी आवश्यक है। समाज का संतुलन बना रहना चाहिए अन्यथा खुद का बना रहना भी मुश्किल है। प्रश्न यह है कि यह संतुलन और नैतिक उन्नति कहाँ से आयेगी? ऐसा खयाल करना मात्र अज्ञानता का द्योतक है कि औद्योगिक उन्नति से ही नैतिक उन्नति हो जायगी। अभी तक तो औद्योगिक उन्नति के साथ नैतिक उन्नति नहीं हो पायी है। यदि ऐसा होता तो विश्व युद्ध नहीं होते और न कोई हिटलर ही सारे संसार को चुनौती दे सकता!

जिन लोगों ने लड़ाइयों को जन्म दिया है, साम्राज्य फतह किया है, वे सभी शिक्षित कहे जाते रहे हैं। उनमें नैतिक एवं धर्म की शिक्षा का अभाव रहा है। सामाजिक संतुलन को कायम रखने के लिए अगर कोई शक्ति है तो वह धर्म ही है जो यह सिखाता है, कि सहयोग ही उत्तम है और अधिक महत्त्वाकांक्षापूर्ण जीवन समाज को बरबाद करता है। आज हमें शिक्षा के साथ पैदा होने वाली महत्त्वाकांक्षाओं एवं वासनाओं को व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह के रूपों में संयमित करने की आवश्यकता है। अगर किसी महत्त्वाकांक्षा को छूट देनी ही है, तो वह सर्वोदय की महत्त्वाकांक्षा को देनी चाहिए जिससे सर्वोदय, सर्वशांति एवं विश्व समाज के निर्माण में सहायता मिले। एक ऐसा विश्व-समाज, जिसके अन्दर सभी बिना भय एवं संघर्ष के शांतिपूर्ण जीवन बिता सके तथा जिसमें मानव ही नहीं, सभी प्रकार के जीव-जन्तु बिना भय के अपनी जीवन यात्रा कर सकें। हम इस चीज को भूल जाते हैं कि मनुष्य के अलावा यदि हर प्राणी उसकी हत्या एवं शोषण करना अपना हक मान ले तो मनुष्य-समाज में भी खूँखारपना पैदा होगा, जिससे समाज का सारा संतुलन डगमगा जायगा और अन्त में मनुष्य ही नष्ट हो जायगा। आप मुझे जैन-मुनि होने के नाते उपेक्षित न कर दें यदि मैं कहता हूँ कि समाजवाद अन्ततोगत्वा शाकाहार की नींव पर ही खड़ा हो सकता है, क्योंकि इस तथ्य का कोई निस्तार नहीं है। हमारी धरती पर आत्मा अनेक आकारों एवं प्रकारों में उछलती और मचलती है। ये सभी प्राणी एक ही सूरज के नीचे साँस लेते हैं और एक जैसी ही समस्याओं एवं ध्वनियों में जिन्दगी बिताते हैं। हमें इस बात की खुशी होनी चाहिए कि जीवन के इतने अनन्त रूप उपलब्ध हैं और कुदरत उन सभी का किसी-न-किसी तरह से इन्तजाम करती है। यह बात जरूर है कि मनुष्य सभी प्राणियों से ज्यादा ताकतवर है, लेकिन यह कोई वजह नहीं है कि मनुष्य उसका दुरुपयोग दूसरे प्राणियों को हड़पने और उनके भक्षण करने की चेष्टा में करे। अगर मनुष्य से भी अधिक ताकतवर जानवर मनुष्यों का उन्हें भक्षण करे, तो कैसा लगेगा? हम इस बात को पसन्द करें, या न करें पर जब तक कत्ल चालू है, लड़ाई चालू ही रहेगी। विश्व के महान राष्ट्रों द्वारा प्रस्तुत विश्व-निःशस्त्रीकरण का कार्यक्रम बहुत प्रेरणादायक है। लेकिन मुझे भय है कि अगर साथ ही साथ विश्व सहकारिता एवं शाकाहार का कार्यक्रम लागू नहीं किया गया तो सारा प्रोग्राम ही नष्ट हो जायगा क्योंकि तामसिक भोजन एवं मांसाहार से मनुष्य में पशुता पैदा होती है। उससे सत्तालिप्सा व साम्राज्यवाद पैदा होता है और साम्राज्यवाद से लड़ाई लड़ने की भावना पैदा होती है।

हम क्या करें?

●

ऐसी हालत में हम सभी को, जो धार्मिक आदमी कहे जाते हैं, सोचना है कि हमारा क्या कर्तव्य है, जब सारे संसार में विनाश का चक्र घूम रहा है? क्या हम मगन-मस्त पड़े रहें और सामने

जो खतरा मचा हुआ है उसके बोझे से दब जाना मंजूर करें ? नहीं, हमें समस्या का डटकर मुकाबला करना है और हमें ध्यान में रखना है कि आज उसका रूप जैसा विनाशकारी है, वैसा इतिहास में कभी नहीं था। मनुष्य ने आज यांत्रिक उन्नति की है और उससे मनुष्य में विध्वंस की शक्ति बढ़ी है जिसके फलस्वरूप समस्या की भयंकरता और भी बढ़ गयी है। समस्या का रूप नया है और इसलिए उसके मुकाबला करने का तरीका भी नया ही होना चाहिए। हममें विश्लेषण करने की ताकत पैदा होनी चाहिए और ऐसा करने के लिए जिन नये तौर-तरीकों को अमल में लाना है, उनको सीखने की कोशिश करनी चाहिए। अगर हम रोग का निदान ठीक करते हैं तो हम उसकी दवा करने में भी सफल हो सकेंगे। मुश्किल यह है कि बिना सहयोग, मित्रता एवं सहकारिता के इसकी दवा नहीं हो सकती। अगर ऐसा होता तो अब तक इस रोग की दवा कभी हो चुकी होती! हमारे सामने जो काम है वह यह है, कि समस्या को हम सही रूप से समझें और उसके बाद में उसका इलाज सोचें। हमें खाली इसी पर विश्वास नहीं करना है कि धर्म ने हमें यह बताया कि 'अच्छे का फल अच्छा और बुरे का फल बुरा' होता है। हमें इससे और आगे बढ़ना है। हमें वैज्ञानिक तरीकों से सिद्ध करना पड़ेगा कि 'अच्छे का अच्छा और बुरे का बुरा फल होता है।' मनुष्य के सात्विक भाव को हमें जगाना पड़ेगा और उसके लिए हमें बहुत-सी प्रयोगशालाएँ खोलनी पड़ेंगी तथा हमें इन प्रयोगशालाओं को एक सूत्र में पिरोना होगा। यह काफी कठिन काम है, लेकिन हमें यह भी याद रखना है कि दूसरे लोगों ने भी बहुत कुछ कठिन काम किए हैं। इस कठिन काम को पूरा करने में अगर हम असफल रहे और मानवता के सामने हम अच्छे कार्यों के व्यावहारिक मूल्यों को साबित करने में असफल रहे, तो सारी मानव जाति का भविष्य अन्धकारमय हो जायगा। हमें चाहिए कि हम सभी सत्व-गुण के वैज्ञानिकों की तरह हिमायती धार्मिक लोग एकत्रित हों और इस बात की प्रतिज्ञा करें कि मानव-धर्म की प्रयोगशाला में हम यह साबित करके दिखा देंगे कि सात्विक भाव ही विकास का एकमात्र मार्ग है और इसीसे जीवन पनप सकता है, निस्तार पा सकता है।

कभी-कभी हम इस बात को भूल गये मालूम पड़ते हैं कि सभी धर्मों के मूल आधार सत्व-गुण के सन्देश रहे हैं। इस्लाम ने मदिरा से बचने व विश्वबन्धुत्व का संदेश दिया है। हिन्दू धर्म ने अंड और ब्रह्मांड की एकरूपता हमें दिखाई है। जैन धर्म ने परम पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाया है। इसी तरह से बुद्ध धर्म, ईसाइयत, यहूदी धर्म, जरथुस्त धर्म ने हमें यह बताया है कि पुण्य और पाप के संघर्ष में हर आदमी को अपना सहयोग पुण्य के पीछे देना चाहिए। इसी तरह से ताओ धर्म ने भी हमें यह बताया है कि मनुष्य को इतना निर्विकार होना चाहिए कि वह पुण्य और पाप, दोनों से ऊँचा उठ सके। कन्फ्युशियस धर्म तो सामाजिक संतुलन का ही दूसरा रूप है। इसी तरह से धर्म के अन्य रूप भी अन्य देशों में रहे हैं। ग्रीस, मिश्र, मेक्सिको और पेरू में अभी भी यह रूप इतना दिखाई पड़ता है कि उसको देखते-देखते हमें आश्चर्य लगता है। जहाँ तक मेरा विश्वास है, मैं किसी एक धर्म से घृणा करना पसन्द नहीं करता और न किसी एक धर्म के सौन्दर्य से मुग्ध होकर किसीको धर्म-परिवर्तन करने के लिए प्रलोभन देना ही उचित समझता हूँ, क्योंकि वह भी तो साम्राज्यवाद का ही एक रूप है। अगर हमें धर्मों का सही सन्देश फैलाना है तो हमें सभी धर्मों के बीच एक स्थायी शान्ति पैदा करनी पड़ेगी। एक ऐसी शान्ति, जिसमें एक धर्म दूसरे धर्म के मामलों में दखलन्दाजी न करे और तभी हम विश्वधर्म-संगम की सही नींव डालने एवं विध्वंसकारी शक्तियों का संगठित रूप से मुकाबिला करने में सफल होंगे। जिन राज्यों को दूसरे राज्यों से हमेशा हमले का भय रहता है, उन्हें हमेशा लड़ाई के

लिए तैयारी भी चालू रखनी पड़ती है तथा उस पर धन भी बहुत खर्च करना पड़ता है। इसी तरह जिन धर्मों को दूसरे धर्मों से डर बना रहता है उन्हें हमेशा ही सजग रहना पड़ता है। अतः हम आपस में एक-दूसरे से न गुर्रायें। हमारे अन्दर आपस में माधुर्य एवं एक कोमल हास्य कायम रहे। ऐसा स्मित हास्य जो जैन, ताओ या पारसी आदि धर्मों का हास्य भी है। हम ऐसा तभी कर सकते हैं, जब कि इन्सानियत के चेहरे पर भी सात्विक मुस्कराहट आये। इसलिए केवल नैतिक उसूलों की दुहाई देने से काम नहीं चलेगा। हमें आपस में साथ-साथ बैठ कर यह समझना होगा कि एक धर्म दूसरे धर्म से क्यों लड़ता है? उनके झगड़ों का कारण क्या है और उनको कैसे मिटाया जा सकता है? तभी एक धर्म की दूसरे धर्मों से सही मित्रता पैदा होगी। इसके लिए यदि धार्मिकों को, उदाहरणार्थ यदि सिक्खों की भावना का सम्मान करने के लिए धूम्रपान और मुसलमानों की भावना का सम्मान करने के लिए मदिरा और जैनों की भावना का सम्मान करने के लिए कत्ल को बन्द कर देना पड़े तो तैयार रहना चाहिए। हमें यह भी याद रखना है कि जो लोग हमसे नफरत करते हैं, उनमें भी अपने आदर्श के पीछे बड़ी जिद एवं लगन है और उनके आदर्श भी धर्म के आदर्श से मेल खा सकते हैं। हम तभी सत्व भाव को सारे संसार में फैलाने में सफल हो सकते हैं, धर्म की विजय तभी हो सकती है, और धर्म जिन्दा तभी रह सकता है, जब हम आचरण में धर्म की भावना को लाकर उसे सर्वत्र पाने की चेष्टा करेंगे।

अन्त में टाल्स्टाय की भाषा में 'हम क्या करें' के प्रश्न पर विचार करना है। हमारे सम्मेलन को सभी समस्याओं का मुकाबला साहस से करना चाहिए। अलग-अलग धर्मों के अन्दर जो मतभेद पैदा हो गये हैं, उनके बारे में विचार करना चाहिए, भिन्न-भिन्न धर्मों के अन्दर सह-अस्तित्व की भावना पैदा करनी चाहिए तथा आपस में किसी वहम, को स्थान नहीं देना चाहिए। साथ ही हमें यह फैसला करना है कि किस तरह हम धर्म की प्रयोगशालाएँ खड़ी करें, किस तरह उसका संतुलन मजबूत करें और किस तरह प्रयोगशालाओं के नतीजों को जनता तक पहुँचायें। अंत में हमे यह भी देखना है कि सतोगुण के सन्देश को सभी राज्य आदर्श रूप से स्वीकार करें, क्योंकि राज्य भी काम का एक महत्त्वपूर्ण साधन होता है। इस सम्बन्ध में हमें उन अच्छे धर्मानुयायियों से सम्पर्क पैदा करना है, जो हमारे सन्देशों को अलग-अलग राज्यों में फैला सके। यह समस्या आज मानवता के सामने है और हमारे सामने है। अगर हम विजयी होते हैं, तो इतिहास विजयी होता है और अगर हम गिर जाते हैं तो प्रलय की लम्बी काली रात हमारे सामने है जिसके लिए हम सभी जिम्मेवार होंगे और हमारे ऊपर निर्णय देने वाले भी कोई बचे नहीं रह सकेंगे।

बन्धुगण, एक बार मैं फिर आप सभी के लिए अपनी आनन्दाभिव्यक्ति प्रगट करता हूँ आपसे अपेक्षा करता हूँ कि इस धर्म-सम्मेलन का सन्देश आप दूर-दूर के शहरों एवं जातियों में ले जायँ, जिनसे आपका सम्पर्क है, एवं इस बात के लिए दृढ़-चित्त, दृढ़-प्रतिज्ञ हो जायँ कि मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणियों के भी आनन्द को बढ़ाने के लिए जितना कुछ हमसे सम्भव है, उतना हम अवश्य करेंगे।

● ● ●

मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज

यद्यपि विश्वधर्म-सम्मेलन की योजना को इस देश में चलते हजारों वर्ष हो गये पर अभी २०० वर्षों से जो रूप जगत् में प्रचलित है, वह कई प्रकार से हमारे सामने आया। पश्चिमी देशों में जो इसके प्रयास हुए, सम्भव है कि उनका उद्देश्य एक का समर्थन और दूसरे का खण्डन रहा हो और दूसरी योजना इस प्रकार की शक्तियों के संचय की हो। नफरत तथा शांति के प्रश्न में संघर्ष की जड़ें जमने लगीं, जिसका कारण यह रहा कि दूसरों का विरोध नहीं किया जाय; परन्तु केवल अपना समर्थन किया जाय। पर आज जमाना इन दोनों विचारों एवं योजनाओं से भिन्न एवं ऊपर है। उनसे न कुछ लाभ है और न नुकसान है। धर्म शाश्वत तत्त्व है। जब तक जगत् और आत्मा का अस्तित्व है, धर्म स्थायी रहेगा और उसे दुनिया की कोई ताकत नहीं मिटा सकती।

यह सम्मेलन न किसी धर्मविशेष के विरोध में है और न किसी के समर्थन में है, बल्कि इस चीज की खोज में है कि किन सिद्धांतों से दुनिया की भलाई हो सकती है। गहराई में उतरने पर यह पता चलता है कि कोई भी धर्म घृणा नहीं सिखाता, फिर भी इनके नाम पर घृणा का प्रसार हुआ; क्योंकि धर्म के आचार्यों ने धर्म को लोगों के मन में नहीं बैठाया। यह भूल हम धर्मवालों की है। इसका हमें प्रायश्चित्त करना है। नये युग में नयी शोध की आवश्यकता है। अतः हमें यह विचार करना है कि धर्म एक-दूसरे को मिलाने का सूत्र बने, नफरत करने और लड़ाने का सूत्र नहीं बने तथा समस्त जीवों में समानता और सेवा का पाठ सिखा सके। आज जगत् में दोनों विचार-धाराएँ काम कर रही हैं। एक उसे अफीम बतलाते हुए कहते हैं कि कुछ लोगों के फायदे के लिए धर्म एक व्यापार है। इसी शताब्दी के एक राजनीतिक नेता ने उसे अफीम की संज्ञा दी। इसी आदेश में आज एक देश ने धर्म और अफीम, दोनों को ही अपने देश से निकाल बाहर किया है।

धर्म को दो तरह से माना गया है: (१) अन्तर-शोध की कला, जिसके द्वारा हम अन्तर की शक्ति को जाग्रत करते हुए बाहर से अन्दर की ओर जाते हैं और (२) मनुष्य-मनुष्य के बीच तथा संसार के आपस मे एक-दूसरे से जुड़ने का सूत्र। धर्म इन दोनों बातों को पूरा करता रहा है। परन्तु आज दोनों की जड़ें हिल रही हैं। एक को क्रियाकांड, रूढ़िवादिता और दूसरे को अज्ञानता से खतम कर दिया गया है। इसीसे आज परिवार और समाज भी टूटता जा रहा है।

प्रश्न यह है कि धर्म की क्या उपयोगिता है? आप सोचें कि घर में बहन और पत्नि के अन्तर को किसने कायम किया? भाई-बहन की पवित्रता और पति-पत्नि की मर्यादाओं को धर्म ने कायम किया है। धर्म के संतुलन के बिना जीना मुश्किल है। धर्म अन्तर की पुकार है, बाहर का कर्तव्य, जो अन्तरात्मा से समर्थित है, वही धर्म है। वह आत्मा का संगीत है, अन्तर की आवाज है और वह कभी मिटने वाली नहीं है। सत्य बोलने से, अन्तर से आश्वासन, आह्लाद और शान्ति मिलती है, पर झूठ आदि से क्षोभ होता है। धर्म पढ़ने से नहीं आता, बल्कि वह तो आत्मा के अन्दर से आता है। कभी बुराइयाँ अन्तरआत्मा को दबा देती हैं तो वह आवाज सुनाई नहीं पड़ती।

धर्म की गहराइयाँ

●

मैं विज्ञान का विरोध नहीं करता, परन्तु विवेक के नियन्त्रण के बिना भौतिक शक्तियाँ यदि प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं, तो यह भी सम्भव है और भय है कि संसार में सभी पर शासन करने की ख्वाहिश रखने वाला यह प्राणी—मनुष्य, शायद संसार में कहीं दिखाई ही न दे ! आप यदि संसार में स्वयं जीना चाहते हैं, तो दूसरों को जिंदा रख कर ही वह सम्भव है। अब वह जमाना नहीं कि दूसरों के ऊपर जी सकें। अब हिंसा, प्रतिस्पर्धा, घृणा आदि के रास्ते को छोड़कर प्रेम का रास्ता अपनाना ही एक मार्ग है। बुराइयाँ तो विज्ञान से भी सम्भव हैं और धर्म से भी। पर वे तत्त्व में नहीं, बल्कि मनुष्य के विचारों में आती हैं। जगत् के तमाम जीवों में एकसूत्रता का मार्ग प्रेम है, चाहे उसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य या किसी नाम या धर्म की किसी गाथा से सिद्ध करें। इस सम्मेलन में दुनिया के विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि लम्बी यात्रा, कठिनाइयों आदि को भी झेलकर यहाँ पहुँचे हैं, वे सोचें। क्या वे बतला सकते हैं कि किसी धर्म-प्रवर्त्तक ने अपने धर्म का कोई नाम बताया ? अतः इसी नाम-रूप के बन्धन से हमें पार होना है। स्वार्थ के आने से वह भी स्वार्थमय बन जाता है। अतः तमाम प्राणीमात्र में समानता स्थापित करना ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म के ऊँचे सिद्धांत यदि व्यवहार में नहीं आते और यदि धर्म के बड़प्पन से अपने में महानता नहीं आती, तो उससे क्या लाभ ? हमें तो उससे यह लाभ उठाना है कि हमारी क्षुद्रता मिट जाय और हममें महानता आये। प्रकाश के द्वारा हम अपना और जगत् का अंधकार मिटायें। जगत् के अंधकार को एक प्रकाश से नहीं, बल्कि सभी प्रकाशो के सम्मिलित प्रकाशपुंज से, जो एक ही सागर से निकले हैं, दूर करना है। हजारों वर्ष से चलने वाली धर्म-धाराओं में विकृति आयी हो, तो हम सभी मिल कर उसे दूर करें और यह दिखा दें कि धर्म के मानने वाले मिल सकते हैं। राजनीतिवालों ने धर्मवालों को इतना सताया है कि अन्दाज नहीं ! परन्तु धर्म-परिवर्तन की चीज नहीं, चाहे उसे कितना भी जिलाया हो पर धर्म के लिए राज्य की जरूरत नहीं। वह तो आत्मा की चीज है। हम सभी एक होकर विचार करें और उसे जगत् में स्थापित करने का प्रयास करें। यह अजीब बात है कि सारे जगत् के पशु एवं अन्य प्राणियों को एकत्र करने वाले स्वयं एक स्थान में एकत्र न हों, इसीसे यह सम्मेलन धर्म-भेद या टकराने का पथ नहीं, बल्कि प्रेम की गंगा है, जिसमें सभी धर्म या भाषा के लोग स्नान कर आनन्द पा सकते हैं। सभी धर्म सत्य हैं, यदि उससे आत्मा की शुद्धि होती है। सभी धर्म सच्चे हैं, यदि उससे व्यवहार में मानवता की सीख मिलती है। वे धाराएँ हैं, पर उन्हें समुद्र मान लेने से परिणाम बिगड़ जायगा। उससे समुद्र तक पहुँच सकते हैं। ●

●

सन्त कृपाल सिंहजी महाराज

मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज की प्रेरणा से प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में हुआ था, जिसमें संसार के विभिन्न भागों के २०० से भी अधिक प्रतिनिधिगण एवं करीब

दो लाख लोगों ने भाग लिया। सचमुच यह आनन्द का विषय है कि हम लोग पुनः एकत्रित हुए हैं और इतने धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रतिनिधि एवं नेता मानवीय आत्मा के उत्थान के एक ऐसे महान कार्य के लिए जुटे हैं, जो भारत में इस प्रकार से अनेक वर्षों के बाद आयोजित हुआ है।

आप यदि भारत के अतीत पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि इस प्रकार का कार्य इस भूमि के लिए कोई नवीनता नहीं रखता। उन दिनों में भी जब यातायात के साधन नहीं थे, लोगों को पैदल चलना पड़ता था और हर प्रकार की कल्पना की जाने वाली कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, भारत से धार्मिक नेतागण सत्य का प्रकाश लेकर दूसरे-दूसरे देशों में गये और पड़ोस के दूसरे देशों के लोग धर्म की इस क्रीड़ा-भूमि में उसके समृद्ध विचारों का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए आये।

परम्परा यह बताती है कि महाभारत के रचयिता एवं महाकवि महर्षि वेदव्यास फारस के जरथुस्त्र से मिलने गये थे और बाद के युग में गुरु नानक देव ने भी न केवल भारत के विभिन्न भागों की, बल्कि कई वर्ष की चार लम्बी यात्राएँ अरब, सीलोन, बर्मा और चीन देश में की। इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार के पारस्परिक आवागमन को खारवेल, अशोक, समुद्रगुप्त, हर्षवर्धन, अकबर आदि सम्राटों के द्वारा काफी प्रोत्साहन दिया गया, उन्होंने अपने-अपने समय में धार्मिक सम्मेलनों का भी आयोजन किया।

मानव-जीवन मे धर्म का सदा ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और हमारे आज के विचारक भी अन्ततोगत्वा इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। मनुष्य जैसा सोचता है और विश्वास करता है, उसी के अनुरूप वह स्वयं को और समाज को ढालने का प्रयत्न करता है तथा जीवन का अर्थ प्रस्तुत करता है। यदि उसके विचारों को छीन लिया जाय, तो उसका अस्तित्व कुछ नहीं रह जाता। वैज्ञानिकों का भी कहना है कि "आदिवासी लोगों में धर्म-भाव की समाप्ति ही श्वेत-सभ्यता में आने के पश्चात् उनके नाश का प्रमुख कारण रही।" (गौर्डेन चाल्ड-ह्वाट हैपन्ड इन हिस्ट्री)। जैसी कि कहावत प्रचलित है—दर्शन का अल्प ज्ञान मनुष्य को नास्तिकता की ओर उन्मुख करता है, परन्तु उसका सम्यक् ज्ञान उसे पुनः धर्म पर ला खड़ा करता है, क्योंकि शाश्वत धर्म मानव को एक ऐसा सद्ज्ञान प्रदान करता है, जो तर्क से परे है और जिस ज्ञान की प्राप्ति के लिए तार्किक एवं विद्वान होने के बदले बाल-सुलभ मस्तिष्क की आवश्यकता है। इसी ज्ञान की साधना में सन्तों ने अपने को लगाया और उसकी प्राप्ति के बाद दूसरे लोगों को उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिए उपदेश देने लगे। इस प्रकार मानव जीवन में धर्म-प्रवेश हुआ और वह एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बन गया।

परन्तु समय जहाँ एक ओर प्रगति लाता है, अधोगति भी ला सकता है। वर्षों बीत जाने पर मनुष्य अपने वास्तविक लक्ष्यों को भूल सकता है। यहाँ तक कि वह शरीर को ही जीवन मान ले सकता है और इस प्रकार धर्म का लोप हो सकता है। परन्तु युग-युग में भूले उद्देश्यों की पुनःप्रतिष्ठा तथा उचित मार्ग का ज्ञान देने के लिए महात्माओं का आविर्भाव होता है। मनुष्य सदा ही अपने शरीर से अवश्य ही कुछ विशिष्ट है। कुछ ही वर्षों में मनुष्य के वे तन्तु नहीं रह जाते, जो आरंभ में रहते हैं परन्तु इन असीम परिवर्तनों के बाद भी उसकी पहचान वही रह जाती है। कोई भी यह नहीं सोचता कि वह जो पहले था, अब नहीं है। इसीसे ऋषियों ने बताया है कि जीवन इस हाड़-माँस से परे है। अतः अमानवीय स्वप्न से उस मानव को जगाओ। यदि धर्म शब्द के मूल पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि इसका शब्दार्थ भी हमें आदि रूप में बांधने का एक तरीका प्रकट करता है।

जितना ही अधिक इसका विश्लेषण करेंगे, आप पायेंगे कि इसके दो पहलू हैं–आन्तरिक एवं व्यावहारिक। एक अन्तर से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है और दूसरा बाह्य एवं दार्शनिक पहलू है, जो संसार में मानव-जीवन को उसके लक्ष्य के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता है। यदि ध्यान से देखेंगे तो पहला पहलू सभी धर्मों में समान है, क्योंकि आन्तरिक तत्त्व सदा एक है। केवल दूसरा जो बाह्य रूप है, उसी में जीवन की बाह्य स्थितियों के अनुसार, विभिन्न देशों और समाजों के कारण भिन्नता होती है। आंतरिक पहलू ही बाह्य पहलू को निर्देशित करता है और जीवन की इसी एकता पर ऋषि-महर्षियों के उपदेश आधारित हैं।

दोष कहाँ है ?

●

जब मैं पश्चिम के देशों में गया तो लोग अक्सर मुझसे प्रश्न करते कि आणविक खतरे को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। मैं उत्तर देता कि आप अपने धर्म-शास्त्रों को पढ़ें, आपको इसका उत्तर वहाँ मिल जायगा, हृदय एवं मस्तिष्क की अपनी पूरी शक्ति से आत्मा एवं ईश्वर से प्रेम करो और चूँकि ईश्वर सभी के दिलों में प्रतिष्ठित है, अपने समान ही अपने पड़ोसियों से प्रेम करो; इस सत्य को हम भूल गये हैं। ईश्वर एवं मानवमात्र की एकात्मकता के सत्य को पुनः समझना है, मैंने देखा कि रोमन कैथोलिक स्कूलों के एक विवरण (रिपोर्ट) के पार्श्व (मार्जिन) में परूसिया के फेडरिक महान ने यह लिखा कि "धर्म केवल एक है, यद्यपि उसका अर्थ और उसकी व्याख्याएँ सैंकड़ों हैं।" पश्चिमी देशों के भ्रमण-काल में ही मुझे यह अनुभव हुआ कि दोष कहाँ है ? धर्म के अन्तर का अर्थ जानने के लिए मनुष्य जब अपने बाह्य व्यवहारों में पूर्ण रूप से उलझ जाता है, तब वह ऐसा समझने लग जाता है कि उसका विशिष्ट पंथ ही संसार में सर्वश्रेष्ठ है तथा दूसरे या तो निकृष्ट हैं या झूठे हैं। बहुतेरे पश्चिमी लोग यह जान कर बहुत आश्चर्यचकित थे कि एक गैर-क्रिश्चियन भी बाइबिल को महत्त्व दे सकता है, उसे जान सकता है और उसके सन्देशों का अर्थ बता सकता है। अमेरिका के लूईविल की एक घटना अभी भी मेरी स्मृति में ताजी है। वहाँ के विश्वविद्यालय के हाल में एक भाषण का कार्यक्रम था और वहाँ काफी श्रोता इकट्ठे थे। कुछ लोग बाहर भी बैठे थे। जब मेरा भाषण समाप्त हुआ तो वहाँ के अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध-विभाग के अध्यक्ष डा० ब्रडशो मुझसे यह कहते हुए मिले कि वह विश्वविद्यालय में इसी प्रकार के भाषणों को चाहते हैं और मुझे अपने विभाग में चलने को कहा। उनके साथ मैं उनके कमरे में गया, जहाँ विभिन्न देशों के कुछ विद्यार्थी मौजूद थे। उन्होंने कुछ प्रश्न पूछे–किस प्रकार अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में विभेद को दूर किया जा सकता है। उनको सन्तोषप्रद उत्तर दिया गया। जब उनसे पूछा गया कि उन्हें और कोई प्रश्न करना है क्या ? तो वे चुप थे। डा० ब्रडशो ने विनम्र शब्दों में कहा–"भगवान बुद्ध का पदार्पण हुआ है और सभी को मोक्ष प्राप्त हो गया है।" इसी प्रकार शिकागो में जब एक विशाल जनसमूह के समक्ष मेरा भाषण समाप्त हुआ तो आर्नल्ड बिशोप ने अपने स्थान से उठकर अपनी आँखों में आँसू के साथ कहा कि—"मैं गत ४० वर्षों से प्रेसबिटेरियन चर्च का इन्चार्ज हूँ, पर आज ही जीवन में प्रथम बार यह समझ पाया हूँ कि बाइबिल का उपदेश क्या है ?" वाशिंगटन में भी एक टेलीवीजन ब्राडकास्ट में कुछ धर्माचार्यों के द्वारा उठाये गये प्रश्नों का जब उन्हें संतोषपूर्ण उत्तर मिल गया तो उनके नेता

ने कहा कि—"अब और कोई प्रश्न करना नहीं रहा। आपका कहना सही है।" केवल यह दिखाने के लिए कि सत्य मात्र धर्मशास्त्रों के अध्ययन से ही नहीं, अपितु आत्मा की अन्तरानुभूति से प्राप्त होता है, जो सत्य की वास्तविक अनुभूति के बाद विभिन्न धर्मशास्त्रों की सही व्याख्या प्रस्तुत करने में सक्षम हो जाता है, चाहे उसकी आयु, भाषा या शब्द-विन्यास कुछ भी हो ये उदाहरण मैंने दिये हैं।

अन्धविश्वासों एवं विभेदों के मूल में सदा अज्ञानता रहती है। परन्तु महापुरुष उनके बन्धनों में कैद रहना कभी पसन्द नहीं करते। अतिवादी होने से भयभीत होना महान साहस का काम है और अद्भुत शक्तियों की सेवाओं के बारे में संतुष्ट रहना महत्त्वाकांक्षा है। सतत परिवर्तनशील जगत् तथा विभिन्न धर्मों के बदलते शीशों में से वह अपने अथक प्रयत्नों तथा अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उसी सत्य पर पहुँचता है, जिसे हमारे महान संरक्षक तथा भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने इतने अच्छे रूप में अमेरिका में अपने एक वक्तव्य के क्रम में प्रस्तुत किया कि "विभिन्न धर्म यद्यपि विभिन्न नींव पर विभिन्न वृक्षों की तरह अलग-अलग हैं, पर उनकी जड़ें अन्तर में एक-दूसरे से मिली हुई हैं और अपनी ऊँचाई पर वे पुनः एक-दूसरे से मिले-जुले हैं।"

जीवन की खोज

●

मैं स्वयं बचपन से ही धर्म का एक जिज्ञासु विद्यार्थी रहा हूँ। मैंने अपने सीधे सादे तरीके से इस आन्तरिक एवं चरम आत्मा को, जो सभी बाह्य रूपों में विभिन्नताओं के बाद भी समान है, जानने का प्रयास किया है। अनेक धर्म-ग्रन्थों को पढ़ा, धर्म की अनेक प्रणालियों का अध्ययन किया और उनके विभिन्न व्यावहारिक पहलुओं से गुजरा हूँ। पर जब अपने स्वामी पूज्य सावन सिंहजी महाराज से मिलने का सौभाग्य हुआ, तब मेरे जीवन की खोज पूरी हुई। वास्तव में वे ऐसे महात्मा थे, जिनमें ईश्वरीय प्रेम एवं ज्योति थी। वह पथ-भ्रष्ट मानवता को बचाना चाहते थे और सच्चे जिज्ञासु को सत्पथ पर लाते थे। उनको जानना स्वयं सत्य को जानने के समान था और उनका दर्शन स्वयं ईश्वरीय-ज्योति का दर्शन था। अन्त में उन्हीं के चरणों में मुझे शान्ति मिली और अन्तर-पथ के बारे में जो कुछ जानता हूँ, जान सका। उनमें सभी धर्मों के प्रति आदर और श्रद्धा थी और वे सभी के पवित्र ग्रन्थों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। वे स्वयं विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करते थे और सभी को उनकी आन्तरिक एकता की शिक्षा देते थे। स्थान-स्थान की स्थिति, भिन्नता के विभिन्न दर्शनों में एक-दूसरे से भिन्नता हो सकती है; पर उन सभी का आन्तरिक अर्थ एक है। यही आन्तरिक अर्थ एवं ऐक्य परमात्मा तक पहुँचने का व्यावहारिक उपाय है। यह आन्तरिक अर्थ अपरिवर्तनशील है और इसीलिए उनकी इच्छा थी कि इसका अध्ययन आत्मिक विज्ञान के रूप में किया जाय जो जाति, विचार आदि के बन्धनों एवं भेदों को लांघ जाता है। जब हम लोगों ने इस भौतिक आवरण को छोड़ दिया, तब उसके प्रसार का कार्य हम पर सौंपा गया, जिसे पूरा करने का हमने भरसक प्रयत्न किया है और उसके लिए अपनी शक्ति एवं अपने तेज का उपयोग किया है। मेरे स्वामी की एक इच्छा थी कि आज की रूढ़िवादिता एवं कट्टरता, जो एक धर्म को दूसरे से विभक्त किए हुए है, को सद्ज्ञान के प्रसार से दूर किया जाय। इसके लिए एक ऐसा मंच स्थापित हो, जहाँ सभी मिल सकें और बिना एक-दूसरे का परिवर्तन किये उस लक्ष्य की खोज करें, जो सभी धर्मों का सार है और इस प्रकार एक समान उद्देश्य की स्थापना हो।

इसी विचार से हमने विश्वधर्म-संगम का सहर्ष स्वागत किया, क्योंकि हम लोगों के सामने एक महान कार्य है। मनुष्य अपने सन्तों के महान उपदेशों की वास्तविकता को भूलता जा रहा है और अज्ञानता में बुद्धि-प्रदत्त कुछ विश्वासों, सभ्यताओं, तरीको और प्रणालियों को ही धर्म मानने लग गया है। इनके ही कारण रूढ़ियों, संकीर्णताओं आदि का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ और उसके परिणामस्वरूप धर्मान्धता, कट्टरता, घृणा, द्वेष, संघर्ष एवं रक्तपात का सूत्रपात हुआ। इससे धर्म के उद्देश्यों की पूर्ति के बदले उसे कलंकित करने में सहयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि मनुष्य इस अमानवीयताओं एवं नृशंसताओं से ऊब गया है और ऐसा सोचने लगा है कि अच्छा है, उसके कारणों से ही छुटकारा ले लिया जाय और वे धर्म को ही उसका कारण मान, धर्म-निरपेक्षता को स्वीकार करते हैं।

यदि वास्तव में ऐसा ही है तो यह स्थिति बहुत ही खतरनाक है। यदि शेर को कितने भी सदुद्देश्य से मुक्त किया जाय, पर वह तो पहले उस मुक्त करने वाले को ही समाप्त करेगा। अतः हम लोगों के सामने एक महान ललकार है। मुनिश्री सुशील कुमारजी ने सर्वप्रथम विश्व-धर्म संगम के विचारों का दर्शन किया, अपने विचारों को सही रूप प्रदान किया और उस ललकार को साहस के साथ स्वीकार किया है। धर्मान्धता का उत्तर देना भी कम धर्म नहीं है, बल्कि अधिक है। क्या अर्धशिक्षितों, अज्ञानियों या सुशिक्षितों के स्वविश्वासों की कट्टरता का कोई उत्तर है ? जितना ही मनुष्य धार्मिक विचारों के अन्तर में अधिक प्रवेश करता है, उतना ही वह उसे अधिक सार्वभौम प्रतीत होता है। सार रूप में धर्म मानव को मानव से अलग करने का साधन नहीं है, बल्कि अपने अर्थ के द्वारा ही अपने उस मूल रूप से बांधने का तरीका है, जो सभी का समान है और इस प्रकार वह समस्त मानव और प्राणिमात्र से एकत्व स्थापित करने का साधन है। धर्म का सिद्धान्त घृणा पर नहीं, बल्कि प्रेम, अहिंसा और दया पर आधारित है। वह मानव-मन्दिर में ईश्वर को प्राप्त करने का साधन है, जो सभी में विद्यमान है। लोगों को शिक्षित बनाने और लोगों के सर्वोत्तम सदुपयोग का वह एक साधन है तथा धर्म का त्याग प्रगति नहीं बल्कि अधोगति का कारण है।

धर्म के सही अर्थ को प्रतिष्ठित करना है, उसके आध्यात्मिक मूल्यों का पुनर्दर्शन करना है, जिसकी विस्मृति का भय कुछ लोगों के साथ बना है। इस सम्मेलन में हम लोग फिर से मिले हैं, जो कृत्रिम बन्धनों से परे है, आत्मा की पुनः प्रतिष्ठा के लिए मनुष्य की उत्कट इच्छाओं का द्योतक है। मैं आप लोगों का हृदय से इस समान उद्देश्य में स्वागत करता हूँ और सम्मेलन के उद्देश्यों के प्रति मैं आपके सहयोग के लिए, जिससे प्रेरित होकर आप सभी यहाँ आये हैं, हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

समस्त मानव जाति एक है, एक ही जैसे उत्पन्न होते हैं। समाज हम लोगों ने बनाये। हम सभी देहधारी हैं। आत्मोन्नति के लिए ही हम सभी इस संसार में दाखिल हुए हैं, इस गर्ज से कि हम अपने आप को जानें कि हम सभी चेतन स्वरूप हैं। सभी मनुष्यों की जाति एक ही है। बनावट में कोई पुरुष और कोई स्त्री, पर चैतन्य में कोई भेद नहीं। हम लोगों ने आत्मा को समझने के लिए समाज बनाये। महापुरुष जब भी आये तो यही सीख दे गये कि एक बाहरी शरीर है और एक अन्तर की आत्मा है। रस्म-रिवाजें अपरा विद्या है,जिसके गर्ज बहुत ही नेक हैं। पोथियों को पढ़ने की पहली गर्ज है, उनसे ज्ञान होता है और सही चिन्तन होता है। यह प्रारम्भिक अवस्था है आत्मा को जानने और पहचानने के लिए। इसके लिए जरूरी यह है कि हम जो एक-दूसरे को समझते नहीं और यही सबसे बड़ी गलती है, इसे पहचानें।

विश्वधर्म-संगम, पूर्वांचल विभाग, कलकत्ता
कार्यकारिणी समिति

प्रथम पक्ति (बैठे हुए बाएं से दाएं): (१) श्री जशवन्त सिह् लोढ़ा (प्रधान मन्त्री) (२) डा० हीरालाल चोपड़ा (मन्त्री) (३) श्री गिरधरलाल हंसराज कामाणी (उपाध्यक्ष) (४) दीनदुखी सन्त लालबाबा (चेयरमैन) (५) श्री कानजी पानाचन्द भिमाणी (उपाध्यक्ष) (६) श्री राजेन्द्र सिंह् सिंघी (सदस्य) (७) श्री त्रम्बक लाल दामाणी (अर्थ-मन्त्री)

दूसरी खड़ी पक्ति (बाएं से दाएं): (१) श्री भालचन्द्र शर्मा (प्रचार मन्त्री) (२) श्री मोतीलाल मालू (सदस्य) (३) मजीराम शर्मा (प्रचारक) (४) श्री ऋषीश्वर नारायण सिह् (कार्यालय एवं प्रचार-व्यवस्थापक) (५) सन्त लालबाबा के शिष्य (६) श्री जयसुखलाल प्रभुलाल शाह (सदस्य) (७) श्री केशवलाल हीराचन्द शाह् (सदस्य) (८) श्री कन्हैयालाल मालू (सदस्य)

विश्वधर्म-संगम महिला-सम्मेलन, कलकत्ता की प्रमुख कार्यकर्त्रियाँ

विश्वधर्म-संगम महिला-सम्मेलन की कार्यकर्त्रियाँ, मुनिश्री सुशील कुमारजी एवं मुनिश्री सौभाग्य चन्द्रजी के साथ

खड़ी पंक्ति (बाए से दाए) : (१) श्रीमती तारा देवी (२) श्रीमती जयाबहन (३) श्रीमती कुंथा जैन (४) महारानी बर्द्धवान (५) श्रीमती कोजा (६) श्रीमती विजया बहन (७) श्रीमती प्रभा बहन

दूसरी बैठी पंक्ति (बाए से दाए): (१) श्रीमती लीलामन्ती बहन (२) श्रीमती गुणवन्ती बहन (३) श्रीमती इन्दिरादेवी मुकीम (४) श्रीमती विजया बहन

सेठ गोविन्ददास, संसद्-सदस्य

हमारा देश संसार के कुछ सबसे प्राचीन देशों में से एक है। संसार के सबसे प्राचीन देशों में भारत, मिश्र, चीन, यूनान, मेसोपटामिया, बेबिलोनिया आदि हैं। अन्तिम दो का आज संसार में कोई स्थान नहीं है, शेष चार का है। भारत का रहने वाला मैं हूँ और शेष चार को भी देखता हूँ। उनकी संस्कृतियाँ प्राचीन हैं। पर यदि आज मिश्र, चीन और यूनान में उनकी प्राचीन संस्कृति का दर्शन करना चाहें तो वहाँ के जीवन में उसका कुछ भी दर्शन नहीं होता। हाँ-खण्डहरों एवं अजायब-घरों में उनके दर्शन जरूर होते हैं! भारत ही केवल एक देश है, जहाँ की प्राचीन संस्कृति अभी यहाँ के लोगों के जीवन में प्रदर्शित है। वह एक धर्म-प्राण संस्कृति है, जिसे ऋषियों, महर्षियों, तीर्थंकरों आदि ने बड़े ही व्यापक अर्थ में लिया था। अंग्रेजी का 'रेलिजन' शब्द या मजहब शब्द से धर्म शब्द के ठीक अर्थ का बोध नहीं होता है। ये संकुचित अर्थ में लिये जाते हैं। जितने वे संकुचित अर्थ में लिये जाते हैं, उतना ही हमारे यहाँ धर्म व्यापक अर्थ में लिया जाता है। वह समूचे जीवन को प्रेरणा देता है। हमारा सारा जीवन धर्म के अन्तर्गत आ जाता है। अमेरिका और उसके साथ के तथा रूस और उसके साथ के देशों में लड़ाई की बड़ी तैयारियाँ चल रही हैं। वे बात शान्ति की करते हैं और तैयारी लड़ाई की करते हैं! भारत ही एक देश है, जिसके सन्देश में लड़ाई को रोकने की क्षमता है। यह बड़े हर्ष का विषय है कि दो वर्षों के बाद पुनः विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। संसार के प्रायः सभी देशों के लोगों ने पिछले सम्मेलन में भी भाग लिया और इस सम्मेलन में भी ले रहे हैं।

हम यदि संसार में मैत्री की स्थापना तथा प्रेम-राज्य की स्थापना के लिए इच्छुक हैं, तो हमें धर्म का ही मार्ग अपनाना पड़ेगा। यह सम्मेलन ऐसी प्रेरणा प्रदान करेगा कि संसार सेवा, धर्म और प्रेम के मार्ग से आगे बढ़ सकेगा और परिणाम स्वरूप उससे विश्व-शान्ति की स्थापना हो सकेगी।

धर्म की उपलब्धियाँ

सेठ अचल सिंह संसद्-सदस्य

आज यह बहुत ही हर्ष का विषय है कि यह दूसरा विश्व-धर्म-सम्मेलन हम लोग कर रहे हैं। यह सम्मेलन मुनिश्री सुशील कुमारजी की देन है। आपके मन में यह भावना आयी कि किसी प्रकार संसार मे धर्म के नाम पर होनेवाले विप्लव, रक्तपात आदि बन्द हों और सभी परस्पर प्रेम से मिल सकें। सभी लोग धर्म की सच्चाई को समझकर संसार का कल्याण करें। इसीसे उज्जैन, बम्बई, भीलवाड़ा में कई धर्म-सम्मेलन उन्होंने किये, जिनमें देश-देश के लोग सम्मिलित हुए।

धर्म के नाम पर संसार में—योरप में और एशिया में खून की नदियाँ बहीं जब धर्म, आत्मा को

सत्य, अहिंसा सिखाता है तो यह महज धर्म के नाम पर रक्तपात क्यों हुए ? दुनिया आज शान्ति चाहती है। उसी तरह आज राजनीतिक नेता भी यद्यपि अपनी तैयारियाँ लड़ाई की करते हैं, पर वे भी शान्ति की बातें करते हैं। नेहरूजी ने इसीसे 'पंचशील' का सन्देश विश्व को दिया और युद्ध जो निकट होता जाता था, उसे दूर किया। आज वातावरण में परिवर्तन हो रहा है। अब रूस के ख्रुश्चेव भी अमेरिका जाते हैं, जिसकी कल्पना कुछ दिन पहले नहीं की जा सकती थी, क्योंकि उनकी विचार-धाराएँ परस्पर-विरोधी हैं। संसार की आवाज ने उन्हें मजबूर कर दिया है कि बगैर अहिंसा के वे कायम नहीं रह सकते। वैसे तो स्थिति यह है कि चन्द मिनिटों में सारे संसार का नाश हो सकता है। आज तमाम दुनिया का यह प्रयत्न है कि अशान्ति, युद्ध एवं हिंसा को दूर किया जाय। यह ठीक है कि हम भारत के लोग चींटी से लेकर मनुष्यमात्र तक सर्व प्राणियों के साथ अहिंसा का पालन करते हैं, पर विदेशी लोग इसे मनुष्यों तक ही सीमित करने की बातें करते हैं। इसी विचार से विश्व धर्म-सम्मेलन यह सन्देश देता है कि संसार में अहिंसा का साम्राज्य हो और मनुष्य के जीवन में अहिंसा का आचरण आये। सम्मेलन का सर्वत्र स्वागत इस बात का परिचायक है कि समस्त संसार में इस विचार का आदर है। आज यह समय की मांग है, जिसे मुनिजी ने चलाया है। पर विचार करना है कि यह कार्य किस प्रकार आगे बढ़ सकता है, इसके लिए विचार-विनिमय करें, इस आवाज को सर्वत्र फैलायें और सारे संसार को बता दें कि आज की माँग यही है कि अहिंसा को अपनाया जाय। तमाम लोग इसमें सहयोग दें। इसीमें हमारा और तमाम देशों का कल्याण है। ● ● ●

> अहंकार ने ही धर्माचार्यों को आपस में भेद पैदा करने के लिये मजबूर किया है। यदि इस अहंकार के स्थान पर नम्रता आ जाय, तो सारी समस्या तुरंत सुलझ सकती है !

विश्व अहिंसा संघ

३ फरवरी '६० को विश्व अहिंसा-संघ की सभा हुई। सभा की अध्यक्षता सेठ गोविन्ददास एम० पी० कर रहे थे। मंगलाचरण के बाद मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज का भाषण हुआ।

मुनिश्री सुशील कुमार

बहुत वर्षों से लगातार स्वाध्याय, चिन्तन और विचार-विनिमय आदि के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि जब तक शिक्षा में संस्कार नहीं डाला जायगा, शिक्षा का वास्तविक लाभ हमें और हमारे इस मानव समाज को नहीं मिल सकता। वर्षों से यह बात मन में घूमती रही। जिस ढंग की शिक्षा आज दी जा रही है, वह पर्याप्त नहीं। जब तक इसमें सुधार नहीं किया जायगा, तब तक जीवन का ठीक ढाँचा खडा नहीं किया जा सकेगा।

आज संसार के लोग आनेवाली पीढ़ी को दो चीजों का दान देते हैं—एक शिक्षा और दूसरी सम्पत्ति। शिक्षा उसे इसलिए दी जाती है कि उसके द्वारा वह अपने जीवन की समस्याओं को ठीक ढंग से सुलझा सके, उसकी बुद्धि का विकास हो सके, और वह जगत् के जीवन की समस्याओं के साथ अपने जीवन को मिला सके। इसीलिए आज हमारी सबसे बड़ी समस्या इसी शिक्षा की है। दूसरी ओर भौतिक समस्याओं की पूर्ति के लिए सम्पत्ति के साधन एकत्र किये जाते हैं।

धर्मवालों ने भी दो प्रकार से काम किये हैं—एक सम्पत्ति पर नियन्त्रण का और दूसरा शिक्षा में संस्कार डालने का। धर्म की उपयोगिता अन्तर की है, बाहर की नहीं। वह मूल को सदा सिंचित कर जीवन-वृक्ष को सद्जीवन पर आरूढ़ रखता है। जहाँ तक सम्पत्ति का प्रश्न है, वह जगत् से प्राप्त होती है। वह बाहर की वस्तु है। उसका सम्बन्ध समाज, राज्य एवं राज्य के कानून से है। आज शिक्षा का भी प्रश्न धर्माचार्यों के हाथ में नहीं, बल्कि राजनीतिकों के हाथों में है। हम शायद उसमें पडना भी नहीं चाहते हैं। हमारा उद्देश्य इतना ही है कि विद्या के साथ विद्यार्थियों को उसका सौरभ विनय भी प्राप्त हो। सम्पत्ति का प्राप्त होना कोई घृणा की बात नहीं है। पर सम्पत्ति के साथ विवेक और बुद्धि का होना नितान्त आवश्यक है और यही धर्मवालों का उद्देश्य है। धर्मवाले लोग न सम्पत्ति का विरोध करते हैं और न शिक्षा का, बल्कि उस प्रकार कि शिक्षा का विरोध करते हैं, जैसा कि अकबर शायर ने कहा है कि—"हम उन कुल किताबों को काबिले जप्ती समझते हैं। जिन्हें पढ़कर लड़के माँ-बाप को खप्ती समझते हैं।" हम उस शिक्षा के जरूर विरुद्ध हैं, जिससे मनुष्य अज्ञानी, प्रमादी, मदान्ध और अविवेकी बनता हो। धर्मवाले उन तमाम लोगों से जो धर्म को

मानते हैं या उसमें विश्वास रखते हैं, उनसे यह चाहते हैं कि उनका यह बड़ा कर्तव्य एवं कार्य है कि शिक्षाविदों के अन्दर अहंकार न हो, सम्पत्तिशालियों में विवेक हो। अपनी सम्पत्ति का उपयोग दूसरों की भलाई तथा अपनी विद्या का उपयोग विवेक के लिए करें।

जहाँ तक यह प्रश्न विश्वधर्म-सम्मेलन से सम्बन्धित है, प्रश्न यह उठ सकता है कि हम क्या कोई नया सम्प्रदाय खड़ा करना चाहते हैं? यह प्रश्न अवश्य स्वाभाविक ढंग से आयेगा कि यह भी क्या वैसी ही संस्था बन जायगी, जैसी अनेक अन्य संस्थाएँ बन गयीं। तमाम धर्म-संस्थाओं का प्रारम्भ विश्व-कल्याण के लिए हुआ और धीरे-धीरे वे सम्प्रदायें बन गयीं, तो क्या यह विश्वधर्म-सम्मेलन भी कोई सम्प्रदाय खड़ा कर रहा है? प्रश्न तो स्वाभाविक ही है। आखिर इसका तरीका, ढंग और रूप क्या होगा? मेरे साथी जयन्तिमुनि ने मुझसे पूछा कि क्या आप दुनिया के लोगों से अपील करेंगे कि अपने-अपने सम्प्रदायों को छोड़ दो और विश्वधर्म-सम्मेलन को ग्रहण करो? परन्तु बात ऐसी नहीं है। मेरा उद्देश्य यह कतई नहीं है कि एक रोग का इलाज करने गये और दूसरा नया रोग लाद दिया! एलोपैथिक चिकित्सा में रोगी पर एक नया 'रिऐक्शन' [प्रभाव] रह जाता है। यदि यही तरीका रहा कि रोगों का इलाज करते हुए एक नया रोग छोड़ते गये, तो बीमारियों की एक परम्परा बन जायगी। विश्वधर्म-सम्मेलन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से जान लें कि यह कोई नया सम्प्रदाय या उसका किसी प्रकार का अवतरण नहीं है, बल्किवह सभी सम्प्रदायवालों से यही चाहता है कि उन्हें अपने-अपने धर्म के जो भी तत्त्व मिले हैं, उन्हें मानें, उन पर चलें—चाहे जिस ढंग से हो, इसमें बहुत प्रसन्नता है। शायर ने कहा है कि :

"मजाहिब क्या है,? मुख्तलिफ राहें हैं—एक मंजिल की।
और – मंजिल क्या है?—जहाँ सब कुछ होता, राहें नहीं होती।"

मैं इतना ही कहता हूँ कि अपने-अपने धर्म को मानते हैं तो ठीक है, पर दूसरे धर्मों से नफरत किस धर्म ने सिखाया है? तमाम धर्मवालों के पास धन, मनुष्य एवं विद्या की शक्ति है और जिनका उपयोग संकीर्णता को बढ़ावा देने के लिए होता है, क्या ऐसा कोई मार्ग नहीं, जिससे उन तमाम अलग-अलग शक्तियों का उपयोग विश्व के अभ्युदय एवं कल्याण मे हो सके? लोग सोचे कि सरकार या राज्य कोई सम्प्रदाय नही है। वह भी पूर्णतः स्वेच्छापूर्वक उनमे से ही निर्वाचित विभिन्न मतों के लोगों द्वारा निर्मित संगठन है। वह स्वयं एक सम्प्रदाय जरूर है, पर उसका भी उद्देश्य लोगों की भलाई ही है। इसी प्रकार विश्वधर्म-सम्मेलन एक धार्मिक राज्य या सरकार जैसी है। यह दुनिया भर के विभिन्न मतों, धर्मों के आचार्यों और लोगों की एक ऐसी संस्था है, जिसका उद्देश्य धर्मान्धता को मिटाना, नास्तिकता को दूर करना तथा मनुष्य मात्र की बुद्धि एवं विवेक को जाग्रत करना तथा उसकी अन्तरात्मा के प्रबुद्ध करना है।

शिक्षा की दिशा

धर्म-सम्मेलन दो काम करेगा। एक तो धार्मिक महात्माओं की शक्तियों का धार्मिक अभ्युदय के लिए संचय और शिक्षा-पद्धति में सुधार। क्योंकि शिक्षा में संस्कार लाये बिना धर्म और धर्म-सम्मेलन का कोई अर्थ नहीं। उसका दारोमदार शिक्षा पर है। यदि शिक्षा में परि-

वर्तन आ जाये तो सारे विश्व में एक महान परिवर्तन आ सकता है, जो हमारी या तमाम दुनिया की सरकारें करना चाहती हैं। आज सारे लोग भयग्रस्त या भौतिकताग्रस्त हैं, तो यह सभी सरकारों का दोष है, असंस्कृत शिक्षा का दोष है। जब तक शिक्षा को ठीक ढंग से नहीं बदला जायगा, तब तक सुधार सम्भव नहीं है। आज लोगों को ठीक ढंग से शिक्षा नहीं दी जा रही है, ये विचार मेरे मन में आ रहे थे। अनेक विद्वानों, महात्माओं आदि से मिलने का और विचार-विमर्श का मौका मिला, विभिन्न धर्म के प्रतिनिधियों से सलाह-विमर्श हुआ और विचार निश्चित हुआ। १९५७ के प्रथम विश्वधर्म-सम्मेलन, दिल्ली के अवसर पर सेठ गोविन्ददासजी ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया। वह यह था कि संसार का अब तक जो सोचने का ढंग रहा है, उसमें आमूल परिवर्तन किया जाय, एक मनो-वैज्ञानिक परिवर्तन किया जाय और इसके लिए शिक्षा-निकेतन, विश्वविद्यालय कायम किया जाय, जिससे एक संस्कारपूर्ण शिक्षा के द्वारा मनुष्य स्वयं के लिए स्वार्थी भावनाओं के बदले दूसरों का भला करना सीखे, केवल स्वयं का पेट भरना या स्वार्थ-पूर्ति करना ही नहीं सीखे। पर आज जितने विश्वविद्यालय, महाविद्यालय या विद्यालय हैं, वहाँ स्कॉलरों, डॉक्टरों, स्नातकों आदि का निर्माण तो होता है, पर ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं है, जहाँ से लोग इन्सान बनकर निकलते हों। उनके पाठ्यक्रम में इन्सान बनाने की कोई योजना नहीं है। अतः एक ऐसे विश्वविद्यालय की नितान्त आव-श्यकता है, जहाँ लोगों को इन्सान बनने की शिक्षा मिलती हो, जहाँ बचपन से उसे ऐसा बनाया जाता हो, उसकी आत्मा पर ऐसा संस्कार पड़ता हो कि अपने विचारों से अपना सम्बन्ध सम्पूर्ण जड़ और चेतन से जोड़ सके, अपना सम्बन्ध सम्पूर्ण जगत् से कायम कर सके। वह शिक्षा केवल मन को खुश करने तक ही सीमित न हो, बल्कि उसके सहारे व्यक्ति अपनी आत्मा को तमाम ब्रह्माण्ड में लय कर सके।

इस देश से महात्माओं ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावनाओं का विकास किया था। केवल भारत या एशिया नहीं, बल्कि समस्त पृथ्वी को एक कुटुम्ब मानने की भावना—कितना विशाल और महान आदर्श! यह आज की नहीं, बल्कि हजारों वर्षों की घोषणा है। यहाँ से इस प्रकार के संस्कार के भाव उठे थे। यदि हमारी भावी पीढ़ी की शिक्षा में इस प्रकार के सिद्धान्तों का अवतरण हो सका और लोग उसे अपना सके तो सारी बुराइयाँ मिट सकती हैं। यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज हमारे उसी भारतवर्ष में प्रान्त, भाषा आदि की संकीर्णताएँ पनप रही हैं। शिक्षा को ठीक ढंग से बदले बिना ये बुराइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। शिक्षा के पीछे एक भावना पलती है। आज शिक्षा पाकर लोग डॉक्टर बनते हैं, तो उनका उद्देश्य रोगियों की चिकित्सा नहीं, बल्कि अर्थोपार्जन है! वे शिक्षक बनते हैं तो लोगों को शिक्षित करने के लिए नहीं, बल्कि अपना पेट भरने के लिए! पर यह कितनी दयनीय एवं पतनावस्था की द्योतक है! संसार में अनन्तानन्त प्राणी हैं और उनमें बहुत बड़े-बड़े प्राणी हैं, जिनमें सभीका पेट भर जाता है; फिर बुद्धि-युक्त मनुष्य प्राणी ही उसके लिए इतना चिन्तित और हर प्रकार की बुराइयों में संलग्न रहे, यह एक विचित्र बात है। आज विश्वविद्यालयों की शिक्षा का उद्देश्य इतना ही रहा है कि वह लोगों को पेट भरने का साधन प्रदान कर सके। धिक्कार है और लानत है ऐसी शिक्षा एवं विद्या को! इन सारी बातों से हमारे मन में एक विचार आया कि यदि देश में क्रान्ति करनी है और मनुष्य जाति को उन्नत बनाना है, तो शिक्षा को बदलना होगा। शिक्षा के उद्देश्य एवं दृष्टिकोण को यानी केवल पेट भरने, नौकर बनने की भावना को बदलना है। हम सोचते थे कि "सा विद्या या विमुक्तये।" अर्थात् विद्या वह है, जो आत्म-

नाओं से, नाम, रूप, शरीर आदि के बन्धनों से मुक्त करती हो, आत्मा और अनात्मा का भेद बताती हो तथा हमें परमात्मा तक पहुँचाती हो। अतः शिक्षा बन्धनों से मुक्त करनेवाली है न कि उसमें जकड़नेवाली। पर आज विद्या का उद्देश्य कैसा है? अतः मन में एक विचार उठा और एक विश्व अहिंसा-शोधपीठ एवं अहिंसा विश्वविद्यालय की योजना आयी, क्योंकि जब तक शिक्षा का वर्तमान क्रम रहेगा और लोगों में अहिंसा का अवतरण नहीं होगा तबतक "जीवो, जीवस्य जीवनम्" का ही सिद्धान्त उपस्थित रहेगा, क्योंकि वर्तमान शिक्षा तो पेट भरने का साधन मात्र है और उसका आधार स्वार्थ की पूर्ति है। जीव, जीवों के जीवन पर, उसके खून पर, उसके पेट को काटकर, उसके शोषण पर खड़ा है, यही सिद्धान्त बना रहेगा। पर जब तक हमारा जीवन दूसरों की हत्या पर टिका है, दूसरों की मौत पर खड़ा है, यह जीवन-क्रम कब तक चलता रहेगा, नहीं कहा जा सकता? जीवन का यह मूलाधार, यह जमीन, यह पृष्ठभूमि ही गलत है। इसे बदलना होगा। हमें सोचना होगा कि हम दूसरों के आधार पर नहीं खड़े हैं, हमारे आधार पर दूसरे खड़े हैं और हम दूसरों के कल्याण व भलाई के लिए हैं। हमारा जीवन दूसरों के लिए है। इस दृष्टिकोण को लाना है और इसी प्रकाश में अपने विचारों को समुन्नत बनाना है। अंग्रेजी में भी–'लिव ऐण्ड लेट लिव' अर्थात् जीओ और जीने दो कहा गया है। आज संसार में जितने ढंग प्रचलित हैं, जितने व्यापार हैं, सभी में हिंसा, हत्या, लूट, शोषण आदि व्याप्त हैं। सोचना यही है कि उन्हें किस प्रकार बदला जा सकता है? इसीसे अहिंसा शोधपीठ के अन्तर्गत यह विचार किया गया कि एक तो अहिंसा के सम्बन्ध में अब तक दूसरों को जीवित रखकर जीने के बारे में जो कुछ सोचा गया, कहा गया, उन्हें एक स्थान पर संकलित किया जाय। महात्मा गांधी और विनोबा ने क्या सोचा? उन्होंने अहिंसा को जीवन में किस प्रकार अपनाया? और इस प्रकार तमाम दुनिया के युग-युग के समस्त अहिंसा सम्बन्धी विचारों एवं व्यवहारों का संकलन करने का विचार हुआ।

कार्य का स्वरूप

फिर आज तमाम विश्वविद्यालयों में ऐसे पाठ्यक्रम की शिक्षा हो जिससे लोगों को यह शिक्षा मिले कि हम किस प्रकार दूसरों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करके जी सकते हैं, हमारा जीवन किस प्रकार दूसरों की हत्या पर नहीं टिका है, आदि। अतः सभी लोगों के मन में इस प्रकार के एक अहिंसा शोधपीठ के निर्माण का संकल्प हुआ तथा उसका बौद्धिक एवं रचनात्मक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। बौद्धिक क्षेत्र में अब तक जितने चिन्तन हुए हैं, उन्हें एक ओर संकलित करने के लिए विश्व अहिंसा-कोष की योजना बनी, जिसमें अब तक के महात्माओं, तीर्थंकरों, पैगम्बरों आदि ने अहिंसा के संबंध में, जीवन के कल्याण के संबंध में जितना भी सोचा, जो भी ढंग अपनाया, केवल हमारे देश में ही नहीं, बल्कि दुनिया के तमाम देशों में जो सोचा गया या उन देशों की जातियाँ जो दूसरों को जिन्दा रखकर जी रही हैं एवं दूसरो की मौत पर टिकी नहीं हैं, उन सभी के बारे में सारे विचारों एवं उनके सम्बन्ध में परिचयों को संचित किया जाय और इसे अहिंसा विश्व-कोष का रूप दिया जाय। इसके लिए कई हजार शीर्षक बनाये जा चुके हैं, जो जीवन एवं जगत् की समस्याओं से सम्बन्धित हैं। किस प्रकार से खाने-पीने एवं जीवन के अन्य व्यवहार में हिंसा से बचा जा सकता है,

उन विचारों एवं उनके ढंगों का भी संकलन उसका उद्देश्य है। अब यदि उसे आगे बढ़ाना है, उसका निर्माण करना है तो उसे अनेक लोगों की शक्ति, विद्वानों के मस्तिष्क आदि की जरूरत है। इस सम्बन्ध में जो भी जितना सहयोग देना चाहें, इस बात के लिए संकल्प करें कि उनकी शक्ति का उपयोग मानव जीवन के सही उद्देश्य में होगा। जमीन एवं भवन के निर्माण के सम्बन्ध में सेठ गोविन्द दास कुछ कहेंगे। भवन अहिंसा नहीं है। वह आत्मा में रहती है। उसे जगाने की आवश्यकता है, पर भवन की भी जरूरत है। इस सम्बन्ध में चार विचार सोचे हैं :—

(१) अहिंसा के सम्बन्ध में तमाम विद्वानों के लेख एक पत्र में प्रकाशित होते रहें ताकि लोग को यह जानकारी प्राप्त हो सके कि दुनिया के विभिन्न देशों एवं जातियों के लोगों ने विभिन्न कालों में अहिंसा के सम्बन्ध में क्या विचार किया है और वे आज क्या विचार कर रहे हैं।

(२) संसार में अहिंसा को माननेवाली कितनी जातियाँ हैं, उनका क्या परिचय है तथा उनके क्या विचार हैं, उनसे लोगों को परिचित कराया जाय। इन लक्ष्यों को ध्यान में रख एक पत्र अहिंसा-पथ नाम से त्रैमासिक चालू किया गया। पर बाद में विश्वधर्म-सम्मेलन की ओर से प्रकाशित 'विश्वधर्म' नामक मासिक पत्रिका* के ही विशेषांक के रूप में प्रत्येक तीन माह के बाद प्रकाशन करने का निश्चय किया गया है।

(३) जहाँ धर्म के नाम पर या राजनीति या समाज के नाम पर हिंसाएँ हो रही हैं, वहाँ नये ढंग से अहिंसक सत्याग्रह करना होगा, क्रांति करनी होगी। यदि मनुष्य के नाम पर पशुओं की हत्या होती है, तो विचार करना पड़ेगा कि उसकी उपयोगिता क्या और कहाँ है?

(४) जहाँ समाज, समाज की ओर मनुष्य, मनुष्य की हत्या करता है, चाहे व्यापार के द्वारा या दूसरे ढंग से शोषण के द्वारा उसके विरुद्ध भी अहिंसक सेना का काम करना है। इस सम्बन्ध में कुछ विचार भी किया गया है और अमल भी किया गया है।

अहिंसा-शोधपीठ की योजना को दिल्ली-सम्मेलन में बौद्ध, मुस्लिम, क्रिश्चियन, जैन, वैदिक आदि धर्म के सभी प्रतिनिधियों का समर्थन प्राप्त हुआ। लोगों ने शिक्षा-संस्कार के द्वारा दृष्टिकोण के निर्माण में सफलता की आशा की थी। अब लोगों के सामने यह प्रश्न है कि वे विचारें कि अब अहिंसा के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। आज अनेकानेक प्रकार के बम आदि शस्त्रास्त्र बन गये हैं, पर अब वह समय आ गया है कि लोग दूसरों को मारकर या गुलाम बनाकर नहीं जी सकते हैं, उन पर शासन नहीं कर सकते हैं और उनके स्वामी नहीं रह सकते हैं। सबको अपने समान समझना होगा, दूसरों की गरीबी को अपने सहयोग से मिटाना होगा। यही अहिंसा का दृष्टिकोण है और अहिंसा की भावना है। अहिंसा की नीति इतनी ही नहीं है कि आप हिंसा न करें। इसका केवल 'निगेटिव' निषेधात्मक अर्थ या या पहलू ही नहीं है, बल्कि 'पॉजिटिव' विधेयात्मक पहलू भी है और वह यह है कि वैसे सभी कार्यों को करना चाहिए और उनका करना कर्तव्य है, जिससे हिंसा को अहिंसा के द्वारा रोका जा सकता है। इसके अनुसार तमाम शुभ कार्यों को करने तथा अशुभ कार्यों के निषेध की आवश्यकता है। दोनों ही वृत्तियों को जाग्रत करना होगा। हिंसा न करने से हिंसा से तो बच गये; पर उससे 'केवल निज का लाभ हुआ, समाज का लाभ नहीं हुआ और वह अहिंसा का व्यापक

---

* इस मासिक का पता है—
के० ६०।१४, दुलहिनजी रोड, वाराणसी
संपादक : सतीश कुमार, वार्षिक मूल्य : ५ रुपया

अर्थ भी नहीं हो सकता। अहिंसा का इतना ही अर्थ नहीं कि केवल पशु को मत मारो, शोषण मत करो आदि। उसका यह भी अर्थ है और उसे भी बताना होगा कि क्या करो जैसे दुनिया की भलाई करो, कल्याण करो, प्रेम करो, हिंसा बन्द करो, दूसरों से प्रेम से मिलो, सब पर दया करो, जीवों की रक्षा करो, उनसे सहानुभूति करो आदि। तभी अहिंसा का व्यापक अर्थ प्रगट हो सकता है। इसी अर्थ से विश्व अहिंसा-संघ की स्थापना हुई, जिसमें विभिन्न देशों एवं धर्मों के प्रतिनिधि हैं।

शोधपीठ की योजना, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं मानसिक विकास की है। जब उसका सन्देश दुनिया के सामने लोग लेकर चलेंगे तो एक नया रूप दृष्टिगोचर होगा। आज जो पाठ्यक्रम चल रहा है, उसमें भावी पीढ़ी को इन्सान बनाने के दृष्टिकोण को लेकर नये पाठ्यक्रमों को लगाने की जरूरत है। इसी अहिंसा के विश्वास को लेकर हम चल रहे हैं और इसी विश्वास को लेकर महात्मा गांधी भी चलते थे।

अहिंसा का स्वरूप दर्शन

•

सेठ गोविन्ददास

पहले हमें कुछ सिद्धान्तों पर भी विचार करना आवश्यक होता है। मनुष्य तथा दूसरे प्राणियों में बहुत अन्तर है और वह यह है कि मनुष्य किसी कार्य को करने के पहले विचार एवं चिन्तन करता है और तत्पश्चात् उसके अनुरूप कर्म करता है। दूसरे प्राणियों में निसर्ग ने, ईश्वर ने चिन्तन करने की वह शक्ति नहीं दी, जो मनुष्य को दी है। इसीसे मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। मनुष्य ने जो सबसे बड़ी खोज की है, जहां तक आज के बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक नहीं जा सके हैं, वह यह थी कि तमाम सृष्टि एक-सी है—जो मैं, वह आप और जो आप वह सारा विश्व। यह ज्ञान सर्वप्रथम भारत को ही प्राप्त हुआ वेदों एवं वेदान्तों में इस अर्थ के कुछ सूत्र भी मिलते हैं। ऋग्वेद में एक सूत्र है—"अहम् ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म"। अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, तुम भी वही हो एवं सभी ब्रह्म हैं। इसीसे "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त स्वतः आ जाता है। इसीलिए दूसरों के उपकार

सेठ गोविन्ददास

करने का या उनके लिए कुछ करने का जो सिद्धान्त है, वह वास्तव में स्वयं का उपकार है, न कि परोपकार। मैं वही जो आप, समस्त सृष्टि वही जो मैं और आप तो प्रश्न दूसरो के उपकार का नहीं, बल्कि अपने ही उपकार का होता है। इस प्रकार समस्त सृष्टि को जबतक मनुष्य नहीं देखता, तब तक वह केवल दूसरों के लिए काम नहीं कर सकता है। आप इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त धर्मों को लें। वेदान्त,जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, चीन आदि देशों के धर्मों, समस्त संसार के धर्मों को लें; उनमें यही मिलेगा कि तेरी कीर्ति दूसरों के प्रति ऐसी होनी चाहिए, जैसी दूसरो से तू स्वयं अपेक्षा

"कार्यकर्ता ही किसी भी आंदोलन के दृढ़ आधार होते हैं।"
इन कार्यकर्ताओं ने इस सिद्धान्त को अपनी चमत्कृत कर
देनेवाली सेवा से साबित कर दिया।

मोहनलाल नाहर

रामस्वरूप सरावगी

खैरातीलाल दूगड़

भँवरलाल कोचर

गणेशमल कोचर

दुलीचंद छल्लानी

कीमतराय जैन
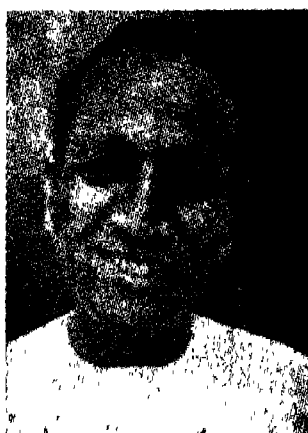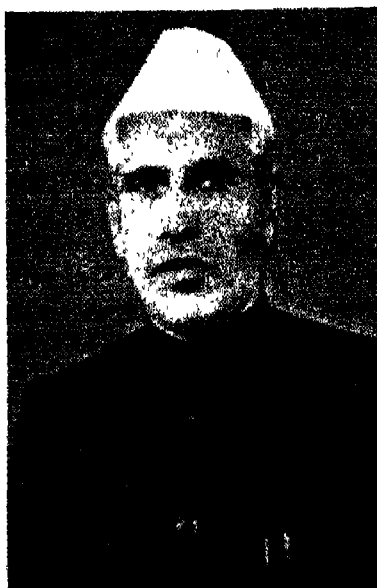
ऋषिश्वर नारायण सिंह

ये हैं वे महिला कार्यकर्त्रियाँ, जिन्होंने पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर काम किया और हर तरह की सहायता करके आयोजन को सफल बनाने का श्रेय प्राप्त किया।

अमरादेवी रामपुरिया
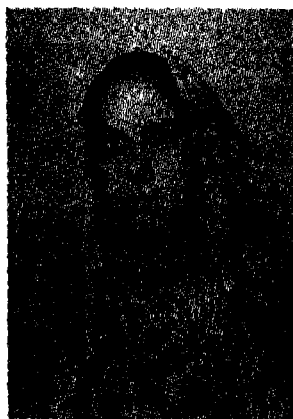
श्रीमती पेपादेवी रामपुरिया
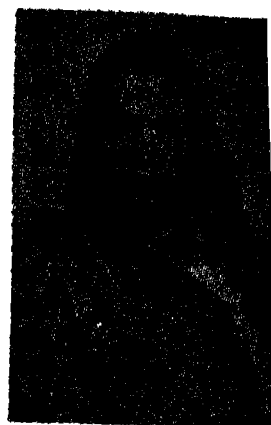
श्रीमती लहरी बहन

श्रीमती चंपाकुमारी सिंघी

श्रीमती इंदिरादेवी मुकीम

श्रीमती चंचल बहन हेमाणी

करता है। यदि हम इसे मान लें, तो अहिंसा आप से आप आ जाती है। मनुष्य स्वभावतया अपनी हिंसा नहीं करता है और यदि तमाम सृष्टि वही है, जो वह है तो मनुष्य स्वयं की हिंसा किस प्रकार कर सकता है? जैन धर्म की सबसे बड़ी बात अहिंसा ही है।

आज के संसार में इस अहिंसा की जितनी आवश्यकता है, उतनी और किसी वस्तु की नहीं है। अंग्रेजी में 'डार्कनेस बिफोर डॉन' की एक कहावत है, अर्थात् उषा या प्रकाश फैलने के पूर्व गहन अन्धकार। आज हिंसा का जो रूप देखने को मिलता है, आज के पहले शायद वह रूप कभी देखने को नहीं मिला। इतिहास में मानव द्वारा ऐटम के सदृश शस्त्रास्त्रों का निर्माण नहीं हुआ था। अभी रूस के एकमात्र तानाशाह श्री खुश्चेव ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि उनके यहा एक ऐसे शस्त्र का निर्माण हुआ है, जैसा अब तक दुनिया में कहीं नहीं हुआ। एक ओर आप देखें कि वे दूसरे ग्रहों में पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं और दूसरी ओर हिंसात्मक साधनों की तैयारी में संलग्न हैं, जिससे यह खतरा एवं आशंका है कि यह हमारा ग्रह, पृथ्वी ही रहेगा या नहीं? सबसे पहला विस्फोटक पदार्थ बारूद बना पर, उस समय कौन उसके इस चरम विस्तार के बारे में सोच पाया था। अतः इस परिस्थिति में मैं सोचता हूँ कि सभी धर्मों में स्वीकृत अहिंसा का सारे संसार पर यदि राज्य नहीं हुआ, तो ऐसा बम भी बन सकता है, जिससे इस भूमण्डल के भी टुकड़े-टुकड़े हो जावें। यह निश्चित है कि इन दो बातों में से एक होने वाली है। हम या तो नाश की ओर जायेंगे। नहीं तो सारे संसार में अहिंसा का राज्य होगा। दो में से एक बात अवश्य होने की है।

अहिंसा के अब तक के इतिहास को देखेंगे तो पता लगेगा कि उसे धर्म का अंग माना गया और दुनियादारी में उसे स्थान नहीं दिया गया। जैन धर्म ने उसे स्थान दिया है, जो उसकी विशेषता है। धर्म को भी नित्य प्रति के, रोज के कार्यों एवं कर्तव्यों में स्थान नहीं दिया गया। गांधीजी ने जो सबसे बड़ा कार्य किया, वह अहिंसा को केवल धर्म का एक अंग या क्षेत्र नहीं माना, परन्तु उन्होंने कहा कि सारा जीवन व्यक्तिगत एवं सामूहिक जब तक अहिंसामय नहीं हो जाता, विश्व का कल्याण नहीं होगा। हम "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "सर्वभूतहिते रताः" कहा करते हैं। अतः हमारा व्यवहार जो मनुष्य के प्रति है, वह अन्य जीवों के प्रति भी होना चाहिए।

मैं ४० वर्षों के जीवन में केवल एक ही संस्था, कांग्रेस में रहा हूँ और मैं उसका बड़ा समर्थन करता हूँ। केन्द्र एवं प्रान्तों में उसका शासन है। पर कांग्रेसवादी रहते हुए भी जो कांग्रेस सरकार मछली खिलाने का प्रयास कर रही है, मुर्गी और अन्डों के विकास से जो वह लोगों को मांसाहार की ओर ले जा रही है, उसे देखकर मेरे बदन में शिर से पैर तक आग लग जाती है! मेरी समझ में नहीं आता कि जिस देश ने यह पता लगाया कि समस्त पृथ्वी में एक ही तत्त्व है और जहाँ तक आज के वैज्ञानिक भी नहीं पहुँच पाये है, उसी देश में आज जितने सामिष हैं, उतने दुनिया में कहीं नहीं। जब हम विचार के उस सोपान तक पहुँच गये थे तो फिर निरामिष भोजन की जगह पर सामिष का प्रचार किया जाय, एक प्रकार से महात्मा गांधी के अहिंसा-सिद्धान्त के विपरीत मुर्गी, अण्डे एवं मछली आदि का प्रचार तो मेरी समझ में ही नहीं आता है। मैं तो यह मानता हूँ कि अहिंसा केवल धार्मिक क्षेत्र की वस्तु न होकर सम्पूर्ण जीवन की वस्तु है।

मैं यथाशक्ति गाय की सेवा करता हूँ। उसे मनुष्य के बाद समस्त चेतन-सृष्टि (पशु, पक्षी, कीट आदि) का प्रतीक मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि ऋषि, मुनियों, तीर्थंकरों तथा चिन्तक एवं विचारशील लोगों ने इसका पता लगा लिया था और इसीलिये गोरक्षा को समस्त सृष्टि की रक्षा का

प्रतीक मान लिया गया था। यदि निरामिष भोजन के सबसे ऊँचे सोपान तक पहुँचना है, तो उसके लिए गाय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यद दूध, घी और बैलों पर निर्भर अन्न नहीं मिलता तो हम जी नहीं सकते। आज स्वराज्य के १२ वर्ष के बाद भी गोवध बन्द नहीं हुआ। सरकार के कार्यों को देखकर अण्डे, मछली आदि के प्रोत्साहन को देखकर शिर से पैर तक आग लग जाती है। यदि आज देश एवं विश्व का उपकार करना है, तो सिद्धान्ततः यह मान लेना चाहिए कि जब तक सम्पूर्ण जीवन में हम अहिंसा को नहीं लायेंगे, व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से अहिंसा के पूरक होकर जीवन नहीं चलायेंगे तथा उसके अनुरूप अपने देश एवं संसार के जीवन को चलाने का प्रयत्न नहीं करेंगे, तब तक न व्यक्ति कल्याण हो सकता है और न विश्व का।

मुनिजी ने शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता बतायी जिसके लिए विश्व अहिंसा संघ की स्थापना की गयी है। वह सर्वथा एक स्वतन्त्र संस्था है। यद्यपि वह विश्वधर्म-सम्मेलन से सम्बन्धित है, फिर भी जो लोग धर्म के नाम से नाक भौं सिकोड़ते हैं, उनके लिए भी वहाँ स्थान है। यद्यपि धर्म का अर्थ संकुचित नहीं, बल्कि व्यापक है और उसका अर्थ अंग्रेजी के 'रेलिजन' से पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होता है, फिर भी हमारा राज्य धर्म निरपेक्ष है। कुछ लोग धर्म को संकुचित अर्थ में लेते हैं, उनके लिए विश्व अहिंसा-संघ में कोई रुकावट नहीं है।

अहिंसा-विश्वविद्यालय एवं शोधपीठ के लिए जमीन की आवश्यकता है ही। उसके बिना काम नहीं चलता। मुनिजी के विचारों से मैं सहमत हूँ कि अहिंसा मकान में नहीं रहती, पर जब तक मनुष्य साढ़े तीन हाथ का आधिभौतिक प्राणी है, तब वह इस शरीर के साथ कई आवश्यकताएँ बनी ही रहेंगी और उनकी पूर्ति की आवश्यकता भी होती रहेगी। आशा है, जमीन दिल्ली में शीघ्र ही मिल जायगी, जिसके लिए प्रयत्न चल रहा है। उस पर भवन का निर्माण हो जाय और उसके लिए सभी श्रीमन्त लोग यथा सम्भव अपनी कमाई से दान दें। ऐसा पता चला है कि कलकत्ता के लोग भी उस प्रकार के एक विश्वविद्यालय की स्थापना करना तथा भवन का निर्माण करना चाहते हैं। यह बड़ी अच्छी बात है। इससे काम की और भी अधिक प्रगति हो सकेगी। दोनों केन्द्रों की स्थापना से कार्य का विस्तार द्रुत गति से सम्भव हो सकेगा।

अहिंसा विज्ञान-कोष के संकलन का कार्य अपनी दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। हमारी दृष्टि से इस प्रकार का कार्य कभी नहीं हुआ। 'अहिंसा-पथ पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। अब उसे विश्वधर्म-सम्मेलन की पत्रिका 'विश्वधर्म' से ही सम्बन्धित करने का निश्चय किया गया है, जिसमें चार अंक अहिंसा के निकलेंगे और आठ सम्मेलन के। फिर विचारों के आदान-प्रदान के लिए कुछ गोष्ठियाँ हों। दिल्ली में वैसी गोष्ठियों का आयोजन किया गया है और हम चाहते हैं कि वैसी गोष्ठियाँ जगह-जगह पर हों, जहाँ कुछ लोग जमा होकर और बैठकर विचार कर सकें। शांति-सेना के भी संगठन की योजना है। विनोबाजी भी शान्ति-सेना संगठित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा भी यह लक्ष्य है। फिर चिकित्सा के क्षेत्र में कुछ अनुसन्धान कर रहे हैं कि अहिंसा से किस प्रकार चिकित्सा कर सकते हैं। उसमें योगासन आदि को स्थान देना चाहते हैं। उसी के साथ अहिंसा सम्बंधी छात्र-वृत्ति (पोस्टग्रेजुएट स्कॉलरशिप) भी देने की योजना है। उसके लिए ऐसे विद्यार्थी मिलें, जो बी० ए० के बाद अपनी शिक्षा जारी रखें और उनको कुछ छात्र-वृत्तियाँ दी जायँ।

सब सहयोग दें

सेठ सोहनलाल दूगड़

सर्वप्रथम मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज को हार्दिक बधाई देता हूँ कि साधु समाज से उन्होंने आज देश एवं विश्व के समक्ष एक बहुत ही जबरदस्त एवं सूझ और विचारपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। इस समय उसे कलकत्ता के नागरिकों के सामने रखा है और सचमुच में यदि यह स्कीम लागू हो जाय और उसमें कलकत्ता के नागरिकों, जिसमें विशेषकर श्रीमन्त लोगों का हार्दिक सहयोग प्राप्त हो जाय तो आप सभी देखेंगे कि आज विश्व में जो हिंसा का बोलबाला हो रहा है उसके सामने यह एक बड़ी शक्ति सिद्ध होगी। यह योजना वास्तव में बहुत सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक है, जिससे सभी व्यक्तियों-पुरुषों एवं स्त्रियों-का कल्याण सम्भव है। यह एक जबरदस्त गैर-सरकारी योजना है। इस योजना को चालू करने के लिए आर्थिक सहयोग की जरूरत है। बुद्धि से सहयोग देने के लिए बुद्धिवादी लोगों का सहयोग प्राप्त है। अब अर्थ एवं जमीन की जरूरत है, जिससे कलकत्ता एवं दिल्ली में इसके केंद्रों की स्थापना हो सके। मुनिजी ने तो जीवन में अर्थ का त्याग कर दिया है। उनकी बुद्धि एवं शरीर का सहयोग हमें उपलब्ध है, यह एक बहुत बड़ी बात है। यदि श्रीमन्त लोग स्वेच्छा से ऐसे कार्यों में सहयोग नहीं देते हैं, तो साम्यवाद पर जो छींटाकशी होती है, उसका शिकार बनना पड़ेगा। यदि वे अहिंसा के ढंग से नहीं आते, जो मानव-कल्याण एवं हिंसाको रोकने का एकमात्र उपाय है, तो उनका स्वयं का तो नाश होगा ही, साथ ही सारे समाज के नाश के भी वे ही जिम्मेवार होंगे। कलकत्ता एवं दिल्ली में दो प्रकाश-स्तम्भों की तरह दो केंद्रों का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। फिर तो उसका प्रसार सारे विश्व में होगा ही। श्रीमन्त लोगों का कलकत्ता में भी एक केन्द्र स्थापित करने का विचार एक जबरदस्त एवं सराहनीय विचार है। यह एक परोपकारपूर्ण भाव है। इसमें तो निज का ही कल्याण है, इसी भावना से लोग आगे आयें। इसे परोपकार से नहीं तो अपने उपकार की भावना से ही क्रियान्वित करने के लिए लोग आगे आयें। ऐसे-ऐसे लोग हैं, जिनके पास विपुल सम्पत्ति है और यह निश्चित है कि सम्पत्ति उनके साथ नहीं जायगी, तो इस तत्त्व को समझ कर वे उसका उपयोग श्रेय पथ में लगा कर क्यों नहीं अपने जीवन एवं अर्थ को सार्थक बनाते हैं? दिल खोलकर लोग इस महान कल्याणकारी कार्य में सहयोग प्रदान करें।

सेठ सोहनलालजी दूगड़

कलकत्ता में गोमाता एवं अन्य प्रकार की हिंसाएँ भयंकर रूप में चलती हैं और उसका उत्तरदायित्व कलकत्ता के लोगों पर है। यदि वे इससे त्राण का मार्ग नहीं अपनाते हैं, तो यह महापाप समस्त मानव जाति को खा जायगा। अहिंसा शोधपीठ की योजना के पीछे ऐसी हिंसाओं को दूर करने का मार्ग छिपा है। यह काम किसी एक का नहीं है। सभी को मिलकर सामूहिक रूप से दिल खोलकर काम करने की आवश्यकता है।

युग की माँग

●

सेठ अचल सिंह

आज के समय की माँग अहिंसा है। दुनिया की तमाम शक्तियाँ आज अहिंसा चाहती हैं, पर उनकी अहिंसा मनुष्य तक ही सीमित है। हम भारतवासियों की अहिंसा मनुष्य से भी आगे पशु, कीट, पतंग आदि तक है। खासकर हमारे जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि धर्मों में अहिंसा के सिद्धांत बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। आज का संसार उसका उपयोग नहीं कर रहा है। उससे वह दूर होता जा रहा है। मुनिजी ने यह योजना प्रस्तुत की है कि किस प्रकार अहिंसा को राज-काज, समाज, रा ष्ट्र आदि के कार्यों एवं व्यवहारों में लाया जा सकता है। भगवान महावीर ने मन, वचन एवं काया से हिंसा के होने की बातें बतायी है।

सेठ गोविन्ददासजी की योजनानुसार कार्य हो रहा है। कलकत्ता में विश्वधर्म-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन का आयोजन प्रसन्नता की बात है। इस महानगरी का हर दृष्टि से एक विशेष महत्त्व है और यह एक राष्ट्र का प्रमुख केन्द्र है। मुझे ऐसा विश्वास है कि कलकत्ता के निवासी एक ऐसी योजना बनायेंगे, जिससे विचारोंका प्रसार देशमें ही नहीं, अपितु विदेशों में भी होगा और वह सारे संसार को अहिंसा एवं शाकाहार के पथ पर लाने में सफल हो सकेगा।

१९५७ में विश्व शाकाहार-सम्मेलन के जलसों का आयोजन दिल्ली, बम्बई, पटना एवं कलकत्ता में हुआ। यह आज समय की माँग है और उसे आगे बढ़ाना आवश्यक है। आशा करता हूँ कि कलकत्ता के निवासी इसमें उचित रूप से हाथ बटायेंगे और कार्य को आगे बढ़ायेंगे। इस योजना को प्रधान मन्त्री नेहरू आदि का भी समर्थन प्राप्त है और भला ऐसी उपयोगी, अत्यावश्यक और व्यावहारिक योजना को किसका समर्थन प्राप्त नहीं होगा। यह कार्य यदि अच्छी तरह चला तो देश, समाज, राष्ट्र एवं सारे विश्व की उन्नति होगी। सभी कार्यों के लिए सरकार पर ही निर्भर रहना उचित नहीं है। जिस प्रकार स्कूलों में कुछ काम सरकारी और उनसे भी अधिक गैर सरकारी प्रबन्ध से चलते हैं, उसी प्रकार अहिंसा विश्वविद्यालय की भी गैर सरकारी ढंग से स्थापना किया जाना विशेष महत्त्व रखता है और ऐसी संस्था की आज बहुत बड़ी आवश्यकता है। मैं आशा करता हूँ कि इसमें सभी लोगों का सहयोग प्राप्त होगा। ●

दृढ़ होकर आगे बढ़ें

सेठ आनन्दराजजी सुराणा

दुनिया में धर्म एक अमूल्य रत्न है। वह मनुष्य को मनुष्य बनाये रखता है और उस पथ पर आगे बढ़ाता है। परन्तु आज पता नहीं-धर्म कहाँ जा छिपा है, लोगों में उसका क्यों अभाव हो गया है, क्यों उससे वितृष्णा हो गयी है, क्यों अधर्म धीरे-धीरे बढ़ता आ रहा है?

अपनी शिक्षा-प्रणाली में धर्म की पढ़ाई का नहीं होना ही ऐसी परिस्थितियों के निर्माण का कारण है। अनेक विश्वविद्यालयों को बन्द करना पड़ा है और आये दिन अनेक उच्छृंखल घटनाओं का समाचार मिलता रहता है। सरकार के द्वारा भी मॉरल एवं स्पिरिचुअल (नैतिक एवं आध्यात्मिक) शिक्षा के सम्बन्ध में एक समिति का गठन किया गया है। पर कहीं ऐसा नहीं हो कि उसकी पढ़ाई का विभाग पूर्ण रूप से अलग पड़ जाय। जरूरत इस बात की है कि सामान्य शिक्षा में ही उसका समावेश हो।

सेठ आनन्दराजजी सुराणा

जमाने की माँग को देखते हुए मुनिजी महाराज ने बम्बई, उज्जैन, भीलवाड़ा में सर्वधर्म-सम्मेलनों का आयोजन किया। दिल्ली में जब वे आये तो हम लोगों को विश्वास नहीं था, पर यह उनके ही धुन की बात थी कि वह केवल हुआ ही नहीं बल्कि अत्यन्त सफल रहा। जिस पर प्रधान मन्त्री नेहरू भी आश्चर्य करते थे। आपकी यह विशेषता है कि आप धुन के पक्के हैं और जिस पर आपका मन डट जाता है, उसे पूरा करके ही रहते हैं। आपने बम्बई में हिंसा को बन्द कराने में एक महत्त्वपूर्ण काम किया, गुड़गाँव के माता के मन्दिर में हिंसा को बन्द कराया। दिल्ली का सम्मेलन हजारों वर्षों में अपने ढंगका एक ही है और जिसके कारण नेहरूजी को कहना पड़ा कि–"मुनिजी इज ए गुड मैन, गुड साधु ऐण्ड गुड ऑर्गनाइजर"-अर्थात् मुनिजी एक भद्र मानव, एक सच्चे साधु तथा एक सफल संगठक हैं। यह एक अजीब बात थी कि लाल किला, जो कभी किसी आम जनता के समारोह के लिए प्राप्त नहीं होता था, वह भी मिला। उक्त सम्मेलन में उसके कार्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मुनिजी महाराज की इच्छा हुई कि अहिंसा शोधपीठ एवं अहिंसा-विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय। यदि जमीन मिल जाय तो शोधपीठ का कार्य प्रारम्भ हो जाय। दिल्ली में काम करने वाले बहुत हैं और उसमें तीन मूर्ति जो यहीं हैं—सेठ अचल सिंहजी, सेठ गोविन्ददासजी

और सन्त कृपाल सिंहजी महाराज और उनके अतिरिक्त सर्व श्री काकासाहब कालेलकर, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति आदि का सहयोग प्राप्त है। उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की इसमें पूर्ण दिलचस्पी है और इस सम्बन्ध में सदा हम लोगों से पूछताछ करते रहते हैं। गत बार उन्होंने पूछा तो उन्हें पूरे दो साल की अवधि की गतिविधियों से परिचित कराया गया। एक आदमी ने एक दिन ठीक ही कहा कि मुनिजी आपको एक ऐसे सिद्ध मिल गये हैं कि कहा नहीं जा सकता, पर आप लोग उनका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में राष्ट्रपतिजी ने कहा कि संसार में हजारों विश्वविद्यालय हैं, पर यह अपने ढंग का एक ही और अनूठा होगा। हम सब अभी इसकी कीमत वास्तव में समझ नहीं रहे हैं। आज चारों ओर हिंसा का जो दौर है, उसे वे किस प्रकार जान सकते हैं, जो आराम से अपने घरों में पड़े हैं या मोटरों में ही घूम कर संतोष कर लेते हैं। इस विश्वविद्यालय में दवाओं का भी अनुसंधान होगा तथा सर्वांगीण चारित्रिक निर्माण होगा। आवश्यकता इस बात की है कि जो लोग अहिंसा में विश्वास करते हैं, श्रद्धा रखते हैं या उसके अनुरूप जीवन-यापन करते हैं, वे यदि समय रहते नहीं चेते और हिंसा इसी प्रकार अबाध गति से चलती रही, जिस प्रकार वह अभी चल रही है तो वे भी उसमें घसीटे जायेंगे और उससे बच नहीं सकेंगे। इसलिए अब चहारदीवारी के अन्दर बैठकर बातें करने का समय नहीं है। अब हम, आपको उसी प्रकार मैदान में आकर काम करना है जिस प्रकार मुनिजी महाराज काम कर रहे हैं और तभी हिंसा पर अहिंसा की फतह होगी, नहीं तो पता नहीं कि क्या होगा?

श्री मूलचन्दजी जैन, संसद्-सदस्य

आज दुनिया में दो बड़ी विचारधाराएँ हैं—एक अभी काफी बड़ी दीखती है और जिस ओर संसार के बहुतों लोगों का ध्यान है, वह साम्यवाद या कम्युनिज्म है और दूसरी है, अहिंसा। आप सभी जानते हैं और मैं समझता हूँ कि वैसे तो आप बहुत दिनों से 'अहिंसा परमो धर्मः' सुनते आये हैं पर उस ओर हमारे देश भारतवर्ष के और संसार के अन्य देशों के लोगों का ध्यान तब खिंचा, जब उसे आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने रखा। जब उसके माध्यम से सैंकड़ों वर्षों से जकड़ी गुलामी की एक बहुत बड़ी समस्या को सुलझाया जा सका, तो सभी का ध्यान उस ओर गया। अहिंसा अब तक किताबों या मुनिजी महाराजों या उन सरीखे लोगों के व्यक्तिगत जीवन में ही सीमित रही। लोगों में वह भावना विद्यमान जरूर थी, पर जन-साधारण उस ओर तब खिंचा, जब भारत की आजादी की समस्या जो हमारे दुनिया की एक बहुत बड़ी समस्या थी, अहिंसा के माध्यम से हल की जा सकी। कम्युनिज्म जो समस्याओं का हल अपने ढंग से करता है और यह नहीं भूलें कि उसकी ओर दुनिया की जनसंख्या की एक बहुत भारी तायदाद—चीन की ५५ करोड़ आबादी, रूस की आबादी एवं अन्य देशों के लोगों में खिंचाव है। पर यह देखकर कि भारत दुनिया की बड़ी समस्या को अहिंसा से हल कर सकता है, सारी दुनिया की आँखें भारत की ओर लगी हैं। आज कलकत्ता के श्रीमन्त लोग इस बात को नहीं भूलें कि जब वे आराम का जीवन बिताते रहते हैं, कम्युनिज्म-विचारधारा

भूख का इलाज अन्य रास्ते से प्रस्तुत कर सकती है। आज संसार के अनेक देश भारत की सहायता कर रहे हैं करने की इच्छा रखते हैं—इसी आशा से कि भारत कम्युनिज्म के खतरे को रोक सकता है। मैं यह नहीं कहता कि वह कम्युनिज्म को रोक सकता है या नहीं। चूंकि वह भी एक सिद्धान्त के रूप में आया है। अब सोचना यह है कि इन दोनों मार्गों में कौनसा मार्ग ठीक एवं श्रेय है। वह बेहतर है या नहीं, हम उसे अपने अमल से सिद्ध कर सकते हैं। भारत में एक इन्क्लाब हुआ, जब भारत गुलाम था, जिसने उस समस्या को अहिंसा के ढंग से सुलझाया।

आज एक प्रश्न है कि समानता के सवाल को हम कम्युनिज्म से हल कर सकते हैं या अहिंसा से? मेरा विश्वास है कि गरीबी, भूख आदि की समस्याओं को अहिंसा से हल किया जा सकता है पर उसके लिए बहुत खोज, शोध एवं प्रयत्न की जरूरत है। यह एक अतीव प्रसन्नता की बात है कि हमारे मुनिजी—जो मेरा तजुरबा है कि अब तक साधु-सन्त, मुनि आदि व्यक्तिगत रूप से मन्दिरों, गुरुद्वारों, स्थानकों आदि में अपनी साधना करते रहे और अपनी व्यक्तिगत आत्मा की शांति चाहते रहे तथा सामाजिक मामलों मे बहुत कम हिस्सा लेते रहे—उन्होंने उस दायरे से समाज-कल्याण के बहुत बड़े दायरे में आकर मार्ग-दर्शन किया है और मेरा विचार है कि यह अहिंसा-संघ तथा अहिंसा शोधपीठ एक महान कार्य सिद्ध होगा। वह एक ऐसी संस्था बनेगी, जिससे दुनिया में एक महान कार्य होगा। कम्युनिज्म एक कौमी ताकत है। वह भी एक तरीका है। उसके मुकाबले में अहिंसा के तरीके से समाज-रचना एक बड़ी चीज तथा एक व्यापक काम है। हम अहिंसा-कोष की रचना का जो काम कर रहे हैं वह इस दृष्टि से एक महान कार्य होगा। अहिंसा-विश्वविद्यालय के माध्यम से हम नए तरीके से समाज की रचना करना चाहते हैं जिसके लिए शिक्षा में संस्कार लाना होगा, विचार में परिवर्तन लाना होगा और यदि इस तरह हम दुनिया को मार्ग दिखाना चाहते हैं, तो इसे करना होगा। सही माने में जिस प्रकार भारत प्राचीन काल में सभी देशों में अगुआ कहलाता था और सिरताज समझा जाता था, आज भी इस मार्ग से कहला सकता है, यह रास्ता कठिन जरूर है।

यह विश्वास है कि विश्व अहिंसा-संघ जिस कार्य को लेकर चला है वह आगे बढ़ेगा और उससे देश एवं विश्व का कल्याण होगा।

हम सब एक हैं

●

मुनि श्री जयन्ति लालजी महाराज

प्रथम दृष्टि में यह विश्वधर्म-सम्मेलन ऐसा प्रतीत होता है कि सभी की मान्यताएँ अलग-अलग हैं, दृष्टिकोण अलग हैं तो इस प्रकार परस्पर विरोधी आचारों, मान्यताओं के रहते वे किस प्रकार से मिल सकते हैं और इस सम्मेलन का किस प्रकार से लाभ हो सकता है, पर केवल ऐसा कहने से काम नहीं चलेगा। यह तो अपूर्ण ज्ञान का द्योतक है कि धर्मों मे मतभेद है। इसका अर्थ यही है कि धर्म के दार्शनिक ज्ञान का अभाव है। यदि प्रथम दृष्टि में आप किसी वृक्ष को देखें तो उसकी पत्तियाँ एवं उसकी शाखाएँ सभी परस्पर एक-दूसरे से पृथक दिखलाई पड़ेंगी, पर जब उसके मूल, या जड़ को देखेंगे तो उनमे एकता का अनुभव होगा। ऐसी बात नहीं है कि

युग की आवश्यकता को देखकर धर्मों में जबरदस्ती से हम एकता लाने का प्रयास कर रहे हैं। एकता तो वास्तविक रूप से सभी धर्मों में है ही। दार्शनिक, शास्त्रीय एवं आध्यात्मिक एकता इसके आधार हैं।

अब तक अमुक समाज एवं अमुक धर्म की जय के नारे सुनने को मिलते थे! आज सभी धर्मों की जय का एक नवीन नारा सुनने को मिला। सड़क पर जो पुलिस आदि लोग थे, वे सभी के सभी उस ओर आकृष्ट होकर देखने लगे। यह सम्भव है कि उनमें विभिन्न धर्मों के अनुयायी हों। पर यदि किसी धर्म विशेष का नाम लेकर जय मनायी जाती तो उस धर्म के जितने अनुयायी होते उन्हें तो प्रसन्नता होती और उनका ध्यान आकृष्ट होता पर दूसरों को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं होती, परन्तु इस एक नारे ने सभी के मन को अपनी ओर मोड़ा। किसी के मन में किसी प्रकार के विरोध की भावना नहीं आयी और सभी प्रसन्न हुए।

कर्तव्य-बोध

●

प्रश्न उठता है कि धर्मवाले लड़कर क्या करेंगे? उससे क्या लाभ है? यदि कोई नास्तिक से पूछे तो वह भी बुराई, पाप आदि को मानता है और उसे बुरा समझता है। फिर आप ही सोचें कि उसे रोकने के लिए कुछ करना होगा या नहीं? अभी कुछ लोगों ने मास-मछली खाने वालों के बारे में कहा। पर वे उतने बुरे नहीं हैं जितने वे, जो नहीं खाते हैं। वे तो बचपन से अधिकतर इसलिए खाते हैं कि उनका जन्म वैसे परिवारों में हुआ। पर प्रश्न यह है कि जो नहीं खाते है, उन लोगों ने उनकी कितनी सेवाएँ की और उन्हें उससे मुक्त करने के लिए कितना प्रयास किया। हम सभी को मिल-कर इस अधर्म को रोकने का प्रयास करने की आवश्यकता है। सभी धर्मवालों का यह कर्तव्य है कि जिसे वे पाप मानते है, उसके विरूद्ध एक मंच पर आकर एक मोर्चा कायम करें और जो उसे बुरा मानते हैं वे तो उसे अभी छोड़ने का निश्चय करें। ईश्वर है या नहीं आदि तात्विक विषयों को छोड़ें, वह तो चर्चा, विवाद, चिन्तन आदि का विषय है। पर सभी मानते हैं कि दूसरों की सहायता करना, सेवा करना अच्छा काम है। उस आधार से तो एक होकर प्रयास करना चाहिए। पाप को सभी मिल कर रोकें। धर्मवालों ने उसके लिए क्या किया? केवल भक्ति, पूजा आदि निश्चित रूप से पूर्ण नहीं है। आप सोचें कि सभी किसान यदि माला लेकर बैठ जायें तो अन्न की उपज कहाँ से हो और सभी लोग भूखे मरने लगें! इसी प्रकार जरूरत यह है कि सभी योगदान देकर अधर्म को रोकें। मुनिजी का यह मिशन बहुत ही उचित है। बुराई एवं अधर्म जो दुनिया में फैल रहा है, उसे रोकने एवं धोने की जरूरत है। एक कोई गली है, तो उसकी सफाई में बौद्ध, जैन, इसाई, सनातन, नास्तिक, आस्तिक सभी मिलते हैं, उसी तरह इन बुराइयों को दूर करने का यह विश्वधर्म-संगम एक अनुपम साधन है।

जब युधिष्ठिर महाराज ने भीष्म पितामह को जाकर कहा कि महाराज अब राज्य में कोई दुखी नहीं है, कोई दरिद्र नहीं है, सभी सुखी हैं, राज्य का विकास अच्छा हुआ है, तो उत्तर में उन्होंने कहा कि अर्थ-सम्पत्ति का होना अच्छा है, दरिद्र रहना बुरा है, पर इससे इस भ्रम में नहीं रहना कि सभी ठीक है। सत्य यह है कि अज्ञान के साथ और अधर्म से युक्त शक्ति बहुत खतरनाक है। अतः धर्म एवं अर्थ का समन्वय बहुत ही आवश्यक है। भगवान महावीर एक जगह में कहते हैं कि अर्थ एवं धर्म

का मेल होना चाहिए और धर्म के बदले यदि अर्थ अधर्म का शरण ग्रहण करता है तो महाविनाश को निमन्त्रण मिलता है। अर्थ से ज्ञान के लिये पुस्तक ली जा सकती है, दान दिया जा सकता है, किसी की सहायता की जा सकती है; पर उसी से सिनेमा, शराब आदि हर प्रकार के दुर्व्यसनों के चक्कर में भी फँसा जा सकता है। जो मनुष्य धर्म को नहीं समझते और श्रेय को छोड़ कर प्रेय में अपनी सम्पत्ति को लगाते हैं, वे संसार के नाश के कारण बन जाते हैं। अर्थ बुरा नहीं है, यदि सरल व्यवहार हो, सादा भोजन हो और धन का व्यय दूसरों की सहायता में होता हो, पर यदि एक करोड़पति पूर्ण नास्तिक हो और विलासी भी हो तो वह विनाश का कारण है। आज झगड़ा पूंजीवाद, पूँजीपति या धनवान और गरीब का नहीं है, वास्तव में झगड़ा धर्म एवं अधर्म का है और यही सारे संघर्षों के मूल में भी है। इस लिए जिसके पास जो भी धन-सम्पत्ति है, उसका व्यय वह धर्म के लिए करे नहीं तो उसका निज का अहित तो होगा ही, सारे संसार का नाश हो जायगा।

अहिंसा की उपासना के लिए आर्थिक सहयोग भी अहिंसा है। जो अधर्म का पोषण एवं पाप को बढ़ाने में अर्थ लगाते हैं, वह सभी अधर्म है। अतः उसके प्रसार को रोकने के मार्ग पर जो चलते हैं, उनका निज का भी कल्याण होता है और संसार का भी कल्याण होता है।

एक कहानी है कि एक सेठ के लड़के को, जो बिलकुल मूर्ख था कन्या पक्ष के लोग देखने आये, तो उसके अभिभावकों ने उसे अच्छे कपड़े पहना दिये और हाथ में एक बही देकर उसे उसके पन्नों को उलटते जाने के लिए कह दिया। उसे देखकर लड़की वाले पहले तो बहुत प्रभावित हुए कि लड़का बहुत पढ़ा और व्यापार-कुशल है, पर पन्नों को उलटते-उलटते जब लिखे पन्ने समाप्त हो गये और सादे पन्ने सामने आ गये तो उसने पूछा कि "क्या केवल लिखे पन्नों को ही उलटना है या सादे पन्नों को भी", तो लड़की वालों को उसकी विद्या-बुद्धि की पहचान हो गयी। इसी प्रकार आप केवल पन्ने ही नहीं उलटें, बल्कि आप में जो अनन्त शक्ति-सामर्थ्य है, उसका विकास एवं उचित उपयोग करें, जिसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है। आप अपनी शक्ति एवं क्षमता का सदुपयोग करें।

● ● ●

विश्व अहिंसा संघ के अधिवेशन में प्रस्तुत एक परिचय !

विश्व अहिंसा-संघ की स्थापना के बाद ही मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज ने उसके उद्देश्यों को क्रियात्मक रूप देने के लिए एक द्विसूत्रीय योजना बनायी, जो इस प्रकार है:

१—अहिंसा-शोधपीठ

२—अहिंसा विज्ञान-कोष का प्रकाशन

अहिंसा विज्ञान-कोष के प्रकाशन द्वारा अहिंसा के सार्वकालिक, सार्वदेशीय और सार्वभौम तत्त्व का एक सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विवेचन और अध्ययन प्रस्तुत कर मानवीय चिंतन और जीवन-प्रक्रिया को उसके दुःखी, संत्रस्त और विभ्रान्त वर्तमान के मध्य, एक नवीन और स्वस्थ गति और शुभ संकल्प देने का महान प्रयास है। इसीलिए यह विचार है कि अहिंसा विज्ञान-कोष एक युगान्तरकारी प्रकाशन ही नहीं, वरन् मानव-इतिहास और साहित्य में संकलित इस चिरन्तन सत्य का एक सम्यक् और शाश्वत विश्लेषण भी हो, जो जीवन की आचारात्मक और विचारात्मक दोनों भूमिकाओं में अहिंसा का मान्य, वैज्ञानिक और सम्यक् दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके। मुनिश्री की वर्षों की साधना, सत्संकल्पयुक्त साधु जीवन की तपस्या और चिन्तन ही अहिंसा विज्ञान-कोष की भूमिका है। इस कोष को सर्वाङ्गीण सम्पूर्ण करने के लिए, सामयिक और शाश्वत दोनों महत्त्वों से परिपूरित करने के लिए इसे विश्व-कोष प्रणाली पर प्रकाशित किया जा रहा है, जिससे जीवन की समस्त पीठिकाओं के समवाय में इतिहास, साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, चिकित्सा, समाज-शास्त्र, नृवंश-शास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञान की समस्त परिधियों और प्रणालियों में अहिंसा का ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और वैज्ञानिक विकास और स्वरूप परिलब्ध ही नहीं, वरन् सर्वोपरि सिद्ध भी हो सके।

"अहिंसा विज्ञान-कोष" नाम ही उसके उद्देश्य और प्रयोजन का परिचय है। अहिंसा-हिंसा का निषेध ही नहीं है, परन्तु जीवन कल्याण की एक स्थिर और सुदृढ़ आधारशिला भी है; जिसका क्षेत्र उतना ही व्यापक और गहरा है, जितना मनुष्य का जीवन। अहिंसा केवल धार्मिक आचार और दार्शनिक विचार तक ही सीमित नहीं है—न यह एक असंभाव्य परिकल्पना ही है, जिसका व्यवहार और प्रयोग संदिग्ध और असंभव हो। अहिंसा मानव-जीवन की हर क्रिया-प्रक्रिया में सन्निहित है, समाहृत है। मानवता का शुभ चाहनेवाला कोई भी ऐसा विचारक, चिन्तक और दार्शनिक नहीं, जिसने अहिंसा के मूलभूत महत्त्व को स्वीकार नहीं किया हो। अहिंसा को केवल निषेधात्मक और जीव हिंसा के वर्जन तक सीमित समझना गहरा भ्रम ही नहीं, उसका एकाङ्गी विवेचन भी है।

भाव-हिंसा जीव-हिंसा से भी अधिक विपाक्त है, जो आत्मा के गुणों की ही हिंसा कर डालती है, जिसमें मनुष्य अपने आप ही जल कर भस्म हो जाता है। अहिंसा का यही व्यापक दृष्टिकोण आज अपेक्षित है।

यह असंतोष !

अपने अंतिम ग्रन्थ "माइन्ड इट दि एन्ड आफ इट्स टेद्र" में प्रसिद्ध विचारक और लेखक स्व० एच० जी० वेल्स ने कहा है—यदि आगामी पचास वर्षों में मानवीय जीवन का दृष्टिकोण आमूल नहीं बदल जायगा, तो मनुष्य का विनाश निश्चित है। यही प्रश्न उठता है कि यह आमूल परिवर्तन कहाँ और किस प्रकार हो? भौतिक और आर्थिक उन्नति के पीछे उन्मत्त आज का मनुष्य क्या अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी नहीं मार रहा है? क्या अंधी और खोखली वैज्ञानिक उन्नति के अन्तराल में हमारे सर्वव्यापी विनाश के चिह्न नहीं दिखाई पड़ रहे हैं? क्या कारण है कि जीवन के अन्तिम समय में प्रसिद्ध वैज्ञानिक नोबल के मन में अपने आविष्कारों के ही प्रति एक सहज घृणा उत्पन्न हो गयी और उसने उनसे अर्जित अपार धन-राशि को मानवता के हित और विकास के लिए दान कर दिया? क्या कारण है कि आइन्सटाइन को यह कहना पड़ा—काश, मैं एक वैज्ञानिक न होकर और कुछ होता—आज मानवता की रीढ़ ही टूट गई है! यह एक वैज्ञानिक का नहीं मनुष्य का असन्तोष है, जिसमें उसका पतन ही नहीं, विनाश भी स्पष्ट है। युद्ध, विनाश, असंयम, अधिकार और लिप्सा का हल कहाँ है? इस प्रश्न का ही उत्तर अहिंसा विज्ञान-कोष की परिकल्पना है। सच तो यह है कि आज का प्रत्येक वैज्ञानिक और चिन्तक सही विश्लेषण में इसी परिणाम पर पहुँचा है कि आचार और विचार की, व्यक्ति और समाज की, कर्तव्य और अधिकार की, धर्म, दर्शन और विज्ञान की संतुलित एकता ही मनुष्य को भावी विनाश के गर्त्त से बचा सकती है। आज का वैज्ञानिक अपने ज्ञान पर नहीं, अज्ञान पर आश्चर्य कर रहा है। ल्योपोल्ड इन्फील्ड के शब्दों में "हम लोग आज यह सोच रहे हैं कि हमारे अज्ञान की सीमा और उसका विस्तार कितना बड़ा है!" इसीलिए आज के वैज्ञानिक को यह मानना पड़ा है कि दर्शन और विज्ञान का क्षेत्र अब भिन्न और अलग न होकर एक हो। इसीलिये अहिंसा विज्ञान-कोष, अहिंसा के दर्शन और विज्ञान का समीकरण हो—ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है।

भारतीय विचार धारा में अहिंसा का निरूपण विभिन्न धर्मों और दर्शनों में उपलब्ध होता है, उसे एक प्रकार से दार्शनिक विज्ञान या वैज्ञानिक दर्शन कह सकते हैं। वैदिक काल से बुद्ध, महावीर और गांधी एवं श्री अरविन्द तक अहिंसा के यही स्वरूप विवेचित हैं। वैदिक ऋषि ने आदेश दिया था :

"मा हिंस्यात् सर्व भूतानि" (ऋग्वेद)

महर्षि व्यास ने अहिंसा को ही परम धर्म माना।

वामन पुराण ने अहिंसा को धर्म की पत्नी बताया। मनु ने धर्म के दस लक्षणों में अहिंसा को प्रधानता दी। बृहत् स्वयंभू स्तोत्र में उसे परब्रह्म के ही रूप में स्वीकार किया :

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्।

भागवत, शैव, तन्त्र, योगादि सभी मतों में अहिंसा आचार और विचार की दृष्टि से श्रेष्ठतम ठहरायी गयी है। श्रमण-संस्कृति का तो प्राणतत्त्व ही अहिंसा है। भगवान महावीर ने इसे 'भगवती' की संज्ञा दी है।

भारतीय ही क्यों ? प्रत्येक धर्म में ईसाई, इस्लाम, यहूदी, पूर्वी-पश्चिमी सभी मतों में किसी-न-किसी रूप में अहिंसा को ही जीवन की मूल भित्ति माना है। सच तो यह है कि प्रत्येक धर्म और दर्शन अहिंसा महानदी के तीर पर ही हरा-भरा होता है :

दया नदी महातीरे सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुरा

महात्मा गांधी ने अहिंसा का राजनीति और समाज-कल्याण के क्षेत्र में सफल प्रयोग कर, उसकी अन्तर्निहित शक्तिमत्ता का एक नया स्वरूप विश्व के समक्ष रखा। बुद्ध, महावीर की परम्परा में गांधीजी ने एक स्वस्थ और नयी शृंखला जोड़ी।

अहिंसा के इस विशेष, सम्यक् और चातुर्दिक ज्ञान का परिचय हो और प्रचार हो, यही अहिंसा विज्ञान कोष का मूल उद्देश्य है।

अहिंसा विज्ञान-कोष के सम्पादक देश-विदेश के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इसके प्रत्येक भाग का सम्पादन उस भाग के विशेष अधिकारी पंडितों द्वारा होगा। प्रत्येक लेख अपने में पूर्ण शोधकार्य होगा। निश्चित है, ऐसा महान यज्ञ और सत्संकल्पों से पूर्ण अधिष्ठान सबके सहयोग और समर्थनी की अपेक्षा रखता है। इसकी पूर्णता में अनेक वर्ष लग सकते हैं। पर धैर्य और अथक परिश्रम ही इसकी पहली मांग है।

अहिंसा विज्ञान कोष के प्रस्तावित भाग

१. अहिंसा और धर्म : (क) भारतीय (ख) अन्य

२. अहिंसा और दर्शन : (क) भारतीय (ख) अन्य

३. मानव-संस्कृति, सभ्यता और अहिंसा

४. (क) अहिंसा और प्रकृति,

(ख) अहिंसा और विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ

(ग) अहिंसा और भौतिक विज्ञान

(घ) अहिंसा और विभिन्न शास्त्र,

(क) नृतत्त्वशास्त्र

(ख) अर्थशास्त्र

(ग) राजनीतिशास्त्र

(घ) मनोविज्ञान, नीति-शास्त्र

(ङ) समाजशास्त्र

(च) इतिहास-शास्त्र

(ङ) अहिंसा और साहित्य एवं ललित कलाएँ

(अ) अहिंसा का भाषा विज्ञानात्मक अध्यापन

(ब) मानवतावाद और अहिंसा

(स) प्रकृति और अहिंसा

(च) परिशिष्ट

(अ) विश्व के प्रमुख विचारक और अहिंसा

(ब) अहिंसा के पर्याय और उनका विवेचन ● ● ●

मुनिश्री सुशीलकुमारजी :

आज अहिंसा-संघ के इस अधिवेशन में उपस्थित होने के लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ और इस बात की खुशी मानता हूँ कि आपमें से इतने अधिक विचारक और साधक यहाँ पर उपस्थित हैं। आज से दो वर्ष पहले अहिंसा-संघ की स्थापना हुई थी और आज हम फिर इस संघ की कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए इकट्ठे हुए हैं। इन दो वर्षों के अन्दर हम विशेष प्रगति नहीं कर सके हैं, सिर्फ इसके बारे में अपने दिमाग का ढाँचा कुछ साफ किया है। अब हम एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये हैं, जब कि हमें इसके बारे में कुछ ठोस कार्य आरंभ करना चाहिए।

'अहिंसा' शब्द का पहले अनेक तरह से अर्थ किया गया है और कुछ लोगों के द्वारा यह भी विचार किया गया है कि यह निषेधात्मक शब्द है। ऐसा सोचना मेरे विचार से गलत होगा, क्योंकि अहिंसा से अधिक क्रियात्मक एवं रचनात्मक दूसरे शब्द जल्द ही मिलने सम्भव नहीं हैं। जिस शब्द की भावना से दूसरे का नुकसान न करने का भाव ही व्यक्त न हो, बल्कि संसार के हरएक प्राणी से पूर्णतः मैत्री-संबंध स्थापित रखने का भाव व्यक्त हुआ हो, उससे और अधिक रच-नात्मक शब्द क्या हो सकता है? इस तरह हमें अपने मन से यह वहम निकाल देना चाहिए कि 'अहिंसा' शब्द का अर्थ निषेधात्मक है एवं इसलिए इसकी नींव कमजोर है। अहिंसा शब्द के अन्दर दया, प्रेम, सह-अनुभूति, बन्धुभाव एवं मैत्री इन सभी शब्दों के द्वारा व्यक्त होनेवाले भावों को शामिल किया गया है और यह शब्द हमेशा से सभी धर्मों के अन्तर्गत मूल भावना का परि-चायक है। अहिंसा निषेधात्मक शब्द इस माने में अवश्य है कि वह संघर्ष, घृणा, ईर्ष्या, क्रूरता एवं कुटिलता के भावों का परित्याग करने की आज्ञा देता है। उच्चतर धार्मिक पहलुओं का विचार करते समय यह भी मालूम होता है कि अहिंसा शब्द के अन्दर अहंकार, परिग्रह, मद एवं महत्वाकांक्षा के भी परित्याग का विधान है। हम यह देखते हैं कि अहिंसा शब्द बहुत ही व्यापक है और पूर्ण अहिंसा को ग्रहण करना बहुत ही दुश्कर कार्य है। लेकिन अगर आदमी इतने ऊँचे आदर्शों को सामने रखकर चले, तो व्यावहारिक रूप से अहिंसा का भी ऐसा उत्कृष्ट रूप निकल सकता है, जिससे मनुष्य का नैतिक उत्थान तो होगा ही, साथ ही साथ सामाजिक संतुलन कायम रखने में भी बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। इसी व्यावहारिक आदर्श के बल पर धर्मों के अनेक तरह के उपदेश हैं और जितनी भी सभ्यताएँ संसार में हुई हैं, उन्होंने तमाम रूपों से इस व्यावहारिक रूप को प्रधानता देने की बहुत कोशिश की है। इसी तरह व्यावहारिक रूप में भी जनजीवन में सभ्यताओं को ही ऊँचा स्थान दिया है। पुरातन काल में अहिंसा के इन उपदेशों को जनजीवन में समय-समय पर बहुत अधिक स्थान मिला और समाज के अन्दर एक ऐसा सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ, जिसको देखकर दर्शक मुग्ध हो गया। इसके इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं। हमारे भारतवर्ष में भी ऐसे समाज समय-समय पर देखने को मिलते हैं, जिनमें अहिंसा के सिद्धान्तों को बहुत ही प्रमुख स्थान मिला है।

मेगस्थनीज, फाहियान, ह्वेनसांग, मार्कोपोलो, अलबरूनी व इब्नबतूता जैसे अनेक पर्यटकों

ने यहाँ के समाज का जो खाका खींचा है, उससे मालूम पड़ता है कि हिन्दुस्तान, उस जमाने में अहिंसा के व्यावहारिक रूप को अपने साधारण जीवन में ढाल चुका था। ये यात्री इस बात का बराबर उद्घोष करते हैं कि इस देश में चोरी नहीं होती थी, लोगों की बात का बड़ा विश्वास रहता था, जानवरों को बड़े प्यार से रखा जाता था, कोई आदमी मांस, मछली व अंडा नहीं खाता था, कानूनी मुकदमे बहुत कम होते थे, विभिन्न धर्मों के मतानुयायियों को दूसरे धर्म के लोगों से बहुत प्रेम रहता था, राजा-प्रजा की सुरक्षा का बहुत खयाल रखता था एवं प्रजा उसे अपने पितातुल्य मानती थी। विभिन्न जातियों में भी आपस में बहुत स्नेह रहता था और विदेशियों एवं अतिथियों को देवता स्वरूप आतिथ्य दिया जाता था। झूठ बोलने या धोखा देने की प्रवृत्ति बहुत कम थी, व्यापार में सचाई थी, सभी आदमी पाप करना बहुत ही बुरा समझते थे और सभी देशों में उप भोग्य सामान के दाम भी बहुत अधिक नहीं थे। यह सब अहिंसा का व्यावहारिक रूप था, जिसके कारण इस देश की सभ्यता बहुत ही ऊँचे स्थान तक पहुँच चुकी थी। भारत की तरह अन्य देशों में अहिंसा के अन्दर समय-समय पर परीक्षण हुए एवं अलग-अलग फिरकों ने अहिंसा को एक आदर्श के रूप में ढालने की चेष्टा की। ऐसे उदाहरण ग्रीस के सौमेटिक देशों में, ईरान में एवं चीन में समय-समय पर मिलते हैं। पाइथागोरस ने, प्लेटो ने ऐसे अहिंसक समाजों की स्थापना के लिए भगीरथ प्रयत्न, किये। इसी तरह ईरान में मजदक लोगों ने, राडीया असेन्स नाम के यहूदी फिरके ने, अमरीका में पिलग्रीम फादर्स ने, रूस में दुखोबार लोगों ने ऐसे ही समाज की स्थापना करने की चेष्टा की जिसमें अहिंसा के अनेक व्यावहारिक रूप सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग बन गये। अमरीका में जब योरप से लोग जा-जा करके बसे तब उन्होंने साम्यवादी या समाजवादी ढाँचे से अनेक संगठनों को जन्म दिया, जिनके अन्दर पूरा समाज एक इकाई की तरह काम करता था और समाज में हजारों आदमियों की जमात की जमात एक मशीन की तरह सहयोग का काम करती थी। चीन में कन्फ्यु-सियस के नेतृत्व में उस महान पुरुष के सिद्धान्त को जन जीवन में ढालने की लगातार कोशिश होती रही और यहाँ भी कई बार इस सिद्धान्त को जन जीवन में ढाला गया। इसी तरह आधुनिक जमाने में समाजवाद के उदय के साथ-साथ अनेक महापुरुषों ने कई देशों में समाजवादी ढंग के प्रयोग अपने-अपने समाज में किये और अनेक जगह सहयोगी, समाजवादी जमात को जन्म दिया। खेती के अन्दर, कल-कारखानों में, म्युनिस्पैल्टियों में, सहायक समितियों में, सहयोग के सिद्धान्त का अनेक रूपों से परीक्षण किया गया और अनेक उद्योगपतियों ने भी अपने मजदूरों को साझीदार की तरह बनाया। आज भी श्री ख्रुश्चेव यह दावे के साथ कहते हैं कि सोवियत रूस ने अपनी भौतिक उन्नति ही नहीं की, बल्कि एक नयी मानवतावादी संस्कृति को भी जन्म दिया है, जहाँ पर हरएक इन्सान को अपने गुणों के अनुसार विकसित होने का पूरा मौका मिलता है। हो सकता है कि इस सम्मेलन में उपस्थित होनेवाले अनेक महानुभाव श्री ख्रुश्चेव के इन दावों को स्वीकार न करें। फिर भी यह ध्रुव सत्य है कि आज रूस में रोटी का दाम नहीं लगता। हरएक आदमी जिसको जरूरत हो, पूरा भोजन कर सकता है, मुफ्त इलाज करा सकता है और अपने मुकदमों की मुफ्त पैरवी करा सकता है। ऐसी समाजवादी व्यवस्था केवल रसिया में ही नहीं बल्कि कठिन पूँजीवादियों में भी कल्याण राज्य को जन्म देने की भावना बढ़ रही है और गर्भवती औरतें, बच्चों, बुड्ढों, बेकारों, बीमारों, पागलों और अपराधियों के लिए भी आज पहले से अधिक सहानुभूति का परिचय दिया जाता है। आज के जमाने के नर्सरी माउन्टेसरी स्कूल, वृद्ध-अनाथालय, सुधारगृह, रेडक्रास एवं जेलें

समाज की इस बढ़ती हुई मानवीय भावना का परिचय देती हैं। अनेक पश्चिमी मुल्कों में आज शाकाहारी-आन्दोलन भी बढ़ रहे हैं।

क्रूरता का नया रूप

इससे इन बातों का अन्दाज मिलता है कि विश्व में अहिंसा के व्यावहारिक रूप को हर समय स्थान रहा है, अभी भी है और आगे भी रहेगा। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि विश्व में अहिंसा अपना उचित स्थान प्राप्त कर चुकी है। जैसे-जैसे एक तरफ क्रूरता को दूर करने का प्रयास किया जाता है, वैसे-वैसे दूसरी तरफ क्रूरता समाज पर हावी होती जा रही है और कई बार पहले से अधिक क्रूरता का रूप हो जाता है। जैसे हमने सती-प्रथा बन्द की, तो विधवाओं पर अत्याचार होने लगा और विधवाओं के प्रति सहानुभूति का बर्ताव करना शुरू किया तो व्यभिचार और भी बढ़ गया। इसी तरह योरोप में आदमी के गुलाम बनाने की प्रथा बन्द हुई तो साम्राज्यवाद को स्थान मिला और साम्राज्यवादी शक्तियों से पीड़ित जातियों ने संघर्ष करने की स्वतन्त्रता प्राप्त की, तब स्वयं पीड़ित जातियों ने दूसरी जातियों पर अपना साम्राज्यवाद फैलाना शुरू किया। अफ्रीका में योरोप के निवासियों ने वहां की जंगली जातियों के बीच आदमी को खाने की प्रथा बन्द की, तो वहाँ वर्ण विद्वेष का भयंकर रोग जारी है और आज दक्षिण अफ्रीका मे संसार में सबसे ज्यादा अछूत-प्रथा विद्यमान है। छोटी-छोटी जमातों में लड़ाई पैदा होने से बहुत से राष्ट्र बने तो बड़े राष्ट्रों की लड़ाई का जमाना और विध्वंस की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी।

इसी तरह जब कि हजारों, अरबों, करोड़ों बच्चों की मृत्यु को हमने कम किया तो संसार की बढ़ती हुई आबादी, व्यभिचार-लिप्सा के कारण हमने बच्चे को पैदा होने से पहले ही मारना शुरू कर दिया। इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ हमने एक तरफ की क्रूरता को दूर किया, वहाँ हमने दूसरी तरफ पहले से अधिक क्रूरताओं को जन्म भी दिया। इसका अर्थ यह है कि जहाँ हम समाज के अन्दर अहिंसा के व्यावहारिक रूप को कम कर रहे हैं, वहाँ दूसरे माने में हम क्रूरता के नये रूप को भी जन्म दे रहे हैं। क्रूरता आखिर में क्रूरता ही है—चाहे वह धार्मिक वातावरण में हो, चाहे प्रजा-तंत्र के वातावरण में हो, चाहे समाजवाद के वातवरण में हो। हमें इस बात को देखना है और इस बात के लिए वादा करना है कि हम क्रूरता को, चाहे वह किसी भी लिबास में छिपी हुई हो, दूर करने का पक्का प्रयत्न करेंगे। हम अशोक के मनोविवाद को बहुत बड़ा मानते हैं तो क्या उसी अशोक चक्र के नीचे हम, जिसको कि भारत सरकार ने अपना एक प्रतीक माना है, अपनी गायों, भैंसों, बकरियों, भेड़ों का कत्ल करने के लिए नये कसाई खाने खोलें? या क्या अपने मौज-मजा के लिए अपने होने वाले बच्चों को जन्म से पहले ही मार डालें या अपने बंदरों को कुछ डालरों के लोभ में अकल्पित यंत्रणाओं का शिकार होने के लिए अमरीका भेजें या बीमारी से छुटकारा पाने के तरीकों को ढूँढ़ने के लिए अपनी जमीन के प्राणियों को, खरगोशों, कबूतरों को मेडिकल कालेज के अन्दर रोज काटना शुरू करें? हमने सती-प्रथा, अछूत-प्रथा बंद करके जिस अहिंसक भावना को जन्म दिया है, उसको नये कारखाने खोल करके खत्म भी किया है। राजपूतों के अन्दर जन्म के समय

कन्याओं को मारने की जिस प्रथा को को लार्ड विलियम बैटिंक ने बंद किया था उसको आज हमारे सुधारकों ने फिर से शुरू कर दिया है, क्योंकि वे भोग-जीवन को ही जीवन का सबसे बड़ा आदर्श मानने लगे हैं। आज हम जंगली जानवरों के लिए जगह-जगह शरण-स्थल बना रहे हैं और पालतू जानवरों के लिए कई कत्लखाने खुल रहे हैं। क्या यही मानववाद और अहिंसा है? आज हम मिल्क पाउडर का आयात करते हैं और गोमांस का निर्यात करते हैं। क्या यही अर्थतंत्र है? आज हम गोबर को जलाते हैं और फैर्टिलाइजर का आयात करते हैं, क्या यही हमारा योजनाबद्ध विकास है? अहिंसा को हम कितना भी क्यों न मान लें तथा अशोक और गांधीजी की कितनी भी दुहाई दें हम अहिंसा के बजाय क्रूरता की ओर निश्चित रूप से बढ़ रहे हैं, यह ध्रुव सत्य है। क्रूरता के इस प्रकार में सरकारी हलकों, तथाकथित गांधीवादी सुधारकों और साम्यवादियों का बहुत बड़ा भाग है, इसमें संदेह नहीं। आज हम बुद्ध, महावीर की बात मानने के लिए तैयार नहीं हैं अरविन्द और विनोबा की बातें सुनने के लिए तैयार नहीं हैं, टालस्टाय और आइंस्टाइन की बातें सुनने के लिए तैयार नहीं हैं, तो फिर क्यों हम बराबर अहिंसा शब्द का सुबह, दोपहर और शाम, त्रिकाल संध्या के मंत्रों की तरह बराबर जप करते हैं? आजकल जब अहिंसा शब्द मुख से बाहर निकलता है, तो वह शब्द खो जाता है और उस जगह बदबू आने लगती है। उस शब्द के पीछे अगर कोई देवात्मा है तो उसकी आँख से आँसू निकलने लग जाते हैं। आधुनिक सुधारवादियों की ओर से मुझे विशेष निराशा है क्योंकि वे राष्ट्र और समाज का उत्थान करने को निकलते हैं और आर्थिक पैमाने पर मांसाहार और कुटिलता एवं व्यभिचार के द्वारा समाज को नीचे गिराते जा रहे हैं। गांधीजी की माँ ने गांधीजी को विलायत जाते समय उनसे मांस न खाने, मदिरा न पीने और व्यभिचार न करने आदि की तीन प्रतिज्ञाएँ करायी थी, जिसके लिए गांधीजी ने जन्म भर अपनी माँ का एहसान माना तथा आज जिन प्रतिज्ञाओं के निभाने से संसार में इतना नाम है। उनके उत्तराधिकारी इन प्रतिज्ञाओं के निभाने का कितना दावा कर सकते हैं, यह वे स्वयं ही सोचें। आइंस्टाइन ने यह कहा था कि भविष्य को संतति यह विश्वास न करेगी कि गांधीजी जैसे कोई आदमी इस संसार में हाड़-मांस के आवरण में पैदा हो सकते थे! आज उन्हीं गांधीजी के सिद्धान्तों को मानने वाले क्या करते हैं, किस तरह व्यभिचार को अपनाये हुए हैं, क्या यही गांधीवाद है, क्या यही मानव-वाद है, क्या यही अहिंसक समाज है?

आज के सम्मेलन में इस मानववाद के सिद्धान्त को, इस अहिंसा के सिद्धान्त को आगे बढ़ाने के लिए किस तरह कोशिश करें, इस बारे में विचारना है। हमें यह भूल जाना है कि भारत के पास या दुनिया के अन्य किसी भी देश के पास कोई विशेष संदेश है। दुनिया में अलग-अलग देशों के सामाजिक धरातल के अन्दर अलग-अलग विशेषताएँ है और अलग-अलग कमजोरियाँ हैं। हमें सभी देशों के गुणों को अपनाना है और अवगुणों को हटाना है। इस समन्वय के आधार पर हमें एक नये मानवीय सहयोगवादी समाज को जन्म देना है। इस समाज को बनाने के लिए हमें जहाँ से भी सहायता मिल सकती है, हमें लेना है और अपने कार्यक्रम निश्चित करने के बारे में एक सुदृढ़ विश्वव्यापी संगठन स्थापित करना है। अलग-अलग धर्मों, जातियों और देशों के दायरे आज छोटे होते जा रहे हैं और हमें अपने मानसिक क्षितिज को विश्वव्यापी माप तक बढ़ाना है। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि हमारी शक्ति कमजोर है।

● ● ●

और जो अथ से लेकर इति तक निरन्तर अपने व्यापार-धंधे की उपेक्षा करके भी सम्मेलन को सफल बनाने के लिए जुटे रहे।

रसिकलाल दाशी

भीखमचंद भंसाली

पृथ्वीराज जैन

मौजीराम शर्मा

माणिकचंद मिन्नी

चाहे कलकत्ता के हों या कहीं और के, सबने एक मन और एक प्राण से सम्मेलन को यशस्वी बनाने में योगदान किया

हरिश्चन्द्र जैन

अजयपाल कोठारी

हेमराज खजाची

लाला रामलाल

३ फरवरी, '६०

●

डा० रमा चौधरी (अध्यक्ष)

हम सभी मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज के बहुत ही आभारी हैं कि उन्होंने महती कृपा करके इस विश्वधर्म-सम्मेलन का सुन्दर अनुष्ठान किया है, जो आज की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। आधुनिक जगत् में विश्व-शान्ति की समस्या बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हम सभी एक विस्तृत एवं विनाशकारी महायुद्ध के, जिसकी स्मृति अभी भी मानस-पटल पर ताजी बनी है, निरंतर निकट जा रहे है। आज अभी तक भी वास्तविक एवं चिरस्थायी शान्ति के लिए हम कोई मार्ग नहीं ढूँढ पाये है। इसके ठीक विपरीत तृतीय विश्वयुद्ध एवं आणविक युद्ध की बातें की जा रही हैं, जिसके परिणाम की कल्पना से भी रोंगटे खड़े हो जाते है! इसलिए शीघ्रातिशीघ्र कुछ अवश्य किया जाना चाहिए, जिससे अवश्यंभावी विनाश से विश्व को बचाया जा सके। इसलिए सभी विचारवान लोगों तथा उन सभी लोगो, जो मानवमात्र की भलाई एवं विश्व-शान्ति की चिन्ता करते हैं, जो युद्धहीन भावी साम्राज्य का स्वप्न देखते हैं, जो दृष्टिकोण, उद्देश्य, लक्ष्य एवं नीति में आमूल परिवर्तन के इच्छुक है तथा विश्व-शान्ति के लिए जो नये मार्ग का निरूपण करना चाहते हैं, के लिए अब एक ही सर्वोत्तम मार्ग है—एक विश्व की भावना।

विश्व-शान्ति की समस्या आधुनिक विश्व की मूलभूत समस्याओं में सबसे बड़ी है; क्योंकि विज्ञान एवं यान्त्रिक प्रगतियों से तथा राजनीतिक नेताओं के आश्वासनों, अनाक्रमण-सन्धियों, निरस्त्रीकरण की चर्चाओं के बाद भी शान्ति एवं आनन्द लोगों की पहुँच से बहुत दूर है। इसके विपरीत विश्व के क्षितिज पर युद्ध की काली घटाएँ घनीभूत होती प्रतीत हो रही हैं। इसलिए इससे त्राण पाने का क्या उपाय है, यह एक मुख्य प्रश्न है।

विश्व-शान्ति एक विश्व की भावना की स्थापना से ही सम्भव है और एक विश्व के लक्ष्य की प्राप्ति विश्व-धर्म के द्वारा ही सम्भव है। विश्वधर्म विश्व अहिंसा के द्वारा प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार विश्व-शान्ति, एक विश्व, विश्वधर्म एवं अहिंसा ये मानव-संस्कृति एवं सभ्यता के चार स्तम्भ हैं।

सर्वप्रथम विश्व-शांति का अर्थ समस्त विश्व में सौख्य व आनन्द है। आनन्द की प्राप्ति शान्ति से और शान्ति की प्राप्ति ममत्व-मुक्ति से सम्भव है। इस प्रकार विश्व-शान्ति का एकमात्र उपाय और मार्ग स्वार्थहीनता, हृदय की विशालता, सार्वभौम प्रेम एवं सेवा है।

फिर विश्व-शान्ति के लिए एक विश्व या विश्व की एकता की स्थापना आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि सभी राष्ट्र एवं देशों का एक दूसरे में विलयन हो जाय, बल्कि सभी राष्ट्रों में अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करते हुए निकटतम एकता की स्थापना हो, इस प्रकार एक विश्व के रूप में विश्व की समस्त संस्कृतियों का एक सुन्दर एवं सौहार्दपूर्ण संगठन होगा।

तीसरी बात यह कि एक विश्व की सम्भावना के लिए विश्वधर्म आवश्यक है। वह विश्व-धर्म कर्मकाण्ड या बाहरी रीति-रिवाजों का धर्म नहीं होगा और न केवल धर्मों का दर्शन मात्र होगा, क्योंकि इनके माध्यम से एकता कभी सम्भव नहीं है। इसलिए यह निश्चित है कि यह मानव धर्म होगा, जिसमें मानव मात्र से प्रेम, मानवता की सेवा एवं मानवता की पूजा होगी।

चौथी, बात यह है कि यह विश्वधर्म विश्व-अहिंसा के सिवा कुछ नहीं है। अहिंसा का निषे-धात्मक रूप है किसीको दुख नहीं पहुँचाना और उसका विधेयात्मक अर्थ है, अपने जीवन का मोह छोड़कर दूसरों की सेवा करना। इस प्रकार विश्व-व्यापी प्रेम एवं सेवा, बन्धुत्व एवं मित्रता, विश्वप्रीति, विश्व-मैत्री, विश्व-शान्ति के लिए अहिंसा एक सर्वोत्तम आदर्श है।

नारी का स्थान

●

इन उपर्युक्त योजनाओं में नारियों का क्या विशेष योगदान हो सकता है? स्त्री-समुदाय स्वभाव से ही इन कार्यों के लिए बहुत ही ठीक बैठती हैं, क्योंकि स्त्रियाँ स्वभाव से माँ होती हैं। इसका अर्थ शारीरिक मातृत्व से नहीं है, क्योंकि उस दृष्टि से तो कीड़े-मकोड़े भी माँ होते हैं। परन्तु माँ शब्द से मतलब आध्यात्मिक मातृत्व से है, जिसके अनुसार विवाहित या अविवाहित, बच्चेवाली या बिना बच्चे वाली, सभी स्त्रियाँ माँ हैं। माँ अहिंसा, शान्ति, एकता व धर्म की जीवित प्रतीक होती है। अपने विशिष्ट माधुर्य से, कोमलता से, धैर्य, सहनशीलता, क्षमाशीलता के कारण यह नारी ही है, जो परिवार में शान्ति बनाये रखती है, उसे एक इकाई के रूप में संगठित, स्वस्थ एवं प्रसन्न रखती है।

स्त्रियों का जो विशेष महत्व एक परिवार में है, वही बड़े पैमाने पर विश्व-परिवार में भी है, उससे तनिक भी कम नहीं, क्योंकि परिवारों से राष्ट्र, और राष्ट्रों से विश्व का निर्माण होता है। इसलिए स्त्रियाँ यदि अपने-अपने परिवारों में शान्ति, आनन्द, एकता, सौहाद, प्रेम एवं सहयोग बनाये रख सकती हैं, तो विश्व में भी रख सकती हैं, जो एक विस्तृत रूप मे मानव मात्र का परिवार है, उसमें भी रख सकती हैं।

इसलिए हम नारियो को आज फिर से यह संकल्प करना है कि हम जीवन के इस सुन्दर एवं महान लक्ष्य को पूरा करें और विश्व-प्रेम एवं सेवा के सन्देश को प्रसारित करें, जो कि भारत का सदा से सन्देश रहा है। ● ● ●

श्रीमती सुशीला सिंघी

समस्त विश्व में धर्म एक ही है और उसके माध्यम से ही समस्त विश्व की एक इकाई बन सकती है। अहिंसा एवं सभ्यता एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित है। वास्तव में भय एवं क्रोध मनुष्य एवं मानवता के शत्रु हैं। इन दुश्मनों को यदि अपने जीवन में स्थान देंगे, तो स्थिति बिलकुल भिन्न होगी। यदि हम अपने आपको बुराइयों से बचाते रहें या बचने की कोशिश करते रहें तथा दूसरों की भावनाओं, अधिकारों आदि का खयाल रखें, तो वही विश्वधर्म कहलायेगा। सभी धर्मों के बाहरी आचार-व्यवहार देश काल आदि की भिन्नता से अलग अलग हैं, पर उनमें वास्तविक धर्म नहीं होता। उनके अन्तर के कारण वास्तविक धर्म को नहीं समझने के फलस्वरूप परस्पर वैमनस्य का विकास होता है। पर मानव-धर्म में बाह्य भेद-भाव गौण हो जाते हैं।

मानव विशेषज्ञों के अनुसार मनुष्य परमात्मा की सबसे बड़ी कृति है और सबसे बड़ा धर्म मानवता के प्रति प्रेम एवं मानव मात्र के प्रति सहानुभूति, मित्रता एवं भ्रातृत्व है और यही विश्वधर्म है। इसमें नारियों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि नारियों में एक विशेषता है कि वह चाहे तो भेद-भाव की ज्वाला भड़का सकती है और नहीं तो एकता एवं प्रेम की गंगा बहा सकती है। अतः यदि नारी-समाज चाहे तो विश्वधर्म की भावना को सहज में सारे विश्व में फैला सकती है। नारी धर्म, शान्ति, माधुर्य, सहनशीलता एवं अहिंसा की प्रतीक है। माँ का अर्थ केवल अपने गर्भ से उत्पन्न बच्चे की माँ से ही नहीं है, बल्कि वह मन की विशालता का द्योतक है। इसका उपयोग नारी समाज सभी धर्मों को समान समझने में कर सकती है और इस प्रकार वह मैत्री एवं प्रेम का सहज रूप से प्रसार कर सकती है। नारी यदि स्वस्थ विचार रखती हो, तो उससे स्वस्थ परिवार बनता है और उससे आगे चलकर स्वस्थ समाज, स्वस्थ जाति, देश एवं धर्म का विकास होता है और विश्व का धर्म बनता है। हम महात्मा गांधी के उपदेशों का अहिंसा का अपने व्यवहारों में अमल करें तथा हम सभी धर्मों को समान समझकर सहनशीलता के साथ चलें, तभी विश्वधर्म और एक विश्व की स्थापना कर सकेंगे।

● ● ●

प्रेम का सूत्र

महारानी, बरदूवान

यदि इन्सान किसी को प्यार करता है, तो वह भी उससे प्यार करता है। भाई भाई से, बहन बहन से और यहाँ तक कि जानवर से भी प्यार किया जाता है और वह जानवर भी इन्सान को प्यार करता है। संसार सागर की तरह बहुत ही विस्तृत है। यदि सभी थोड़ा-थोड़ा कुछ करें और दूसरों को अपने जैसा समझें, तो बहुत काम हो जाय। इन्सान जब एकसाथ एकत्र हो जाता है,

तो कठिन-से-कठिन कार्य को बहुत सुगमता से सम्पन्न कर पाता है। हम सभी को मानव मात्र से प्यार एवं मुहब्बत करना सीखना है। प्यार करने वाले को प्यार मिलता है और उसमें ईश्वर की भी सहायता मिलती है। ● ● ●

●

मुनिश्री जयन्ती लालजी

आप लोग स्वयं इतनी बुद्धिमति एवं चतुर हैं कि आपको क्या शिक्षा दी जाय ? जो छोटे-छोटे बच्चों को बड़ा बना सकती हैं, उनमें सभी प्रकार की बुद्धि होती है। अकबर के पूछने पर बीरबल ने एक बार कहा था कि राज चलाना सहज है, साधु-फकीर बनना भी सहल है ; पर बच्चे को बड़ा करना बहुत कठिन काम है। अकबर ने जब कहा कि इसमें क्या है, तो बीरबल ने कहा कि आप माँ बन जायँ और मैं बच्चा बनता हूँ। फिर जब बीरबल बच्चा बन गया, तो गन्ना के लिए रोने लगा। उस समय गन्ने का समय नहीं था, फिर भी किसी तरह गन्ना मँगाया गया, तो बीरबल ने कहा कि इसे काटकर टुकड़ा बना दो और जब काट कर टुकड़ा कर दिया गया, तो उसने कहा कि सभी टुकड़ों को जोड कर दो, तब खाऊँगा। अकबर से नहीं रहा गया, गुस्सा आया और उसने बीरबल को एक तमाचा लगा दिया। इस पर बीरबल ने कहा कि आप माँ नहीं बन सकते हैं।

माँ में वात्सल्य और करुणा होती है। एक उदाहरण का स्मरण हो आया है। एक लड़का था। वह अपनी माँ से झगड़ गया। गुरू, माँ आदि की बातें कड़वी होती ही है, जवान लड़का बिगड़कर देवता के मन्दिर में चला गया। वहाँ उपासना के लिए बैठ गया। तपस्या से देवता के प्रसन्न होने पर उसने देवता को माँ से झगड़े की बातें कहीं। देवता ने वर देने को कहा और शर्त में माँ के कलेजे को लाने के लिए कहा। लड़का उच्छृङ्खल तो था ही, वह छुरी लेकर पहुँचा। सोई हुई माँ का उस मूर्ख ने कलेजा निकाल लिया और मन्दिर की ओर चला। रास्ता अन्धकारमय था। उसे ठोकरें लगने लगीं तो उसे आवाज सुनाई पड़ी कि सावधानी से चलो बेटे, पैर में चोट लग जायगी। इधर-उधर देखा, पर उसे आवाज का पता नहीं चला। बहुत देर पर देखा कि वह ध्वनि माता के कलेजे से निकल रही है, माँ का कलेजा ही बोल रहा था। आप इससे माँ की भावनाओं को समझें। इसी मातृत्व से सारा संसार टिका है। माताओं पर कितने ही अत्याचार हुए, फिर भी उसकी करुणामयी दृष्टि से संसार टिका है। जब उसने देखा कि माँ का कलेजा बोल रहा है, तो उसे विचार आया कि माँ पर छुरी चलाने के लिये मुझे धिक्कार है। देवता भी अन्तरिक्ष में आकर बोले कि माँ को छोड़ने पर कौन देवता प्रसन्न हो सकता है ? माता इस प्रकार वात्सल्यमयी होती है। पर कभी-कभी अपने भावों को छिपा लेती है। अतः आप अपने वात्सल्य को प्रकट करें। शर्म तो पाप कर्म या बुरे कर्मों में होनी चाहिए। वात्सल्य में अवरोध की कोई जरूरत नहीं है। इसमें कोई बाधा नहीं डाल सकते। मीरा ने गोस्वामी तुलसीदासजी से प्रश्न किया कि मेरे

पति मुझे माँस पकाने को कहते हैं और मैं कृष्ण-भक्त हूँ, और फिर हिन्दू-धर्म कहता है कि स्त्री के लिए पति परमेश्वर है, मीरा को इस प्रकार धर्मसंकट हो गया। ऐसी स्थिति में समर्थ व्यक्ति ही निर्णय दे सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने शीघ्र उत्तर दिया कि भगवती मीरा,

जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही

तजे पिता प्रहलाद, विभिषण बन्धु भरत महतारी,

तजे बोलि गुरु, ब्रजब नितन्ह, भए जग मंगलकारी

जो स्नेह, प्रेम में बाधा डालते हैं, वे शत्रु हैं—चाहे वह पति हो, माता हो, या और भी कोई हो। भरत ने अपनी माता को छोड़ा, क्योंकि उसने राम के साथ अन्याय किया था। प्रह्लाद ने पिता को नहीं माना। इस प्रकार गोस्वामीजी ने मीरा को लिखा कि अपने हृदय के पवित्र प्रवाह को मत रोको। अतः कोई परम्परा या आज्ञा धर्म का खून नहीं कर सकती है। आपका छिपा वात्सल्य प्रकट हो यही आवश्यक है। बर्नार्ड शा ने भी लिखा है कि थोड़े वर्षों के बाद संसार की सारी सत्ता स्त्रियों के हाथों में आ जायगी और तभी युद्ध रुक सकेगा। इसके लिए तैयारी की आवश्यकता है। अभी तक पुरुषों ने राज्य किया है। वे राज्य करना नहीं जानते हैं। उनमें एक प्रकार का कीड़ा है और इसीसे वे लड़ना चाहते हैं। पर समस्त सत्ता को जब माताएँ अपने हाथों में लेंगी तो करुणा का प्रसार होगा। लडकियों में लडकों से अधिक गुण, शिष्टता आदि पायी जाती है और लड़के तुलना में मूर्ख प्रतीत होते हैं। अतः आज आवश्यकता है कि नारी-समाज अपने वात्सल्य का प्रसार करे और इसके लिए जाग्रत हो। वे अपनी शक्ति, वात्सल्य को पहचानें। सास-वर्ग अब अच्छी बहू बनने की शिक्षा नहीं दे सकती। विचार-क्रान्ति हो रही है। अतः वे निवृत्त होकर जहाँ-जहाँ हो अपनी बहुओं को अधिकार सौंपती जायें। सभी प्रौढ़ स्त्रियाँ, जिनकी बहुएँ आ गयी हैं, वे यदि समाज-सेवा के कार्य में लग जायँ, तो अनेक झगड़ों का निपटारा स्वतः हो जाय। ● ● ●

मुनिश्री सुशील कुमारजी

आप सभी को यहाँ बुलाया गया केवल भाषण, कीर्तन के लिए नहीं कि कुछ देर के लिए दुनिया को भूल जायँ। हालांकि यह भी एक नेक मकसद है। कलकत्ता में अलग-अलग समाजों एवं जातियों में माताओं एवं बहनों के अनेक संगठन हैं, जहाँ वे परस्पर मिल लेती हैं, सुख-दुख को समझ लेती हैं पर कोई ऐसा संगठन नहीं, जहाँ सभी बहनें चाहे वे किसी भी जाति या धर्म की हों, एक-दूसरे से मिलकर एक-दूसरे के सुख-दुख की साझी हो सकें और भगवत् कीर्तन का लाभ ले सकें। इस महिला-सम्मेलन के संगठन एवं आयोजन का उद्देश्य आज की इस सभा से ही पूर्ण नहीं हो जाता है, बल्कि विभिन्न समाजों की नारियों में परस्पर सम्बन्ध जोड़ना है और जब वे सभी आपस में जुड़ेंगी, तो बिना किसी भेद-भाव के धार्मिक बन्धन में एकत्र होकर सम्मेलन के उद्देश्य को चालू रखेंगी।

कुन्था बहन ने संतोष दिया और मान लिया कि आज दो नहीं, पाँच हजार बहनें उपस्थित हैं; पर इतना ही नहीं, उनमें से एक-एक के साथ अनेक समाज एवं संस्थाएँ जुड़ी हैं। इससे संतोष तो जरूर मिला है, पर समस्त कलकत्ता या सारे संसार में इतनी ही बहनें नहीं हैं। वास्तव में पुरुषों से भी महिलाएँ अधिक हैं। इस जमाने में महिलाओं को लगातार वोट आदि के अधिकार मिलते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि कहीं भविष्य में इन्हीं के वोटों पर सरकारों का बनना-बिगड़ना न निर्भर करे तथा महिलाओं का ही साम्राज्य एवं नियन्त्रण सारे संसार पर न हो। एक दार्शनिक ने लिखा कि "पुरुष यदि माता बन जाय, तो भगवान बन सकता है, पर यदि नारी पुरुष बन जाय, तो पिशाचिनी हो जायगी।" इसमें सार जरूर है। सर्व धर्मों का सार-हृदय का प्रेम उनमें है। मनुष्य के पास हृदय कम रहता है। यदि प्रेम का विस्तार हो जाय तो दुनिया स्वर्ग हो जाय। यह तब हो सकता है, जब हृदय की भावुकता में न बहकर प्रेम और स्नेह का प्रवाह सारे संसार में बहाने का प्रयत्न किया जाय तथा उसका उपयोग तमाम संसार के लोगों को जोड़ने मे किया जाय। वास्तव में सम्मेलन का महान् कार्य महिलाओं पर है।

धर्म का उदय माता के हृदय से हुआ है। यदि माता के दिल में प्रेम नहीं होता तो मनुष्य जब पैदा हुआ होता, तो मिट्टी के ढेले के समान त्याग दिया गया होता। यह माता के हृदय का वात्सल्य ही है कि उसने मनुष्य की स्थिति को अक्षुण्ण रखा। हृदय से जो प्रेम होता है, वही धर्म है। माता के हृदय से मनुष्य एवं धर्म दोनों की उत्पत्ति हुई। परन्तु आज फैशन, दुराचार, वासना आदि बुराइयाँ बढ़ रही हैं और अन्तर की नैतिकता प्रेम, साधना, तपस्या विकसित नहीं हो रही है। माता के रूप, शरीर, वस्त्र, नाम आदि की तारीफ नहीं, वह तो क्षणिक है, बनता और मिट जाता है। अतः उसके मोह में नहीं पड़ना है, बल्कि आवश्यकता उस मातृत्व को जगाने की है, उस प्रेम को जगाने की है। माताएँ जितना अपने बच्चों से प्रेम करती हैं पड़ोसी के बच्चों से भी करें तो पृथ्वी स्वर्ग हो जाय। परन्तु वे आज अपने बच्चे को तो चाँद का टुकड़ा समझती हैं और पड़ोसी के बच्चे के दुख-दर्द का खयाल भी नहीं करती हैं। आज की एक सबसे बड़ी समस्या आबादी की वृद्धि है, जिससे जंग की उत्पत्ति होती है। आबादी की वृद्धि का कारण ब्रह्मचर्य का ह्रास है। यह विचार के ह्रास, मन के नियन्त्रण के ह्रास तथा ढीलेपन के कारण है। वास्तव मे आवश्यक यह है कि शरीर की शक्ति को इस ढंग से नियन्त्रित किया जाय कि उसे सारे संसार के प्रकाश के लिए लगाया जा सके। उसे वासना में समाप्त नहीं करना चाहिए। अपने शरीर पर नियन्त्रण नहीं कर सकते तो कुछ नहीं कर सकते। अधिकाधिक ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाय। यदि इसी प्रकार कीड़े-मकोड़े की तरह आबादी की वृद्धि होती रही तो यह नियन्त्रण समाप्त हो जायगा। इसमें लगातार सारी शक्ति नष्ट एवं योजनाएँ समाप्त हो रही हैं।

आप सभी अपनी तारीफ ही सुनकर न जायँ। आवश्यकता व्रत एवं नियन्त्रण लेने की है। अपनी शक्ति को दुर्बल एवं कमजोर इन्सानों को शक्तिशाली बनाने में लगायें। यदि आज इस नियन्त्रण को फैमिली प्लैनिंग (परिवार-नियोजन) की योजनानुसार ले गये, तो देश में व्यभिचार एवं विकार की वृद्धि होगी। माताओं का मातृत्व नष्ट हो जायगा और अन्तर की शक्ति नष्ट हो जायगी। यदि प्रेम एवं सौन्दर्य को बनाये रखना है तथा विकसित करना है, तो ब्रह्मचर्य को अपनाना ही एक मार्ग है। आवश्यकता उसे जीवन में अपनाने की एवं उसकी शिक्षा ग्रहण करने

की है। करीब ५० वर्षों से पूर्व हमारी माताएँ एवं बहनें जो मांसाहारी नहीं थीं, वे आज पुरुष के मुकाबले में लगातार बढ़ती जा रही हैं। यदि इसीका नाम स्वतन्त्रता है, अधिकार है, डेमोक्रेसी या प्रजातन्त्र है तो इस प्रजातन्त्र से तो बिना प्रजातन्त्र के ही अच्छा है। आपको सोचना है कि जब तक भोजन शुद्ध एवं सात्विक नहीं होगा, प्राण-शक्ति नहीं बढ़ेगी। शरीर के लिए स्वास्थ्य, स्वास्थ्य के लिए भोजन तथा भोजन में सात्विकता चाहिए। जैसे-जैसे तामसिकता की वृद्धि होगी, वैसे-वैसे विकार एवं विनाश की वृद्धि होगी। अतः तमाम महिलाएँ मिलकर सोचें। संगठन करें और विचारें, वे दूसरों को दिखाने के लिए अभिनेत्रियाँ या तितलियाँ न बनें, बल्कि संयम का तेज एवं सौन्दर्य अपने में लायें। उनमें वात्सल्य एवं मातृत्व का प्रवाह हो। मनुष्य तो आज से ५० वर्ष पूर्व ही धर्म को अनावश्यक कह देते, परन्तु माताओं में धर्म के प्रति इतनी श्रद्धा है कि वे जीवित हैं। आज आवश्यकता धर्म-कट्टरता एवं अन्धश्रद्धा को निकालने की है। सभी धर्म के सार के विषय में सोचें। जितने भी महात्मा, पैगम्बर आदि हुए हैं, सभी माता की गोद से ही परमात्मा का प्रकाश लेकर आये। किसी भी माता के मन में किसी धर्म या धर्म-प्रवर्तक के प्रति घृणा नहीं होनी चाहिए। इस घृणा को यदि मिटाना है, तो इसे समझना है और परिवार के अन्दर विचार-संस्कार, मन में अधिक संकल्प, आत्मा में त्याग, ब्रह्मचर्य की शक्ति को प्रकट कीजिये, नहीं तो भोग एवं वासना के कीड़े बनकर हम स्वयं को तथा सम्पूर्ण संसार को नष्ट कर देंगे। माताओं को बहुत सावधानी से काम करना है। उनमें बहुत शक्ति है। उससे वह नुकसान भी कर सकती हैं और लाभ भी पहुँचा सकती हैं। आज उनको शक्ति सिनेमा के देखने, फिजूल खर्चा आदि में लगती है और पावडर, क्रीम आदि की क्या क्या समस्याएँ उत्पन्न करती हैं ! उस पर यदि नियन्त्रण हो जाय तो समस्या सुलझ जाय। आप यदि ब्रह्मचारिणी जीवन अपनाती हैं, सादगीपूर्ण जीवन अपनाती हैं तो कोई कारण नहीं कि भोगवाद एवं अधार्मिकता का पंजा फैल सके और नास्तिकता आ सके। वासनाएँ जीवन को नष्ट कर देंगी। अतः मजबूती से अन्तर की शक्ति को विकसित कीजिये।

नारी का योगदान
शांति की संभावनाएँ

•

•

सृष्टि की सभ्यता में मातृ जाति का बहुत बड़ा सहयोग रहा है और पुरुष जाति की अपेक्षा मातृ जाति ने विश्व में शान्ति, सद्भावना एवं शालीनता के प्रसार में अधिक भाग लिया है। कुदरत के विधान में पुरुष शक्ति का प्रतीक है, जब कि मातृ जाति शालीनता की। इस तरह पुरुष जाति की प्रवृत्तियों को विशेषतया उन प्रवृत्तियों को, जिनमें जंगलीपन की झलक रहती है, शान्त करने में मातृ जाति का इतिहास में सदैव ही ऊँचा स्थान रहा है। धर्मों के इतिहास में भी स्त्री जाति की आस्था पुरुष जाति की आस्था से ज्यादा बढ़ी-चढ़ी ही रही है। आज भी हम देखते हैं कि सभी देशों की स्त्रियों में धर्मों के प्रति नैतिक मूल्यों की आस्था अधिक रहती है और यह आस्था दिमागी स्तर तक ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी अमल में लायी जाती है। यह एक शुभ लक्षण है कि

धर्मों के प्रति बढ़ते हुए सन्देह के इस युग में भी संसार की सर्वाधिक जनसंख्या, जिसका प्रतिनिधित्व महिलाएँ करती हैं, जीवन में उच्च, नैतिक मूल्यों एवं धार्मिक दृष्टिकोण के प्रति आस्था रखती हैं। संसार की यह आधी जनता बहुत शीघ्र ही वोटर भी बनेंगी, जिनके मत के अनुसार सरकारों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना जरूरी है। जहाँ प्रजातंत्र के अनुसार चुनाव होता है, उन अनेक मुल्कों में आज भी चुनावों में पुरुषों के अनुपात में महिलाएँ अधिक संख्या में मतदान करती हैं। इस तरह इस बात में कोई संदेह नहीं कि संसार के विचारों को सही रास्ते पर लाने के लिए महिलाओं का बहुत ही ऊँचा स्थान हो सकता है और अगर महिलाएँ पक्के विचारों से काम करें, तो वे संसार में लड़ाई के भयंकर खतरे को, जो कि हमारे इर्दगिर्द मंडरा रहा है, रोक सकती हैं। महिलाएँ इस काम में कितनी दूर तक सफल होंगी, यह उनके द्वारा की गयी मेहनत पर निर्भर है। मैं आशा करता हूँ कि आप सब लोग महिलाओं की इस जिम्मेवारी पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे और अपने समाज के दायरे में अपना प्रभाव फैलाने की यत्नपूर्वक चेष्टा करेंगे।

महिलाएँ समाज के ढाँचे को बदलने में किस तरह सहायक हो सकती हैं? यह सवाल हमारे सामने है। इस बारे में आप लोगों का ज्यादा समय न लेकर मैं कुछ खास सवालों की तरफ ही आप लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

मशीन-युग

●

सबसे पहली बात यह है कि मशीन की उन्नति के साथ-साथ महिलाओं के काम करने का दायरा बढ़ता चला जा रहा है। आज से २०० वर्ष पहले महिलाओं को अपना अधिकांश समय घर में ही बिताना आवश्यक था। उन्हें खाना पकाने, बच्चों की परवरिश करने एवं अन्य घरेलू धंधों को पूरा करने आदि में ही अपना सारा समय बिताना पड़ता था, लेकिन जैसे-जैसे मशीनों का प्रचार हो रहा है, यह सिद्ध होता जा रहा है कि इन सब कामों को सामूहिक रूप से करने की सम्भावना भविष्य में अधिक बढ़ गयी है। १०० महिलाएँ १०० घरों में जितनी देर तक खाना पकाने में समय देती रही हैं, उतना खाना पकाने के लिए एक मशीन काफी है। उसी तरह से कपड़े धोने, बच्चों की परवरिश करने आदि के लिए भी सामूहिक रूप से अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि काम की सहूलियत की दृष्टि से भविष्य में बहुत-सा काम, जो आज महिलाएँ घरों में करती हैं, मशीनों के द्वारा किया जाने लगेगा, किन्तु वह मंगलकारक नहीं होगा। स्वयं पुरुषार्थ में जो विवेक व स्नेह मिलेगा, वह मशीनों से संभव नहीं है। कार्य के बाद जो समय बचेगा, उसका उपयोग महिलाएँ किस तरह से करेंगी, इस चीज का भविष्य में नक्शा बनेगा। एक सूरत इस नक्शे में कुछ आधुनिक मुल्कों में बन रही है। महिलाएँ इस बचे हुए समय का प्रयोग अधिक मौज-मजा करने में करेंगी। अगर यह सूरत भविष्य के नक्शे की बनती है, तो यह बहुत ही खतरनाक सूरत है; क्योंकि वही जंगलीपन, जिससे कि महिलाएँ अभी तक पुरुषों को बचाने की कोशिश करती रही हैं, खुद महिलाओं पर सवार हो जायगा और नैतिक मूल्यों का स्तर बहुत ही तेजी से गिरेगा। तो दूसरा रास्ता क्या है? नेता लोग कहते हैं कि मशीनों के कारण बचे हुए समय को महिलाएँ समाज की सेवा

ये हैं विश्वधर्म-आन्दोलन की भावना के प्रबल समर्थक, जिनकी सहानुभूति ने पूरे देश में अनुकूल वातावरण बनाकर इस मिशन को सफल बनाया।

भैरूँदानजी सेठिया

चंपालाल सेठिया

चुनीलाल फूलचंद दोशी

रतन सिंह वैद्य

ये हैं वे कार्यकर्ता, जिन्होंने सम्मेलन की व्यवस्था, अतिथियों का स्वागत, प्रतिनिधियों की देखभाल तथा इसी तरह के विभिन्न कामों की जिम्मेदारी उठाकर "सेवक" होने का गौरव प्राप्त किया।

नरभेराम हंसराज कमाणी

मोहनलाल वैद्य

नपालाल कामरिया

अभयचंद रतनसी संघवी
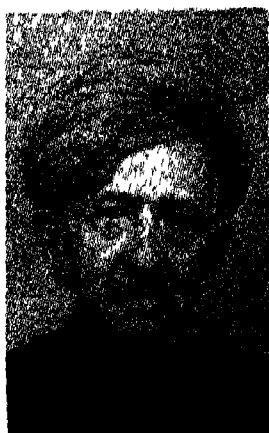
सेठ नरोत्तम झवेरचंद

कस्तूरीलाल जैन,

में लगायें। इस सेवा के बहुत से रूप हैं, जैसे कि अध्यापक, डाक्टर, नर्सों का काम, जानवरों की सेवा, इन सभी चीजों से महिलाएँ जहाँ एक तरफ समाज की सहायक बन रही हैं, वहाँ साथ-साथ समाज के अन्दर नैतिक मूल्यों के प्रसार में भी सहायक हो सकती हैं। अगर महिलाएँ इस तरह अपने समय का सदुपयोग करेंगी, तो भविष्य का नक्शा सुन्दर बनेगा एवं समाज के अन्दर सहयोग की भावना बढ़ेगी।

आजकल जिस समाज की चर्चा सब जगह फैली हुई है, वह है, एक सहयोग परायण समाज धर्म और समाजवाद की चेष्टा, इसका ही प्रकारान्तर है। यह समाजवाद क्या है? सामूहिक खेती करना, एकत्रित उद्योगों के द्वारा उत्पादन बढ़ाना, योजना के ढंग से समाज का विकास और अपने-अपने हक के अनुसार पुरस्कार प्राप्त करना। मशीनों के कारण जो समय बचता है, उसको योजनाबद्ध ढंग से काम में लाना ही समाजवाद का पूर्ण अर्थ नहीं है। इससे तो केवल जीवन का भौतिक स्तर ऊँचा उठ जायगा, दूसरी तरफ अगर इस समाज के निर्माण में नैतिक मूल्यों को भी योजनाबद्ध ढंग से प्रयोग में लाया गया तो समाज की आध्यात्मिक और सर्वतोमुखी प्रगति होगी। आज के समाजवादी प्रयोगों में यह कमी है कि वे जीवन का स्तर ऊँचा उठाने का अर्थ भौतिक रूप से ही मानते हैं। कुछ हद तक उनकी सांस्कृतिक दृष्टि भी है, लेकिन अभी तक नैतिक मूल्यों को ऊँचा स्थान नहीं दिया गया है, जो कि किसी भी धर्म का आधारस्तम्भ है। इससे होगा यह कि भौतिक रूप से जीवन का विकास होगा और नैतिक रूप से जीवन पिछड़ जायगा। संतुलन की इस अवस्था के अन्दर एक बहुत बड़ा खतरा छिपा हुआ है और हो सकता है कि संतुलन खराब हो जाने से मनुष्य के सोचने के तरीके गलत हों। इससे यह हो सकता है कि बड़े-बड़े जंग पैदा हो जायँ और इन्सान की नस्ल को खतरा पैदा कर दें। महिलाओं के लिए यह बहुत जरूरी है कि समाजवाद के इस रूप को वे नैतिक रूप में बदलने की कोशिश करें, ताकि समाज का विकास भौतिक के साथ-साथ आध्यात्मिक रूप में भी हो सके।

शाकाहार

समाजवाद की इस चर्चा को करते हुए मैं आपका ध्यान दूसरी ओर ले जाना चाहता हूँ। आज के समाजवाद के अनुसार मनुष्य का भौतिक विकास ही सर्वोपरि है और मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणियों के लिए इस मानवीय समाजवाद में कोई स्थान नहीं है। दूसरे साधारण प्रकार के मनुष्यों का व्यक्ति इस प्रकार से शोषण करता है, उनकी हत्या करता है और उनका हर प्रकार से दुरुपयोग करता है, तो क्या यह देख करके समझ में नहीं आता कि वही मनुष्य जो सामाजिक न्याय के लिए इतना प्रयत्न कर रहा है, अपने से कमजोर प्राणियों के प्रति क्या इतना क्रूर हो सकता है? जब कि हम आज मनुष्य के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, दवाई, शिक्षा, आमोद-प्रमोद, स्वतन्त्रता आदि के हकों की मांग करते हैं, तो क्या हम मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे प्राणियों के लिए इतना हक भी स्वीकार नहीं कर सकते कि वे अपने जीवन को अपने तरीके से बिता सकें और उनके जीने का हक कायम रहे। अगर इस हक को मनुष्य स्वीकार नहीं करेगा, तो इसका नतीजा यह होगा कि मनुष्य के अन्दर जो साम्राज्यवाद फैला हुआ है, खत्म नहीं होगा। वह बदलते हुए रूप के अन्दर कायम रहेगा। आज महिलाओं का इसीके प्रति विशेष कर्तव्य है। हमारे सारे देशों के अन्दर घरों में कितने मृतक

प्राणियों को भोजन, रोटी, के रूप में काम में लाया जाता है, कितनों को मारकर दवाई, फैशन आदि के रूप में काम में लाया जाता है। यह समस्या इतनी बड़ी हो गयी है कि संसार के अधिकांश घर मरे हुए जानवरों के स्थान बन गये हैं और अधिकांश पेट कत्ल किये हुए जानवरों के कब्रगाह बन गये हैं। मुझे दुख है कि महिलाएँ भी कत्ल के इस बड़े धंधे में बहुत बड़ी साझीदार हैं। जब तक यह कत्ल बन्द न हो और हम दया, प्रेम, सहयोग तथा सहानुभूति के सिद्धान्तों को अपने घरों में लागू न करें, तब तक यह आशा करना फिजूल है कि विश्व में इन सिद्धान्तों को आदर मिलेगा। मैं सभी महिलाओं से यह निवेदन करता हूँ कि वे शाकाहारिता की उन्नति को अपनायें और अगर उनके घरों में पुरुष इस सिद्धान्त को स्वीकार न करें, तो कम-से-कम वे ही शाकाहारी रहें और जहाँ तक बने, अपने घरों में पुरुषों एवं सभी लोगों को शाकाहारी बनाने की कोशिश करें।

यह शाकाहारिता सिर्फ एक आदर्श ही नहीं है, बल्कि दुनिया के लिए एक व्यावहारिक आवश्यकता है। मांस को जब किसी भी तरह से अपनाया जाता है, तो उसका फल भोगना पड़ता है। पुराने धर्मों ने तो इस सिद्धान्त को माना ही है, लेकिन हम व्यावहारिक जीवन में भी इसका रूप देख सकते हैं। आपको मालूम ही है कि आज संसार की आबादी बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसलिए यह प्रचार किया जा रहा है कि बच्चों को पैदा होने से रोकना आवश्यक है। आजकल को बोलचाल में इसको संतति-निरोध कहते हैं, आपको यह पता होना चाहिए कि जनसंख्या बढ़ रही है, परन्तु संसार में समुद्र के पास रहनेवाली जनता की आबादी अधिक बढ़ रही है। अगर हम आँकड़े देखें, तो हमें मालूम होगा कि एशिया में साइबेरिया से लेकर मद्रास जो चावल की बहुत बड़ी पट्टी है, जिन देशों में चावल खाने वाले अधिक रहते हैं, उन देशों की जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ रही है। बंगाल में भी, जहां हम एकत्रित हैं, यहाँ जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसका कारण आपको मैं बताता हूँ। इसके दो कारण हैं: (१) मछली खाने की आदत। (२) ब्रह्मचर्य के सिद्धांत में अविश्वास। आप देखेंगे कि जिन-जिन मुल्कों में मछली बहुत अधिक खायी जाती है, उन-उन मुल्कों की जनसंख्या बहुत अधिक तेजी से बढ़ती है। ऐसे मुल्कों में आबादी इतनी जोरों से बढ़ रही है कि आदमी के रहने के लिए जगह का अभाव होता जा रहा है।

ब्रह्मचर्य

आबादी के बढ़ने के सिलसिले में दूसरा सवाल जो सामने आता है वह है ब्रह्मचर्य का अभाव। अब एक ऐसी नयी हवा फैलती जा रही है और यह माना जा रहा है कि ब्रह्मचर्य का सिद्धांत एक सड़ा हुआ सिद्धांत है जिसको इस जमीन पर लागू करना सम्भव नहीं है। आप जानती हैं कि पुराने धर्म ने इस चीज की कीमत बहुत अधिक आँकी थी। लेकिन जैसे-जैसे युग बदलता जाता है वैसे-वैसे लोग यह बात मानते जा रहे हैं कि इस ब्रह्मचर्य की कोई कीमत नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि जैसे-जैसे मशीन के उदय होने से मनुष्य को अपनी शक्ति का थोड़ा अन्दाज लग रहा है वैसे-वैसे वह फिसलन के मार्ग पर जा रहा है। अगर कोई दुबला-पतला आदमी फिसले तो फिर भी वह कहीं रुक सकता है, लेकिन अगर कोई भारी भरकम आदमी फिसले तो उसका क्या हाल होगा, यह आप अंदाज लगा सकती हैं। इसी तरह आज की सभ्यता, जो भारी भरकम

होती जा रही है अगर इसने फिसलना शुरू कर दिया तो इसका क्या हाल होगा, इसका अंदाज आप लगा सकती हैं। पुराने धर्मों के अन्दर मनुष्य के लिए ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ जीवन दोनों ही आदर्श माने गये हैं। फकीरों और साधुओं के लिए ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थों के लिए संतुलित ढंग से संतति बढ़ाने का कार्य। पुराने धर्मों ने भी मनुष्य की कमजोरियों को समझा था और इसीलिए उन्होंने संभावित गृहस्थ-धर्म की महिमा गायी है। गृहस्थ धर्म को भी सन्तुलित रूप से बिताने के लिए ही उन्होंने जोर दिया है। धर्म की इस मान्यता को अगर खत्म कर दिया जाय और ब्रह्मचर्य को तथा सन्तुलित सद्-गृहस्थ धर्म को पालन करने के लिए मनुष्य तैयार नहीं होता है तो उसका नतीजा क्या होगा। जनसंख्या अगर अधिक बढ़ेगी तो क्या होगा और अगर हम मान लेते हैं कि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य मौज करना ही है तथा अगर महिलाएँ भी इसी सिद्धांत को स्वीकार कर लेती हैं तो मनुष्य की आबादी को बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता। चाहे संसार के सभी पुरुष और सभी महिलाएँ अपने बच्चों की समाप्ति का फैसला कर लें, तब भी संसार की आबादी बढ़ने से रुक नहीं सकती है तथा यह इतनी बढ़ेगी कि थोड़े दिनों के बाद मनुष्य को खड़े होने के लिए स्थान नहीं मिलेगा। ऐसी हालत में जंग नहीं होगा तो और क्या होगा। अगर जंग होगा तो मनुष्य का क्या हाल होगा। इसका नक्शा हमारे सामने है। नतीजा यह निकलता है कि मनुष्य को अगर बचना है तो उसे शाकाहारिता अपनानी चाहिए। मांस और मछली खाना छोड़ना चाहिए और भोगवादी जीवन बिताने से बहुत दूर रहना चाहिए। यह ठीक है कि हर मनुष्य फकीर नहो बन सकता, ब्रह्मचारी नहीं बन सकता फिर भी हरएक मनुष्य संतुलित ढंग से जीवन अवश्य बिता सकता है। अगर मनुष्य इतना भी नहीं कर सकता तो उसमें और पशु में कोई अन्तर ही नहीं है और महिलाएं भी अगर अपने घर के मनुष्यो पर सत्य की छाप नहीं डाल सकीं तो उनका भी जीवन बेकार है। याद रखिये पापों का फल हमको अवश्य मिल जाता है तो क्या यह उचित नहीं है कि आप इन पापो से समझ-बूझ कर बचें। मानवीय कमजोरियाँ अवश्य हैं तब भी आप मानव हैं और पशु से ऊँचे हैं। आप अगर पशु ही बन जाते हैं तो यह कुदरत उसी तरह जगत का विनाश करेगी जैसे कि लोग पशु का करते हैं। धर्मों ने हमें यही सिखाया है और अगर हम इस पाठ को भूल जाते हैं तो खतरा है। यह खतरा हर समय था लेकिन आज जब कि मनुष्य के विध्वंस की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी है तो वह खतरा भी बहुत अधिक बढ़ गया है।

महिलाएँ इस खतरे को दूर करने में बहुत ज्यादा सहायक हो सकती हैं। सभी माताओं एवं बहनों से अनुरोध है कि इस खतरे से बचाने के लिए वे संसार की मदद करें और अगर वे विश्व की मदद करती हैं तो उनके खुद के परिवार भी सुखी रहेंगे। अगर वे मदद करने में चूकती हैं तो उनको अपने बच्चों से तो हाथ धोना पड़ेगा ही, पर यह पुरुष वर्ग भी किसी तरह के चपेट में आ करके अपना अस्तित्व खो बैठेगा। इससे जिस मौज-मजा के पीछे आज संसार पागल हो रहा है वह आदर्श ही खत्म हो जायगा। साथ ही साथ यह कहा जायगा कि थोड़ी-सी शिक्षा मिलते ही इन्सान पागल हो गया और उसने आत्म विनाश कर दिया। मैं महिलाओं से आग्रह करता हूँ कि विश्व को आत्मघात के इस दुखद स्वप्न से बचायें। इसीमें संसार का भला है। मैं आशा करता हूँ कि आप इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगी एवं अपनी उन्नति कर सकेंगी तथा धर्म के कार्य में सहायता प्रदान कर सकेंगी। ● ● ●

४ फरवरी को संत कृपाल सिंह की अध्यक्षता में शाकाहार-सम्मेलन संपन्न हुआ।

●

मुनिश्री जयन्ती लालजी

यह सम्मेलन अभी पूर्व भारत में हो रहा है। हम पश्चिम से पूर्व में आये हैं और निजी अनुभव यह है कि ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर आते हैं, निरामिषता की कमी है। परिमाणस्वरूप गुजरात में एक रुपये में १२ आने, राजस्थान में १०-११ आने, उत्तर प्रदेश में ८ आने, बिहार में ४ आने और बंगाल उड़ीसा, आसाम आदि पूर्व भारत में १ आना निरामिष प्रजा है। इसका अर्थ यह नहीं कि पूर्व भारत के महापुरुषों ने निरामिषता पर विचार नहीं किया है।

सर्वप्रथम यह सोचना होगा कि आप निरामिष हैं और आप चाहते हैं कि और लोग भी निरामिष बनें तथा मास-मछली आदि नहीं खायं तो सबसे पहले आपको जाग्रत होना होगा। यदि निरामिष प्रजा के बीच एक आमिष व्यक्ति है, तो उसे कोई कष्ट नहीं होता है, पर आमिष प्रजा के बीच निरामिष प्रजा को काफी कष्ट होता है। दस मांसाहारियों के बीच एक निरामिष को रहने में कष्ट होता है। ऐसी अवस्था में आपकी जिम्मेवारी और भय भी अधिक है। मासाहारी से मेरा वैर-विरोध नहीं। वे तो संस्कारवश वैसा कर रहे हैं, परन्तु उनकी जिम्मेवारी उतनी नहीं, जितनी आपकी है। उड़ीसा की राजधानी कटक में 'महावीर जयन्ती' के प्रसंग पर वहाँ की स्वास्थ्य-मन्त्रिणी श्रीमती बसन्त देवी मन्जरी ने मांस-मछली नहीं खाने वाले मारवाड़ियों, गुजरातियों को उसके लिए धन्यवाद दिया और कहा कि आप लोग मांसाहारियों को अनार्य कहते हैं, परन्तु उनकी उस वृत्ति को छुड़ाने के लिए आपने क्या प्रयास किया या उनके अनार्यत्व को दूर करने के लिए क्या यत्न किया या सहयोग प्रदान किया? आज योरोपीय देशों में भी जहाँ मासाहार का प्रचलन अधिक है, निरामिषता के प्रचार की संस्थाएँ है। अमेरिका में ३० लाख लोग निरामिष हो गये है। ऐसी अवस्था में हम सभी जो उसे धर्म, पाप-पुण्य और आत्मा की वस्तु मानते है, इसे दूर करने के लिए सोचें कि हमारा क्या कर्तव्य है, इसके लिए क्या यत्न करें, क्या योगदान दिया जाय? ऐसे बेकार खर्च तो बहुत होते हैं, तो फिर सदुद्देश्य के लिए खर्च क्यों नहीं करें?

एक कसाई से पूछने पर कि ५ रु० के लाभ के लिए २० रु० की गाय की हत्या क्यों करते

हो, उसने कहा कि हमारे व्यापार के समर्थक केवल मांसाहारी ही नहीं हैं, बल्कि वे भी हैं, जो मांसाहार नहीं करते हैं। वे सभी चमड़े का व्यवहार करते हैं, तो उससे लाभ होता है। जिन्दी गायों के चमड़े का वे व्यवहार करते हैं। आप जानते हैं कि जो जूता, घड़ी के पट्टे आदि का आप व्यवहार करते हैं, वह जिन्दे जानवरों के चमड़े का होता है। आप मांसाहार नहीं करते हुए भी उसके समर्थक हो जाते हैं। अतः मैं कहूँगा कि आप लोग निरामिष प्रजा को सबसे पहले जाग्रत होना है। जितना मांसाहारी पड़ोसी जिम्मेवार नहीं है, उतने जिम्मेवार आप हैं। हमारे निरामिष लोग क्यों आगे नहीं आते, आकर अपनी शक्ति नहीं लगाते ? इस कारण जितने मांसाहारी दोषी हैं, उतने मांसाहार नहीं करने वाले हैं, जो उनको उपदेश नहीं देते और उससे उन्हें मुक्त करने का प्रयास नहीं करते। इस कार्य के लिए हम लोगों को पूर्ण सहयोग करना होगा, बड़ी-से-बड़ी संस्था का निर्माण करना होगा। आज भला इसके लिए कौनसी संस्था है ? क्या आज यहाँ धनपतियों, शाकाहारियों, रामायण, महाभारत आदि धर्मशास्त्रों के माननेवालों की कमी है ? लोग किंकर्तव्यता पर रोते रहते हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि यदि दिल में दया-भावना है, तो कुछ करना होगा।

बुनियादी सवाल

मैंने गाँव-गाँव में अध्ययन किया। दो प्रकार के लोग यहाँ हैं—एक शाक्त, जो मांसाहारी हैं और दूसरे चैतन्य महाप्रभु के माननेवाले या वैष्णव, जो मांसाहार कम करते हैं। उनके मानने वाले बलि नहीं देते और मानते हैं कि बलि देखने से भी पाप लगता है। ऐसे लाखों लोग बंगाल में हैं। यदि उनकी श्रद्धा सच्ची है और बलि हीन कर्म है तो उन्हें उन लोगों को सुधारने में पुण्य है। सर्वप्रथम इन लोगों को सुधारने की जरूरत है। इसके लिए चैतन्य महाप्रभु की जन्म-जयन्तियाँ मनानी होंगी। उनका योगदान इस दिशा में अनुपम रहा है। उन्होंने जीव-दया का जो काम इस भूभाग में किया, उसे मरने नहीं देना चाहिए निरामिष लोगों को सर्वप्रथम इस कार्य में लगना चाहिए। यदि उनके संस्कार बदल गये तो एक कदम हम आगे बढ़ते हैं। इसके लिए एक संस्था कायम की जाय, जिसके द्वारा निरामिषता का प्रचार किया जाय, लोगों को उसका उपदेश दिया जाय, साहित्य उपलब्ध कराया जाय। मैं समझता हूँ कि इसमें किसी भी प्रकार वैष्णव, जैन आदि का कोई भेद-भाव नहीं है।

लोग कहते हैं कि विश्वधर्म क्या है ? मैं कहता हूँ कि यह दया-धर्म है, जीव-हत्या न करो, इसके लिए एकत्र होना, एक मंच पर आना और शक्ति को एकत्रित करना है जो दया-धर्म के मानने वाले हैं, उन्हें एक होकर इस काम को करना है, बलि-प्रथा को रोकना है। कवीन्द्र रवीन्द्र के इस संबंध में बहुत से नाटक हैं, उनका प्रयोग कर, बहुतेरे विद्वानों ने बलि-प्रथा को निरर्थक माना है, उनके विचारों का उपयोग कर निरामिषता का प्रसार करना है। बहुत जगह बलि-प्रथा बन्द हो चुकी है। इसके समर्थन में बहुत साहित्य है, अनेक मानने वाले विद्वान हैं। आज उसमें अनुकूलता है, लोगों में विचारों का सृजन हो गया है, मुसलमानों में भी रहम करने की बात है, वे भी इस कार्य में हाथ बटायें। केवल नारा लगाने से कुछ नहीं होगा। इस को कार्यान्वित करने की कोशिश करें। भारत आने वाले विदेशी प्रतिनिधियों ने कहा था कि हमें शर्म आती है

कि हमारे यहाँ शाकाहार का प्रचार हो रहा है और यहाँ मांसाहार की वृद्धि हो रही है। यदि हम चाहते हैं कि ऐसी लज्जा की बात न हो, तो जाग्रत होना होगा। इसके लिए सरकार पर भरोसा नहीं करना चाहिए। वह तो सबसे निकम्मी संस्था है। अहिंसा का पाठ भी बोलती है और हिंसा का प्रसार भी करती है! अहिंसा इसलिए बोलती है कि वह सार्वजनिक चीज है। उसका मुँह नहीं ताकना है पर अपील जरूर करना है कि वह मांसाहार नहीं बढ़ाये। उस पर दबाव डाल सकते हैं, पर कार्य तो आपका है, जो दया-धर्म को मानते हैं। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए हर नर-नारी को हाथ बँटाना है। कोई इसके लिए किसी प्रकार का भेद नहीं करे कि यह जैनियों का है आदि। सच्चे दिल से इसका समर्थन करेंगे, तो सच्चा कल्याण होगा। ● ● ●

●

प्रधान वक्ता :

श्री सिद्धराज ढड्ढा

यह प्रश्न केवल शाकाहार और मांसाहार का मुख्य प्रश्न नहीं है। इस प्रश्न को व्यापक दृष्टि से देखना होगा। मुनिजी ने ठीक ही कहा कि उपस्थित अधिकांश लोग शाकाहारी हैं और मैं भी मानता हूँ कि शाकाहार का प्रचार हो और इसमें शाकाहारियों की विशेष जिम्मेवारी है। परन्तु यह प्रश्न सारे जीवन से सम्बन्धित है, केवल शाकाहार और मांसाहार का ही नहीं है। वह धर्म का प्रश्न है। इसीसे उसे विश्वधर्म-सम्मेलन की चर्चा का एक प्रश्न बनाया गया है। इस प्रश्न को कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। कुछ चर्चाएँ सामने आयी हैं। कुछ लोग इसे स्वास्थ्य की दृष्टि से देखते हैं। संसार के जिन शाकाहारियों का जिक्र आया, वे इसे अधिकतर स्वास्थ्य एवं शरीर-शुद्धि का प्रश्न मानते हैं। दूसरे बहुतेरे लोग इसे चित्त-शुद्धि का साधन मानते हैं और इससे उत्तरोत्तर विकार की कमी होती है। कुछ लोग मानते हैं कि इससे बुद्धि निर्मल एवं सात्विक होती है। परन्तु भारत में उसका एक अलग ही पहलू है, जो बहुत व्यापक है। भारत के लिए वह केवल स्वास्थ्य या चित्त-शुद्धि का ही प्रश्न नहीं है। शाकाहार को जिस दृष्टि से भारत ने अपनाया वह अधर्म से धर्म, अशाश्वत से शाश्वत और अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने की जो भावना एवं प्रवृत्ति है, उसी धर्म के विकास की मूल प्रवृत्ति का प्रश्न है। उसे उसके अंग के रूप में, सनातन सत्य तथा धर्म के साधन के रूप मे अपनाया गया है। इसीसे तमाम मुल्कों की अपेक्षा भारत एक ऐसा देश जहाँ व्यक्तिगत दृष्टि से नहीं, बल्कि जातियाँ की जातियाँ शाकाहारी हैं। दुनिया में उसका प्रचार व्यक्तिगत दृष्टि से हो रहा है— स्वास्थ्य और चित्त-शुद्धि के महत्त्व पर। पर भारत ने उसे धर्म का अंग माना। आज यद्यपि भारत में भी शाकाहार की संख्या मांसाहार से कम है, पर यह सत्य है कि भारत ने इस प्रश्न को व्यापक दृष्टि से देखा और ज्यों-ज्यों धर्म के संस्कार की वृद्धि हुई, उत्तरोत्तर शाकाहार की संख्या भी बढ़ती

ग   ाज भी यहाँ लाखों-करोड़ों लोग पीढ़ियों से परम्परा की दृष्टि से शाकाहारी हैं, न ि क व्यक्तिगत दृष्टि से ।

धर्म की व्याख्या भिन्न-भिन्न रूप से की जाती है। धर्म क्या है और क्या नहीं इस पर भी बहुत चर्चाएँ होती हैं। इस सम्मेलन के आरंभ में मुनिजी ने कहा था कि धर्म आत्मा का संगीत है। बहुत सुन्दर वाक्य है। वास्तव में वह किसी व्यक्ति, संघ या सम्प्रदाय से बँधा हुआ नहीं, बल्कि आत्मा की वस्तु है। आत्मा सबमें सर्वव्यापी तत्त्व है और इससे धर्म अखंड एवं शाश्वत है। धर्म के यदि टुकड़े करेंगे, तो वह सही धर्म नहीं। प्रसन्नता है कि इस दृष्टि से यहाँ धर्म की चर्चा हो रही है। आत्मा की उस व्यापकता एवं अखण्डता की दृष्टि से देखें तो शाकाहार के प्रश्न को सही दृष्टिकोण से समझ सकते हैं। शाकाहार का प्रश्न आत्मा के विकास का प्रश्न है। आत्मा का सही विकास इसी दिशा में हो सकता है कि वह अपने आसपास के प्राणियों, तत्त्वों से अपना सम्बन्ध उत्तरोत्तर प्रेमपूर्ण बढ़ाता जाय। मैं तो धर्म का यही लक्षण मानता हूँ। मैं धर्म को भी इतना ही समझता हूँ कि आत्मा का जितना ही अधिक विस्तार कराता जाय, दायरा बढ़ाता जाय, मनुष्य तक ही सीमित नहीं, सभी प्राणियों तक विकसित करता जाय—मैं तो समझता हूँ कि वही सच्चा धर्म है। करुणा का विस्तार मानव-हृदय में जितना ही अधिक होगा, उतना ही धर्म का विस्तार माना जायगा।

सहानुभूति का तत्त्व

●

एक पुस्तक में मैंने पढ़ा कि कौनसा आदमी सभ्य एवं सुसंस्कृत माना जाय। संस्कृति की व्याख्या एवं परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि- "दी आर्डेनिग ऑफ ह्यूमन सिमपेथी इज द् कलचर"—अर्थात् जितना मनुष्य की आत्मा में सहानुभूति का तत्व विकसित होगा उतना ही वह सुसंस्कृत है। सन्त एकनाथ के बारे में यह प्रसिद्ध है कि एक बार वह कीर्तन में लगे थे। मन्दिर के बाहर एक किसान एक भैंसे को ले जा रहा था और नहीं चलने के कारण उस किसान ने भैंसे को कोड़े मारे, परन्तु जब उसका आर्तनाद मन्दिर के अन्दर पहुँचा, तो सन्त एकनाथ के पीठ पर वे निसान उभर आये। इतनी सहानुभूति थी उनके हृदय में। मानव कितना विकास कर सकता है और आत्मा कितनी सहानुभूति प्रकट कर सकती है इसीका यह एक उदाहरण है।

शाकाहार पर अन्य देशों में भी विचार हुआ है। भारत का नाम लेने से यह नहीं समझें कि देश गौरव की दृष्टि से कह रहा हूँ, बल्कि मेरा जो परिचय एवं ज्ञान भारत से रहा है, उसके आधार से ही कह रहा हूँ तथा विदेशों के लोग भी ऐसा विचार प्रकट करते हैं कि धर्म का विस्तार जितना भारत में हुआ और उसे जीवन में उत्तरोत्तर जिस प्रकार उतारा गया, उतना अन्यत्र नहीं हुआ। यहाँ इसका बराबर प्रयत्न होता रहा। हजारों वर्षों से शाकाहार का जो यहाँ प्रचार होता रहा, यह प्रमाण है कि हमने समझ-बूझ कर इसे स्वीकार किया है और करते रहे। जिन तत्त्वों को धर्म ने स्वीकार किया और धर्म ने जिन्हें माना है—सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि—उन्हें जीवन में विकसित करने में शाकाहार एक महत्त्व का कदम है। यहाँ उसे उसी कदम के रूप में स्वीकार किया गया है। वह भारत में धर्म-तत्त्व के व्यावहारिक रूप में है।

इसलिए शाकाहार के लिए संस्था बनाएँ या नहीं, पर यह सोचने का विषय जरूर है कि संस्था बनाएँ तो किस दृष्टि से प्रचार करें। शाकाहार का प्रचार व्यापक दृष्टि से ही होना आवश्यक है न कि केवल धार्मिक एवं साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से।

जैसा कि कहा गया : हम अकसर सोच लेते हैं कि हमने शाकाहार को स्वीकार किया तो धर्म की दृष्टि से जो कुछ करना है, हमने कर लिया। यह एकांगी दृष्टि का सोचना है। अकसर फैशन की दृष्टि से लोग अनुभव करते हैं और अपने को पिछड़ा मानकर शाकाहार को छोड़ते जा रहे हैं। मैं उसे नहीं मानता। आज जो लोग शाकाहार को छोड़ते जा रहे हैं और मांसाहार की ओर बढ़ रहे हैं, उसके पीछे तथ्य यह है कि आज सारे समाज में जो व्यापक पतन आया है, उसका ही यह एक लक्षण या चिह्न है। यदि शाकाहार को एकांगी दृष्टिकोण से लेकर चलेंगे और वह यदि जीवन के और अंगों को छूकर नहीं चलेगा तो उसका उचित प्रसार नहीं कर पायेंगे। शाकाहार केवल मांसाहार शाकाहार का प्रश्न नहीं है, वह समूचे जीवन का प्रश्न है। जैसे जैसे जीवन में धर्म-नीति-और धार्मिकता का विकास होगा, वैसे ही शाकाहार की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

अक्सर लोग शाकाहारियों को देखकर हँसते हैं क्योंकि वे उसी में धर्म की परिपूर्ति मान लेते हैं। वह तो केवल एक कदम है। आवश्यकता उससे आगे बढ़ने की है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में उस भावना का विस्तार करना है। हमारा चाहे व्यापार हो, ज्ञान, अध्ययन या अन्य क्षेत्र हो, हर क्षेत्र में उस दृष्टिकोण को ही आगे रखकर विकास करना है। तभी धर्म का प्रसार हो सकता है। धर्म एकांगी वस्तु नहीं है। धर्म ऐसी कोई चीज नहीं कि एक ही दृष्टि से उसे समझ सकें। वह एक जीवन-व्यापी तत्त्व है। यदि इसे सोचकर अधर्म से धर्म को अपने जीवन में स्थान देंगे और उसका विकास करेंगे तो शाकाहार का प्रश्न भी हल होता जायगा। साथ ही इसका प्रचार भी बढ़ेगा।

दो बातें हैं—इस प्रश्न को व्यापक दृष्टि से देखें तथा यदि इसे जीवन के अन्य क्षेत्रों एवं प्रसंगों में उतारेंगे, तो सही रूप में उसका बढ़ाव एवं प्रसार होगा।

● ● ●

दो अनुभव

●

श्री केशर देवजी पोद्दार

(अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी के विचारक)

आज मैं शाकाहार के सम्बन्ध में दो अनुभव पेश करना चाहता हूँ। सम्भव है, इससे इस विषय के प्रचार एवं विचार में सहायता मिले। श्री अरविन्द आश्रम में १७ राष्ट्रों एवं हिन्दू, जैन, पारसी, क्रिश्चियन, इस्लाम आदि हर मजहब के लोग हैं। वहाँ खान-पान में कोई रोक टोक नहीं है। फिर भी लोग शाकाहारी हैं। यह क्या बात है? इस विषय में अनुभव की बात इसलिए पेश करता हूँ कि श्री सिद्धराजजी ढड्ढा ने कहा कि यह प्रश्न व्यापक है। साथ ही यह गहरा भी है। मैं गहराई का एक नमूना प्रस्तुत करता हूँ। आश्रम में एक स्विस लेडी, जो अपने देश में एक बहुत

प्रसिद्ध खिलाड़ी (एथलेट) रही है। वह स्वयं शाकाहारी थी। एक बार उसे बाहर से निमन्त्रण मिला। वहाँ आमिष भोजन मिलने पर उसे उसने ग्रहण कर लिया। लौटने पर रात्रि में नींद में वह स्वप्न देखती है कि कोई उसे पाँव ऊपर करके हिला रहा है, फिर उसे जमीन पर पीटा जा रहा है, उसकी गर्दन काटी जा रही है। इससे रात भर वह तकलीफ में रही प्रातः उसने माँ से पूछा कि यह सब क्या है, तो माँ ने कहा कि जिसके मांस का तूने आहार किया है, उसकी आत्मा को ही तूने देखा है।

साधारणतया जो लोग मांसाहार करते हैं, उनकी सूक्ष्म चेतना विकसित नहीं होती, इसीसे उन्हें अनुभव नहीं होता। मांसाहार के साथ उस पशु या पक्षी की आत्मा का भी प्रवेश होता है, पर मांसाहारी की सूक्ष्म आत्मा के विकसित एवं सचेतन नहीं होने के कारण वह पूरा अनुभव नहीं कर पाता। इस घटना के बाद उसकी चेतना से ही आमिष आहार का विचार उठ गया। उसे कोई मना करने की जरूरत नहीं रही।

दूसरा एक और विचित्र अनुभव है। वह यह कि लोगों को यह कहने के बदले कि यह करो और यह न करो, उसके सामने मानव-जीवन के मूल सिद्धान्त रखे जायँ जैसे श्री अरविन्द ने रखा है, तो मनुष्य स्वाभाविक रूप से ही निरामिष और सात्विक भोजी हो जायगा। केवल निरामिष भोजन से ही हम शुद्ध एवं सात्विक नहीं हो जायेंगे बल्कि मूल भोजन भी सात्विक हो। भोजन में जो मूलभूत आत्मा है और जो आत्मा हममें है, भोजन करते समय उन आत्माओं में मेल हो—यह भोजन की सूक्ष्म विशेषता है। यह हमारे शारीरिक विकास, मानसिक प्रगति एवं विकास के लिए सहायक है। हमारे अन्दर वह चेतना प्रवेश करे और हमारे अन्दर ईश्वरीय चेतना को जाग्रत करे, मन में शान्ति लाये और हमारी नैतिक भावनाओं का, भौतिक तत्त्वों का विकास करे एवं शरीर को प्रोत्साहन दे। इसी भावना से भोजन करना चाहिए। इस दृष्टिकोण में यदि एक चीज और मिलायें तो शाकाहार बहुत ही सरल हो जाय। यदि हम समझ लें कि इस मानव-जीवन का उद्देश्य आत्मा, परमात्मा और उस पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति एवं जीवन में उसका प्राकट्य है, तो हम आन्तरिक एवं बाह्य जीवन की पराकाष्ठा पर पहुँचेंगे और स्वतः ही हम ऐसा काम करेंगे, जो इसमें सहायक हो सके या बाधा नहीं पहुँचाये। फिर हम देखेंगे कि आमिष भोजन से इस लक्ष्य की प्राप्ति में हानि होती है, तो स्वयं उसका त्याग करेंगे। यह आवश्यक है कि जनता के सामने पूर्ण दृष्टिकोण रखा जाय, क्योंकि एक दृष्टि के ही रहने से असली चीज भूल जाते है और गड़बड़ी हो जाती है।

एक तीसरी बात यह है कि माँ जो पाण्डिचेरी आश्रम का संचालन करती हैं, जब फ्रांस में थी, तो वहाँ भी शाकाहारी थी। पर किसी कानून या प्रस्ताव के कारण नहीं, बल्कि इस कारण से कि अमुक भोजन आन्तरिक विकास में सहायक है और अमुक भोजन आन्तरिक विकास में बाधक है। बाह्य जीवन आन्तरिक विकास पर निर्भर करता है। बाहर वही कार्य करेंगे, जो अन्तर में होगा।

• • •

आहार की सात्विकता

सन्त कृपाल सिंहजी महाराज (अध्यक्ष)

हमको यह मनुष्य-जीवन बहुत भाग्य से मिला है। यह माना गया है कि मनुष्य-जीवन बहुत श्रेष्ठ है और यह एक बहुत ही उन्नत जीवन है। यह ईश्वर की एक अनुपम कृति है। इस

जीवन में तीन मूल तत्त्व हैं। एक आत्मा है। यह शरीर का पुतला जो चल रहा, उसे चलाने वाली शक्ति कौन है? दूसरा यह कि जिस आधार से यह हमारी चेतना, आत्मा इस शरीर के साथ कायम है, वह क्या है? सदाचार, धर्म और जिस्म है।

आत्मा और सदाचार तभी चल सकता है, जब जिस्म का घोड़ा तैयार हो। जब आत्मा की तरफ बहुत तवज्जह दिया तथा धर्म के प्रचार की ओर भी, पर इस ओर बहुत कम ध्यान दिया कि यह पांच-छह फुट के पुतले को लेकर जो चल रहा है, वह क्या है? जिन्होंने इसका विश्लेषण कर देखा है, उनको पता लगता है कि ५०० से भी ऊपर जिस्में हैं, । इसके बारे में जानना सबसे पहला काम है। इसीसे पुराने जमाने में जो पहला काम सिखाया जाता था, वह यह था कि जिस्म किस प्रकार कायम रह सकता है। इसके लिए बताया गया कि १२ वर्ष के बच्चे को वैद्य क्या कहे? अर्थात् उस उम्र तक वह उसके बारे में इतना जान जाता था कि वैद्य की जरूरत नहीं रह जाती थी। आज हम ५०-६० साल के हो जाने पर भी नहीं जानते कि जिस्म कैसे चलता है? तो जब तक यह घोड़ा ही ठीक नहीं है तो सदाचार, धर्म, आत्मा का प्रचार आदि कैसे हो सकता है? इसलिए सन्तों ने कहा :

घटों से चरणारविन्द रसना जपे गोपाल,
नानक से दसरे काहू ने अेहि गोपाल।

अतः जिस्म का विकास हो और उसके माध्यम से उसके परमात्मा को देखने वाले और गुणानुवाद करने वाले बनो। यह हरिका मन्दिर है। इस सम्बन्ध में विश्लेषण, तो बहुत हुआ, पर आम लोग नहीं जानते हैं।

शाकाहार और मांसाहार के सम्बन्ध में दो बातें पेश की जाती हैं। पहली बात यह कि इससे ताकत बढ़ती है, इसीसे मांस खाते हैं। पर विचारें कि हाथी-घोड़े क्या मांस खाते हैं, तो उनमें ताकत कहाँ से आती है? इन्सान की बनावट ही ऐसी है, जो मांसाहारी की नहीं है। हैवानों की बनावट को देखें, उनके दांत अलग होते हैं। और कोई भी प्रारम्भ से तो मांसाहारी नहीं हैं। बात यह है कि जो शाकाहारी हैं वे 'ससटेन' अर्थात् अधिक जी सकते हैं और वे जादा ताकतवर हैं, उनमें अधिक शक्ति है। वे दौड़ने तथा और भी कसरतों में अधिक सक्षम हैं। यह एक पहलू है। दूसरा पहलू धर्म का है। वह यह है कि जैसा अन्न, वैसा मन। जैसा अन्न खाओगे, वैसा असर होगा। कुत्ते को यदि सब्जी पर रखा जाय, तो वह सुशील बन जाता है। हम अपनी आदत (हैबिट्स) को बदल सकते हैं, अपने ढंग (सिसटम) को बदल सकते हैं—अपने भोजन के द्वारा। मनुष्य-जीवन का सबसे बड़ा आदर्श आत्मा है, उसको जानना और प्रभु को पहचानना। उसके लिए जरूरत है जिस्म की। हम सुन्दर साम्राज्य (रिफाइन्ड स्टेट) में जाना चाहते हैं तो खुराक को भी सुन्दर बनाना होगा। गीता में तीन प्रकार के भोजन का उल्लेख है—सात्विक, राजसी और तामसी।

सात्विक खुराक क्या है? फल, सब्जी, अनाज, मक्खन, दूध आदि। सात्विक खुराक से वृत्तियाँ भी सात्विक बनती हैं। मुझे लंबे अरसे से विभिन्न धर्मों को तुलनात्मक रूप से जानने का इत्तफाक हुआ है। हरएक मजहब में हमने देखा : यही तालीम है कि शाकाहारी बनो। बम्बई में जब पन्द्रहवाँ अन्तरराष्ट्रीय शाकाहार-सम्मेलन हुआ, तो हमसे पूछा गया कि तुमने पाश्चात्य लोगों के सामने किस प्रकार साबित किया कि शाकाहार जरूरी है? मैंने बताया कि मैंने उन्हें कहा

कि ईसा (क्राइस्ट) के दो 'गास्पेल' हैं और हमने उद्धरण प्रस्तुत किये। बतला दिया कि वे मांस नहीं खाते थे। उन्होंने कहा है कि जिसको तुम जिन्दगी नहीं दे सकते, उसे तुम क्यों मारते हो? फिर उन्होंने यह कहा — मैं तुम्हें मांस के बदले दूध देता हूँ (आई गिव थू मिल्क फॉर फुड)। दो हजार लोगों को अमेरिका में शाकाहारी बनाया। कई रेस्टोरन्टों में यह निश्चित हुआ कि हम ऐसी आय नहीं चाहते हैं, जिससे मांसाहार (नौनवेजिटेरियनिज्म) को प्रश्रय मिले। भारत में भी करीब २८ हजार लोगों को शाकाहारी बनाया गया। शाकाहारियों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही है। शाकाहार में शरीर हल्का रहता है, चुस्त और निरोग रहता है। ऐसी जड़ी-बूटियाँ हैं, जिसके एक-एक टुकड़े का असर कई अण्डों, डबल रोटियों से बहुत अधिक होता है। पर लोग उसे अधिक पौष्टिक कैसे मानेंगे? इसे आगे बढ़ाने के लिए नमूने बनाना होगा। नमूने बना कर देखो। कथनी से करनी जादा अच्छी है (एक्जांपल इज बेटर दैन प्रिसेप्ट)। तुम्हें देख कर तुम्हारे घर वाले, तुम्हारे बाल-बच्चे आपसे आप शाकाहारी बनेंगे। अच्छाई की शुरुआत अपने से ही होती है। बाहर जाकर प्रचार करने से पहले अपने को बनाओ।

भारत सदा से शाकाहारी था। आज भारतवर्ष में पश्चिम के मुकाबले में अधिक मांसाहारी लोग हैं। यह पेश किया जाता है कि उससे ताकत मिलती है, पर बात ऐसी नहीं है। मेरे पास हर धर्मों के उद्धरण हैं। एक छोटी-सी बात देखें। इस्लाम में परमात्मा का नाम रहमान, रहीम रखा गया है। जिक्र आता है कि एक शिकारी ने जंगल में एक हरिणी को मार दिया और उसके बच्चों को पकड़ कर ले आया। इस पर हजरत साहब ने उसे नमाज पढ़वाई। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि कोई किसी जानवर पर सवारी कर रहा है और वह जानवर थक जाय तो सवार उससे उतर जाय और उसे आराम करने दे। उन्होंने कहा कि अपना मांस खाओ लेकिन दूसरों का नहीं। सिक्ख मन्त्र में भी कहा गया है — "उद्दद करे पशु पंछिया, जाने नहीं काम, वे तो सात मनूखा खाता, माया जाल।" बौद्ध मत में है कि भगवान बुद्ध ने बिम्बीसारको कुर्बानी के लिए जाते हुए हजारों गायों को छुड़ा कर लाने का आदेश दिया था और बिम्बीसार को उन्हें छुड़ाना पड़ा था। यह फैसला पश्चिम वालों का भी है कि मांसाहार श्रेष्ठ भोजन नहीं है। दोनों ही पहलू-ताकत और धर्म-से सात्विक भोजन ही जरूरी है। आप इसके लिए नमूना बनें और फिर दूसरे स्वयं अनुकरण करेंगे। हमें दूसरों के दर्द को देखकर दर्द होना चाहिए। ● ● ●

महिमा संन्यासी महीन्द्र बाबा

मनु महाराज ने बताया कि मांस के लिए परोक्ष-अपरोक्ष रूप से पशु-हिंसा करनी पड़ती है। इसलिए मांसाहार धर्म-मार्ग से प्रतिबन्धक है। यदि विचार-शुद्धि से मांसाहार दूर हो जाय तो जगत् का अत्यन्त कल्याण सिद्ध हो। अहिंसा और मांस-भक्षण महा पाप है, इसलिए बताया गया कि मांस भोजन के परिणामस्वरूप आठ लोक दूषित होते हैं। हिंसा एवं मांस-भोजन से लोगों की प्रवृत्तियाँ कठोर होती हैं और निष्ठुरता आती है, इससे वातावरण दूषित हो जाता है। हिंसा-प्रतिहिंसा को प्रश्रय

मिलता है। मांस-भक्षण का मार्ग बहुत ही भयंकर, विदारक मार्ग है। इस विकट वृत्ति को यदि दूर नहीं किया गया, तो मानव-समाज पशु बन जायगा। दुख की बात यह है कि जिस उपाय से महाभारत हुआ, उसी उपाय से आज सरकार मांस, मछली, अण्डा आदि के भोजन को प्रोत्साहन दे रही है। यह पंचशील और पंच महाव्रत के मार्ग का घोर प्रतिबन्धक है। इसलिए हम विश्वपिता से प्रार्थना करते हैं कि हमारे शासक समाज में समस्त मानव के लिए श्रद्धा, गोसम्वर्धन, गो-दुग्धादि के अधिक उत्पादन के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम भर दे। ● ● ●

शाकाहार सम्बन्धी प्रस्ताव

इस सम्मेलन का यह दृढ़ अभिमत है कि अहिंसक समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए शाकाहार उसकी पूर्वस्थिति है, जिसे मानव को निश्चित रूप से पूरा करना होगा, इसके पहले कि वह शांति-प्रभात की अभिलाषा करे। इसलिए यह सम्मेलन सभी लोगों, राष्ट्रों तथा विश्व के सभी धर्मों से शाकाहार को अपने जीवन-व्यवहार में स्वीकार करने तथा मानव-भोजन एवं जीवन-यापन के लिए शाकाहार को प्रोत्साहन देने के लिए अपील करने का निश्चय करता है। साथ ही भोजन, मन-बहलाव या शौक और उद्योग के लिए होने वाली हिंसाओं को अधिकाधिक कम करने की अपील करती है।

प्रेम और सेवा

●

अबुल फजल हाजेघी (ईरान)

आज यहाँ पर हम सभी विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर-सहयोग तथा एक ऐसे मार्ग को खोज निकालने के लिए एकत्र हुए हैं कि जो सभी धर्मवालों के लिए समान हो और जिस मार्ग पर सभी चल सकें; जिससे मानव मात्र की भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति, उन्नति, समृद्धि एवं सुख-शांति का मार्ग प्रशस्त हो सके। सभी धर्मों एवं विश्वासों की शिक्षाओं में ईश्वर के अस्तित्व का वर्णन मिलता है और उसका अस्तित्व बहुत ही आवश्यक है। ईश्वर के अस्तित्व पर मेरा मत यह है कि संसार की सभी चीजों एवं जीवों का निर्माण उसी के द्वारा हुआ है। हम सभी उससे ही उत्पन्न हुए हैं और हमें उसका आदर करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि हम सभी का परस्पर स्वागत एवं सहयोग करें। हम लोगों पर इसके लिए यह उत्तरदायित्व है कि हम सभी एक-दूसरे से मिलकर और एक-दूसरे का सहयोग करके भाई-बहन के उद्देश्य को अब साकार करें। हम सभी जानते है कि सहयोग स्वयं सभी धर्मों और विश्वासों का एक आदर्श है। ऐसा इसलिए है कि हम सभी को ईश्वर ने शारीरिक एवं आध्यात्मिक सुख शांति के लिए उत्पन्न किया है। सभी धर्मों की यही शिक्षा है कि सभी इस उद्देश्य की प्राप्ति में एक-दूसरे का सहयोग करें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयत्न करने का उद्देश्य भी स्पष्ट है, क्योंकि हम लोग एक ऐसे युग में रह रहे हैं, जब कि एक ओर तो मनुष्य ने

भौतिक क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति कर ली है, वह अन्धकार की ओर अग्रसर हो रहा है और वह अपने को ईश्वर से बहुत दूर घसीट कर ले जा रहा है तथा संघर्ष, आतंक तथा भय की ओर अग्रसर हो रहा है। दूसरी ओर काफी संख्या में लोगों ने ईश्वर के मार्ग पर चल कर और उसकी एकता के सहारे परस्पर एक-दूसरे को भाई-बहन के रूप में समझने के उद्देश्य को मान लिया है। दूसरी ओर दूसरे धर्मों के मानने वाले जो धर्मों की शिक्षाओं के आधारभूत उद्देश्यों को समझ नहीं पाये हैं, ऐसा अनुभव करते हैं कि उन्हें उसे समझना चाहिए। उन लोगों ने मैत्री, प्रेम एवं सहयोग के हाथ दूसरों के साथ नहीं बढाये हैं। उन लोगों का अकसर यह मत रहा है कि चूँकि वे एक विशेष धर्म को मानते हैं, वे दूसरे धर्मों के अनुयायियों से भ्रातृत्व एवं हृदय और मस्तिष्क की विशालता के साथ हाथ नहीं मिला सकते। दूसरे शब्दों में अब वे उनसे भिन्न और अजनबी नहीं रह सकते। थोड़े से विचार से यह अनुभव हो सकता है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी होने पर भी हम लोग एक-दूसरे को समझ सकते हैं और सामान्य उद्देश्यों पर एकसाथ अग्रसर हो सकते हैं। हम लोग यह भी जानते हैं कि सभी धर्मों का आधार मावनता एवं सद्गुण है। सभी धर्म अपने अनुयायियों को मानवता, ईश्वर के प्रति आदर, श्रद्धा और स्नेह तथा परस्पर मानवमात्र में प्रेम एवं सहयोग की शिक्षा देते हैं। यदि हम अपने धार्मिक उत्तरदायित्व को सच्चे हृदय से और पूरी लगन से पूरा करना चाहते हैं, तो संसार में शांति एक वास्तविक तथ्य हो जाना चाहिए।

सर्वप्रथम हमें चाहिए कि सभी जीवधारियों को मैत्री, प्रेम, शांति एवं सहयोग और बन्धुत्व की भावना से देखें। धर्म का दूसरा सूत्र यह है कि सभी की सेवा की जाय। ईरान के एक कवि ने कहा है कि ईश्वर की पूजा मानवमात्र की सेवा के सिवा कुछ नहीं है, क्योंकि शिक्षा यह है कि यदि हम अपने पड़ोसियों से प्यार नहीं करते, तो हमें ईश्वर के लिए भी कोई प्यार नहीं है। मैत्री का सद्गुण ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने की एक कड़ी है, जिसने हम सभी को उत्पन्न किया है। हम लोगों को चाहिए कि अपने अन्तर को सभी प्रकार की बुराइयों एवं अवगुणों से दूर कर लें और ईश्वर के सभी जीवों को आदर एवं प्रेम की दृष्टि से देखें। हम लोगों को जहाँ तक संभव हो, दूसरे के प्रति सहायक एवं लाभदायक होना चाहिए। यद्यपि विभिन्न धर्म बाह्य रूपों में एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु सभी की आधारभूत शिक्षाएँ एवं उद्देश्य समान हैं। यदि कुछ धर्मों के अनुयायी यह अनुभव करते हैं कि वे दूसरे धर्मों के लोगों के साथ शान्ति, सौहार्द्र और प्रेम के वातावरण में नहीं रह सकते हैं तो उसका कारण यही है कि वे धर्मों के तत्त्वों के सही अर्थ को नही समझ पाये हैं। इसलिए सभी प्रकार के विभेद जो विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में पहले विद्यमान थे या आज भी हैं, इसी बात के प्रमाण है कि अभी तक धर्म के सार को समझना सम्भव नहीं हो सका है। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि सभी को समझने की कोशिश करें। प्राचीन ईरानी जरथुस्त्र धर्म तीन सिद्धान्तों पर आधारित है : सदाचार, सदुपदेश, सद्वचन। संक्षेप में इन शिक्षाओं का मन्तव्य यह है कि सभी कर्मकाण्ड और उसकी बुराइयाँ, प्रकाश एवं अन्धकार, उन्नति एवं अवनति के संघर्ष इसी बात को चरितार्थ करते हैं कि अंधकार के ऊपर प्रकाश का अच्छाइयों का बुराइयों के ऊपर विजय हो। सभी को चाहिए कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हों।

इस्लाम धर्म बन्धुत्व तथा सभी जीवों में समता के भाव पर आधारित है। वह किसी भी प्रकार की जाति या पन्थ की ऊँचाई या नीचता को नहीं स्वीकार करता है। कोई भी अपने को दूसरों से ऊँचा नहीं समझ सकता, जब तक वह सद्गुणी ईश्वर-भक्त तथा सभी के प्रति मानवीय नहीं है। इस्लाम का

मत है कि जो ईश्वर में विश्वास करते हैं, वे सभी एक ही शरीर के अंग हैं। इसलिए सभी लोगों को इसी प्रकार से समझना चाहिए। यदि एक को दुख होता है, तो सभी दूसरों को उसके प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। यहाँ पर हम ईरानी कवि शादी का उल्लेख करते हुए कहेंगे कि उन्होंने इस विचार को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। मानव मात्र एक ही शरीर के विभिन्न अंगों की तरह हैं, सभी का जन्म एक से ही हुआ है और परिणामस्वरूप यदि किसी एक अंग को किसी प्रकार की पीड़ा या तकलीफ होती है, तो उसके दूसरे अंगों को भी बेचैनी हो जाती है। यदि आप दूसरों के दुख दैन्यसे बेचैन नहीं हैं, तो आप मनुष्य कहलाने के लायक नहीं होते हैं। इस्लाम ने अपने अनुयायियों को यह आदेश दिया है कि सभी लोगों के साथ परस्पर भाई की तरह रहें और सभी से प्रेम तथा शान्ति का व्यवहार करें।

यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है और मेरे लिए गौरव का विषय है कि आप सभी की उपस्थिति में यह उद्घोषणा करता हूँ कि यद्यपि ईरान की अधिकाधिक जनता इस्लाम धर्म की अनुयायी है, फिर भी इस्लाम की ऊँची शिक्षाओं के प्रकाश में वे सभी गैर-मुसलमानों, गैर-देशवासियों तथा जरथुस्त्र, क्रिश्चियन, जुडिस्ट तथा भारतीय मित्रों के साथ परस्पर मैत्री व प्रेम से रहते हैं। एक ईरानी इस सम्मेलन के उन्नत आदर्शों के साथ है। मैं हृदय से सम्मेलन के संयोजकों को धन्यवाद देकर साथ ही भारत सरकार के अधिकारियों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की हैं। इस सम्बन्ध में ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह हम सभी को शांति के सच्चे उपासक बनाये।

• • •

प्राणिमात्र से प्यार

•

श्री अब्दुल मोनियम एम· खताब
(संयुक्त अरब गणराज्य, अल अजहर विश्वविद्यालय)

संयुक्त अरब गणराज्य, अल अजहर विश्वविद्यालय तथा इस्लामिक कांग्रेस के नाम से और तरफ से मैं आपका स्वागत करता हूँ और इसके लिए धन्यवाद देता हूँ कि आपने एक वक्ता के रूप में खड़ा होने का अवसर मुझे प्रदान किया। इस्लाम के बारे में बोलते हुए मैं कहूँगा कि इस्लाम पाँच स्तम्भों पर खड़ा है, जिसका उल्लेख हदीस में भी है। उन पाँच स्तम्भों में एक यह है कि हम जानें कि ईश्वर एक है और मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं। दूसरा, उसकी इबादत करना है, तीसरा, गरीबों को दान देना है, चौथा, उपवास करना है और पाँचवाँ यह है कि यदि हो सके तो तीर्थ-यात्रा पर मक्का जाना। हम लोगों को यह अवश्य जान लेना चाहिए कि वहाँ मुसलमान और गैरमुसलमान में कोई भेद नहीं है, क्योंकि कुरान में कहा गया है कि "ए मनुष्यो, हमने तुम्हें मर्द एवं औरत से उत्पन्न किया है और इसलिए एक-दूसरे को

जानने एवं पहचाननेकी कोशिश करो, न कि आपस में शत्रुता करो। तुम ईश्वर का आदर करो, क्योंकि वह सबसे पवित्र है।" कुरान में कहा है कि जिसने मनुष्यों और जिन आदि को उत्पन्न किया,

उसकी पूजा करो। उसे कुछ देना नहीं है, क्योंकि वह तो स्वयं सब कुछ दे सकता है। जहाँ इस तरह मनुष्यों से ही नहीं, प्राणिमात्र से प्यार करने की नसीहत दी गयी है, वही इस्लाम धर्म है। ● ●

समग्र जीवन-दृष्टि

●

श्री चुन्नीलाल दामोदरदास भवसार, बर्मा

शाकाहार हर दृष्टि से आवश्यक एवं उत्तम व्यवहार है। स्वास्थ्य की दृष्टि से शाकाहार करने वाले व्यक्ति का साधारणतया स्वास्थ्य अच्छा रहता है तथा उनमें मानसिक एवं शारीरिक शक्ति सदा

पायी जाती है। ऐसा इसलिए सम्भव है कि एक ओर जहाँ शाकाहारी भोजन में किसी प्रकार का हानिकर तत्त्व नहींरहता, दूसरी ओर प्रोटीन, विटामिन आदि सभी स्वास्थ्यवर्द्धक तत्त्व दूध, फल एवं शाक-सब्जियों में विद्यमान रहतेहैं। ऐसा सोचना मूर्खता है कि केवल मांस-मछली खाकर ही हम लोग स्वस्थ रह सकते हैं और शरीर का विकास कर सकते हैं। मानसिक एवं बौद्धिक विकास विशेषकर शाकाहारी भोजन से होता है और यदि हम स्वस्थ शरीर एवं तीक्ष्ण बुद्धि चाहते है तो शाकाहारी भोजन से बढ़कर उसके लिए सहायक कुछ नहीं है। दूसरी दृष्टि से निजी एवं राष्ट्रीय लाभ एवं हित का विचार किया जाय तो शाकाहार में हम उसके समर्थन के लिए सभी बातों को पाते हैं। साथ ही फल एवं शाक-सब्जी अधिक सुलभता से प्राप्त होने वाले हैं तथा मांस और मछली से अधिक सस्ता है। भारत के समान एशियायी देशों में तथा बर्मा में जहाँ जनसंख्या का अधिक भाग गाँवों में निवास करता है, शाकाहार का उपयोग और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। गाँवो में दूध, फल, शाक, सब्जी आदि अधिक सुलभ हे और यह केवल ऊपर से लादी गयी स्वाद-लोलुपता ही है, जिससे लोग मांस-मछली के ऊपर अतिरिक्त व्यय करते है। बर्मा, भारत या अन्य एशियायी देशों मे दूध, फल और शाक-सब्जी अभी भी मांस-मछली से अधिक सस्ता और बाजारो में अधिक सुलभ है। इसलिए आर्थिक दृष्टिकोण से भी तथा व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से भी शाकाहार अधिक युक्तिसंगत है। सद्भाग्य से मांस और मछली किसी भी दक्षिणी या पूर्वी एशियन देश मे मुख्य भोजन नहीं है। विभिन्न देशों में शाकाहार उन्नत राष्ट्रीय एवं आर्थिक प्रगति में भी सहायक हो सकता है। वृद्ध एवं विसुखी जानवर काफी संख्या में प्राप्य है। अतिरिक्त भोजन की कोई माँग नहीं है। भोजन के लिए अन्नोत्पादक पौधों और फसलों का अत्यधिक राष्ट्रीय महत्त्व है। जहाँ अधिकतर लोग शाकाहारी जीवन व्यतीत करते हैं, वहाँ उसकी आवश्यकता दूध, फल आदि के द्वारा कम की जा सकती है। शाकाहार पर चलने वाला व्यक्ति न केवल अपने स्वास्थ्य एवं निजी खर्च की दृष्टि से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति है, बल्कि वह एक देशभक्त तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से भी अधिक भला व्यक्ति है।

तीसरी बात, जिसका स्थाई महत्त्व है, वह आध्यात्मिक एवं मानसिक उन्नति एवं विकास का दृष्टिकोण है। शाकाहार की आदत एवं व्यवहार से जो स्वास्थ्य और आनन्द का विकास होता है, वह

उससे प्राप्त होने वाली मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वच्छता एवं स्वस्थता के समक्ष नगण्य है। मेरा विश्वास है कि एक शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारी व्यक्ति से अधिक पवित्र होता है। इन विचारों के इन आधारों से इस बात को नहीं टाला जा सकता कि शाकाहार से एक आध्यात्मिक संतोष प्राप्त होता है और मानसिक शान्ति, सन्तुलन तथा सारे संसार से एक शान्तिमय सम्बन्ध स्थापित होता है, जो मांसाहारी को दुर्लभ है। यही तथ्य कि शाकाहार से आध्यात्मिक एवं मानसिक शान्ति का लाभ होता है, इस बात का आधार है कि शाकाहार से किसी प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से किसी प्रकार कोई हानि नहीं होती है। शाकाहारी लोगों के लिए उनके समक्ष शान्ति और अहिंसा के महान सिद्धान्तों की, उपदेशों की जरूरत नहीं होती। वह उन सिद्धान्तो का जीता-जागता रूप होता है और वह विशुद्ध रूप से सभी जीवों के प्रति प्रेम और समानता के भाव से जीता है। संसार के सभी जीवों-चाहे वह पशु-पक्षी या कीट-पतंग ही क्यों न हो, या कितना ही छोटा या बड़ा जीव क्यों न हो, उसे समान समझना और उससे अपनी उदर की पूर्ति न करना ही उसका लक्ष्य होता है। यदि कोई मांस या मछली आदि का भक्षण करता है, तो वह मनुष्य कहाने के योग्य नहीं है। इस प्रकार एक शाकाहारी व्यक्ति न केवल वैचारिक दृष्टि से एक महान एवं उत्तम पथ पर चलता है, बल्कि एक उन्नत भावना पर आधारित प्राकृतिक पथ का भी अनुसरण करता है। शाकाहार में एक मानसिक संतुष्टि मिलती है।

बर्मा के ह्यूमेनिटेरियन लीग के संयुक्त मन्त्री के रूप में, प्रतिनिधि के तौर पर जो मुझे अपने विचारों को आपके समक्ष रखने का अवसर दिया गया, उसके लिए मुझे प्रसन्नता है। जब श्री ऊ नू० बर्मा के प्रधान मन्त्री थे, तो उन्होंने वहाँ मानवतावादी कार्यों को काफी सहयोग प्रदान किया। एक स्लॉटर हाउस बिल भी पास किया गया और उसके द्वारा सभी कसाईखानों को वर्ष में ३० दिनों के लिए बन्द किया गया, जिसमें दो दिन पर्यूषण तथा एक दिन जन्माष्टमी का भी सम्मिलित है। जब षष्ठ बुद्ध-कौंसिल का आयोजन किया गया था, तो समस्त बर्मा के सारे कसाईखानों को बन्द किया गया था।

● ● ●

मानवीय दृष्टिकोण

●

श्री सच्चिदानन्द भक्तिप्रभा
(संयुक्त मन्त्री, गौड़ीय वैष्णव समाज)

'शाकाहार' शब्द सम्पूर्ण एवं जीवित होता है। एक विशेष अर्थ में मांस-मछली, अण्डा, मुर्गी आदि के आहार का त्याग है। शाकाहार का पालन एक धार्मिक आचार है, जो पूर्व में विशेषकर जैन वैष्णव तथा बौद्धों के सावद्य वर्ग में हजारों वर्षों से चला आ रहा है। अशोक, मिल्टन, पोप, शेली, अहमदिया आदि सरीखे महापुरुषों ने भी शाकाहार का समर्थन किया है। इंगलैण्ड में शाकाहार आन्दोलन १८०९ में प्रारम्भ हुआ और मैनचेस्टर तथा लण्डन में स्वतन्त्र रूप से इसका कार्य चलता रहा। शाकाहार के सम्बन्ध में वैचारिक, आध्यात्मिक, स्वास्थ्य, पौष्टिकता आदि अनेक तर्क हैं और इस पर विचार करना संक्षेप में पूर्ण रूप से सम्भव नहीं है।

साधारणतया वैचारिक एवं मानवीय दृष्टिकोण से यह कहा जाता है कि किसी भी जीव को किसी प्रकार से दुख, तकलीफ पहुँचाना धार्मिक विचारों के विरुद्ध है और उच्च मानवीय विचारों के भी विरुद्ध है। भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ शाकाहार का विकास शताब्दियों पूर्व हुआ। अनेक विचारकों, ऋषियों, मुनियों आदि ने शाकाहार के समर्थन में अनेक विचार प्रस्तुत किये हैं और वे विचार स्वास्थ्य, आध्यात्म, रासायनिक तत्त्वों आदि के आधार पर हैं तथा यह भी विचार है कि वह एक पापकर्म है कि जानवरों का वध भोजन के लिए किया जाय। यह एक गलत धारणा है कि पशुओं में आत्मा, मष्तिष्क, भाव और विचार नहीं है। हिन्दू धर्म, जैन धर्म तथा बुद्ध धर्म मानव-विकास के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। ये लोगों को सिखाते हैं कि जीव विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। पशु एवं वनस्पति एक-दूसरे से सृष्टि के विकास में परस्पर-सम्बन्धित हैं। उनमें भी दुख-दर्द का अनुभव होता है। हाँ, कोटि में भेद हो सकता है। जैन एवं बुद्ध धर्म में हत्या पूर्ण रूप से वर्जित है और अहिंसा उनका आधारभूत सिद्धान्त है। मनुष्य को हत्या का विरोध नैतिक नियमों के आधार से और लोगों के नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर को उन्नत बनाने की दृष्टि से करना चाहिए।

ईश्वर ने संसार का निर्माण किया। इस सृष्टि में कोई भी छोटा नहीं है। सभी समान हैं। परन्तु महत्त्वाकांक्षी लोगों ने अपने को जाल में फँसा लिया है, और अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं का विस्तार करते जा रहे हैं। उनके द्वारा प्रकृति के शोषण ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है, जिसका प्रभाव एवं परिणाम अकाल, सूखा, बाढ़ आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। अनेक वैज्ञानिक एवं मानवतावादी इस विचार के कायल हैं और इस योजना के संगठन पर विचार कर रहे हैं। शाकाहारी भोजन ही आध्यात्मिक विकास को सहायता पहुँचा सकता है।

सभी विचारक शुद्ध भक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने का साधन बताते हैं। प्रेम ही अन्तिम चरम लक्ष्य है। ● ● ●

करुणा का दर्शन

●

भिक्षु थिच मिह चाउ

(वियतनाम)

मुझे अपने आप को इस शाकाहार-सम्मेलन से सम्बन्धित कर तथा उसके बारे में आपके सामने अपने विचारों को रखते हुए अतीव प्रसन्नता हो रही है। मैं गत १४ वर्षों से शाकाहारी हूँ और इसलिए मैं अपने अनुभव की कुछ बातें शाकाहार के संबंध में रख रहा हूँ।

सर्वप्रथम मैं अपने देश, वियतनाम में शाकाहार का क्या रूप है, उसके बारे में कहना चाहता हूँ। वियतनाम मुख्यतया एक बुद्धिष्ट देश है और वे सभी काफी निष्ठा के साथ शाकाहार का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अण्डे का भी प्रयोग नहीं किया जाता और कुछ भिक्षु तो ऐसे हैं कि दूध का भी उपयोग नहीं करते। यदि दूध का उपयोग करते हैं, तो वे शतप्रतिशत शाकाहारी नहीं समझे जाते

हैं। वियतनाम में उनके बीच चमड़े की सामग्रियों का उपयोग भी वर्जित है और विशेषकर वे जब मन्दिरों में जाते हैं, तो नारियल के रेशे से बनी एक प्रकार की चप्पल का प्रयोग करते हैं। वहाँ न केवल भिक्षु ही शाकाहार का पालन करते हैं, बल्कि अन्य साधारण लोग भी पूर्ण रूप से शाकाहार का पालन करते हैं। कुछ लोग शाकाहार का पालन महीने में १५ दिन, ८ दिन, ६ दिन या ४ दिन करते हैं। परन्तु सभी बुद्धिष्टों को महीने में दो दिन तो निश्चित रूप से शाकाहार का पालन करना ही पड़ता है। वे युवक जो बुद्धिष्ट हो जाते हैं या बुद्धिष्टों के बच्चों को भी महीने में दो दिन तो शाकाहार का पालन करना ही पड़ता है, अर्थात् चन्द्र मास के प्रथम और १५ वें दिन तो उन्हें शाकाहार का पालन करना ही पड़ता है।

अब मैं शाकाहार के पालन का अपना अनुभव बताना चाहता हूँ। सर्वप्रथम इस आचरण के द्वारा हम सभी जीवों के साथ परस्पर करुणा के भाव का पालन करते हैं और प्रेम एवं दया के भाव का विकास करते हैं, जो भगवान बुद्ध ने अपने सभी अनुयायियों को सिखाया है। भगवान बुद्ध ने साधुओं को भोजन का अवशिष्टांश हरी घासों पर फेंकने से मना किया है, जिससे उन्हें कष्ट न हो। इसलिए यह स्वाभाविक है कि शाकाहारी भोजन बुद्ध धर्म की दया, करुणा और प्रेम के आदर्शों के अनुकूल है। ●●●

शाकाहारी भोजन के द्वारा हमारा रक्त उन विकारों से शुद्ध रहता है, जो पशु-भोजनों से उत्पन्न होता है। जब एक पशु की हत्या की जाती है, तो उसकी बहुत ही दुखद एवं पीड़ाप्रद मृत्यु होती है। वह हत्या करने वाले के प्रति घृणा के भाव तथा क्रोध एवं भय से आतंकित होकर मरता है, जिससे उसका मांस विषाक्त हो जाता है और उसका चिरस्थाई प्रभाव उसको खाने वाले पर होता है। यदि हम पशुओं में भी शाकाहारी और मांसाहारी पशुओं की तुलना करें तो हमें शीघ्र ही उनका अन्तर समझ में आ जायेगा। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि यदि भली प्रकार से शाकाहार का भोजन किया जाय, तो वह शरीर को स्वस्थ एवं मजबूत रखने की दृष्टि से बहुत ही लाभदायक है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम लोग शाकाहार के प्रसार के लिए प्रयत्न करें और शाकाहारियों के हाथों को सहयोग प्रदान कर सशक्त बनायें।

दुखद स्थिति

●

भिक्षु विवेकानन्द

(थाइलैण्ड)

आपके समक्ष मैं जो विचार रख रहा हूँ, उससे आप दुखी नहीं हों, क्योंकि वह एक सत्य है। इन दिनों मांसाहारियों की संख्या बढ़ रही है, मिनट-मिनट और प्रति घन्टे उनकी संख्या बढ़ रही है। यह एक सत्य है। आज संसार का वातावरण चारों ओर से युद्ध-जनित वातावराण

से घिरा है। लोगों को अपनी जीविका के लिए अपने को परिस्थितियों के अनुसार बनाना पड़ता है। इसलिए थाइलैंड, जापान, बर्मा, कम्बोडिया, लाओस आदि के बुद्धिष्ट भी मांसाहारी हैं। भारत में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, पटना के ब्राह्मण, हिन्दू भी मांस, मछली, अण्डा आदि खाते हैं। यह आज की वस्तुस्थिति है और हमें सोचना है कि क्या किया जाय। हमें उन लोगों में शाकाहार के प्रति रुचि उत्पन्न करनी चाहिए!

हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि धर्मों के अनुयायियों को शाकाहारी होना चाहिए। परन्तु आज वे शाकाहारी नहीं हैं अतः मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप स्वयं को शाकाहारी बनाइये और उसके लिए अपने परिवार तथा कार्यालय के सदस्यों में अभिरुचि उत्पन्न करने की कोशिश कीजिये। यदि आप किसी रोग या स्वभाव के कारण मांस-मछली आदि नहीं खाते हों, तो सही अर्थ में आप शाकाहारी नहीं कहला सकते। आपको पशुओं के प्रति दया का भाव रखना चाहिए। यदि आपमें सभी जीवों के प्रति दया और करुणा का भाव नहीं है, तो आप केवल परम्परा के कारण शाकाहारी नहीं कहला सकते।

मुनिश्री सुशील कुमार

आप जानते हैं कि पुरातन धर्मों के अन्दर सभी धर्मों का दृष्टिकोण शाकाहार के प्रति एक-सा ही नहीं है। कुछ धर्मों में, जैसे इस्लाम, ईसाई, कन्फ्युशियस और शिन्तो धर्मों में शाकाहारी जीवन को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। हालाँकि इन धर्मों के आचार्यों ने भोजन के अन्दर मांस को विशेष स्थान नहीं दिया, फिर भी मांस को त्याज्य भी नहीं बताया गया। यह ठीक है कि इन धर्मों में भी जानवरों के प्रति अत्यन्त दयालुतापूर्ण बर्ताव करने का आदेश है; फिर भी धार्मिक पूजा में और भोजन में भी जानवरों को कत्ल करने के लिए इन धर्मों के अन्दर कोई आपत्ति नहीं थी। इसके विपरीत अन्य धर्मों के अन्दर जैसे जैन, ताओ, वैष्णव आदि धर्मों में शाकाहारी जीवन को अत्यन्त प्रधानता दी गयी और धर्म के मूल स्वरूप के सिद्धान्त का प्रथम सोपान शाकाहारी जीवन को माना गया है। बुद्ध धर्म के अन्दर भगवान बुद्ध ने जीवों पर दया और माँसाहार के निषेध को प्रधानता दी थी। जहाँ तक हिन्दू धर्म और यहूदी धर्म का सवाल है, इन धर्मों के अन्दर मांसाहार को भोजन के लिए ज्यादा प्रधानता नहीं दी गयी है, फिर भी बलि की प्रथा को महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस तरह विभिन्न धर्मों के इस सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण हैं और इन धर्मों के अन्दर शाकाहारिता पर जो जोर दिया गया है वह अलग-अलग तरह का है। इस विरोधाभास का स्पष्ट रूप से दर्शन हम मनो-संज्ञता में करते हैं, जहाँ मांसाहार को बहुत बड़ा पाप मानते हुए भी यज्ञ और बलि के अन्दर उसको त्याज्य नहीं माना गया। जैसे-जैसे समय बढ़ता गया, वैसे-वैसे इन सभी धर्मों के अनुयायियों ने शुरू के विश्वासों को भुलाया और अपनी जीभ के स्वाद के लिए मांसाहार अधिक रूप से अपनाया। इस कथन का सबसे अधिक उदाहरण हमें हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में मिलता है। जहाँ हिन्दू धर्म के अन्दर मांसाहार की प्रधानता क्षत्रियों एवं शूद्रों में पायी जाती थी, वहाँ इस प्रथा का प्रचलन अब समाज के सभी वर्गों में होता जा

रहा है। इसी तरह बुद्ध धर्म के अनुयायियों ने भी मांसाहार करने और बुद्ध भगवान के उपदेशों से बचने के लिये अनेक रास्ते निकाल लिए हैं। जैसे बुद्ध लोग जानवरों को मारते नहीं, लेकिन ये लोग जानवरों का गला इस तरह से घोंट देते हैं कि जानवर थोड़े समय के बाद तड़फ-तड़फ कर अपने-आप मर जाते हैं! इसी तरह जानवरों के मारने के लिए हिन्दू धर्म, यहूदी धर्म में अलग-अलग तरीके माने गये हैं। कुछ दिन तक यहूदियों के अन्दर भी बलि देने की प्रथा बंद रही और उनके फिर कुछ दिन तक शाकाहारी भी रहे।

इस बात से हमें यही मालूम देता है कि अलग-अलग धर्मों के आचार्यों ने जानवरों पर दया करने का उपदेश दिया है। लेकिन उनमें से बहुत से आचार्यों ने भोजन या यज्ञ के लिए जानवरों को मारना निषिद्ध नहीं माना है। धर्माचार्यों के इस रुख से उनके अनुयायियों ने बहुत ही फायदा उठाया और जहाँ पर जैसा रास्ता निकाल सकते थे, वहाँ वैसा ही रास्ता निकाल कर अधिक-से-अधिक मांस खाने के तरीके ढूँढ़ निकाले। इन बातों का नतीजा यह हुआ कि आज संसार में मांसाहारियों का बहुत बड़ा बहुमत है और शाकाहारियों की संख्या अधिक-से-अधिक ५ करोड़, सारे संसार भर में है। हमें यह देखना है कि शाकाहारी जीवन को अधिक लोगों ने क्यों नहीं अपनाया और मांसाहारियों की संख्या संसार में इतनी अधिक क्यों हुई! जब हम मांस शब्द की बात करते हैं, तो उससे हमारा मतलब मांस, मछली और अंडे सभी से है। लेकिन दूध, दही, मक्खन और दुग्धजन्य अन्य पदार्थों से नहीं है। मैं जानता हूँ कि योरोप में कुछ 'वेजीटेरियन' लोग अंडे को भी मांस नहीं मानते और अन्य कुछ लोग दूध को भी मांस मानते हैं! लेकिन इस बारे में मुझे ऐसा लगता है कि दूध को मांस मानना गलत खयाल है, क्योंकि संसार में जितने चौपाये हैं, उन सभी को अपने जन्म से ही कुदरत की ओर से भोजन के रूप में माता का दूध दिया जाता है। मांस शब्द से मेरा मतलब अंडे, मछली इत्यादि सभी से है। इस मांस की व्याख्या को आगे लेकर हमें यह सोचना है कि संसार में मांसाहार का अनुपात इतना अधिक क्यों है और धर्माचार्यों के उपदेशों का उनके अनुयायियों पर अधिक असर क्यों नहीं पड़ा?

वातावरण

●

सबसे पहला कारण जो मेरी समझ मे आता है, वह है मनुष्य का प्राकृतिक वातावरण। हिन्दुस्तान में या अन्य उर्वरा देशों के रहने वालों ने इस बात का अंदाजा लगाया है कि बहुत से स्थानो के अन्दर मनुष्य बहुत-सी हालातों में रहता है, जहाँ जीवन के लिए और भोजन के लिए संघर्ष बहुत विकट है और मनुष्य का सांस्कृतिक धरातल बहुत नीचा है। उदाहरण के लिए आर्टिक समुद्र में, सभी अत्यधिक शीत-प्रदेशों के अन्दर, दरिया के बीच में, रेगिस्तान में और पठारों के अन्दर मनुष्य का रोज-रोज का संघर्ष इतना कठिन है कि उसका सारा जीवन और जीवन का प्रतिदिन भोजन की तलाश करने में ही बीतता है। जिन जातियों के अन्दर खेती की प्रथा नहीं रही, या कम रही उन जातियों के अन्दर तो दूसरे को खाकर पेट भरने के सिवाय अन्य कोई रास्ता ही नहीं रहा था। हमें इस बात का पता नहीं है, लेकिन फिर भी यह सत्य है कि जो आदमी पर्वतों की खोहों में, दो सौ-दो सौ फीट ऊँचे बाँस के मचानों पर, बड़े-बड़े वृक्षों की चोटियों पर, बर्फीले मैदानों में, पर्वतों की चोटियों पर एवं ऐसे ही अन्य

अनेकों कठिन स्थानों पर निवास कर रहे हैं, यदि वहाँ पर किन्हीं सभ्य जातियों का आदमी जाय तो उसे गश आने लगेगी। ऐसे स्थानों पर रहने वाले आदमी आपद् धर्म के रूप में अपने आस-पास में रहनेवाले जानवरों, मछलियों, कीट-पतंगों को खा करके ही अपना पेट भरने लगे। इस तरह धीरे-धीरे उन लोगों की यह जातीय आदत बन गयी। इसी तरह योरोप, कनाडा, अमरीका, सायबेरिया जहाँ कहीं भी किसी शहर में लोगों को खाने की तकलीफें आने लगीं, उन्होंने मांस खाना शुरू कर दिया। गांधीजी अपनी माँ से शपथ लेकर कि मैं मांस नहीं खाऊँगा, विलायत चले गये, तो वहाँ पर उनके एक अंग्रेज बुजुर्ग मित्र ने इस बात को मानना उचित न समझा, क्योंकि उनका विश्वास था कि बिना मांस खाये कोई भी आदमी इंग्लैण्ड की आब-हवा में कैसे रह सकता है। ऐसी ही कठिन परिस्थितियों में बहुत से धर्मों के लोगों ने मांस खाना स्वीकार किया और बाद में वह उनकी राष्ट्रीय एवं जातीय आदत बनती चली गयी। जैसे-जैसे खेती का प्रचलन शुरू हुआ, वैसे-वैसे ही मनुष्य को यह समझ में आया कि मांसाहार के बिना भी जीवन यापन करने का एक उत्कृष्ट तरीका मानवता के सामने मौजूद है। कन्द-मूल, फल खाने को जब मिलते थे, तो मनुष्य ने इससे पूरा पेट भरना शुरू किया, यह मानना सम्भव नहीं है। अंत में खेती के कठिन संगठन के बाद ही मनुष्य को यह अन्दाज लगा कि जमीन से जो कुछ तथा जितना कुछ मिल सकता है, वह जानवरों को खाने से मिलना सम्भव नहीं है। इस संबंध में शाकाहारिता के सबसे पहले प्रवर्तक और जैन धर्म के आदि तीर्थंकर श्री रिषभ देव का मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ, जिन्होंने प्रजा पर दया करके उन्हें खेती का तरीका सिखाया। इतिहास के इन उपाख्यानों से हमें यही समझ पड़ता है कि खेती के प्रचलन के साथ ही शाकाहारिता का रास्ता मनुष्य जाति की समझ में आया। लेकिन पुरानी आदत पड़ी होने के कारण मनुष्य ने खेती से अधिक अन्न पैदा करना तो शुरू किया, लेकिन मांसाहार भी साथ-साथ चलता ही रहा। इसका कारण यह था कि मनुष्य अपने खेतों को उतना उपजाऊ नहीं कर पाता था, जितनी की उसको जरूरत थी। खेती के अलावा भी मनुष्य को बहुत-से काम करने पड़ते थे। जैसे उद्योगधंधे, व्यापार, आत्म-रक्षा और अध्ययन आदि। इसलिए जनसंख्या का सारा भाग खेती के अन्दर लगाया नहीं जा सकता था और इसी कारण से खेतों में पूरा अनाज उपज नहीं सकता था। साथ ही साथ मनुष्य को अधिक अन्न उपजाने का तरीका भी मालूम नहीं था, सिंचाई का इन्तजाम बहुत कम था, खेती के नियम भी अधिक रूप में मालूम नहीं थे। इन सब कारणों से खेती में अनाज पूर्ण रूप से होता नहीं था। ऐसी हालत में आस-पास के जानवरों को खा लेना कोई बड़ी बात नहीं थी। लेकिन जैसे-जैसे खेती का विकास हुआ, वैसे-वैसे मनुष्य को अपने पर आत्मविश्वास होने लगा और मनुष्य ने यह भी समझना शुरू किया कि जिन-जिन जानवरों का मांस वह खाता आया है, वे भी खेती के काम में उसके बहुत बड़े सहयोगी हो सकते हैं। साथ ही साथ उनके बिना मारे ही उनसे बहुत अधिक भोजन प्राप्त हो सकता है। इस तरह मनुष्य के जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आरम्भ हुआ। मनुष्य तेज दौड़ने के लिए हाथी, घोड़ों, ऊँटों को प्रयोग में लाने लगा। दूध खाने के लिए वह गायें, भैंसें तथा बकरियों को, और ऊन के लिए भेड़ों और बकरियों का सहारा लिया और खेती में काम करने के लिए बैलों, घोड़ों और ऊँटनी का सहारा लिया। ये सभी जानवर मनुष्य के लिए उसके कमाने वाले साधन के रूप में हो गये और इनको 'धन' कहा जाने लगा। इस धन को हड़पने से बचाना धीरे-धीरे मनुष्य अपना कर्तव्य समझने लगा और हालांकि यदा-कदा वह उन्हें मारकर खा भी जाता था। सभी खेतीहर और चराई की संस्कृतिवाले मुल्कों में हम यह देखते हैं कि मनुष्य का अपने ढोरों के साथ आत्मीय संबंध रहा है और किसी भी ढोर के किसी भी कारण

से नष्ट हो जाने पर उसी तरह का दुख होता था, जैसे कि कोई घर का आदमी मर गया हो ! आज विज्ञान के इस युग में ढोरों की जगह मशीनें ले रही हैं, फिर भी ढोर वह काम करते हैं, जिनका करना मशीनों के लिए सम्भव नहीं है। यही कारण है कि अरब के लिए अपने ऊँट और घोड़े का और एक हिन्दुस्तानी के लिए अपनी गायों और भैंसों का, एक बर्मी के लिए अपने हाथी का बहुत अधिक मूल्य है। यह रिश्ता जैसे-जैसे बढ़ता गया; वैसे-वैसे इन ढोरों को मारना भी गुनाह माना जाने लगा और हिन्दू धर्म तथा जरथुस्ती धर्म के लोगों ने अपनी गायों और भैंसों की रक्षा करना अपना एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य माना। श्याम के अन्दर सफेद हाथियों को पूजा गया तथा इसी प्रकार अनेक देशों की अनेक जातियों में अपने जानवरों को इष्ट जानवर माना गया।

अनुभूति

•

शाकाहारी जीवन बिताने की इच्छा इसी बढ़ते हुए रिश्ते का एक विकसित रूप है। आदमी को जिससे काम पड़ता है, आदमी उसी का सम्मान करता है और इज्जत की निगाह से देखता है। इस तरह मनुष्य में दया, प्रेम और सहानुभूति पैदा होने वाले धर्म ध्यान का भी विचार आया और उसने देखा कि जिस तरह वह स्वयं सोता है, खाना खाता है, अपने से ताकतवरों से डरता है, ठंढी-गरमी से बचने की चेष्टा करता है, उसी तरह संसार के प्राणीमात्र को ऐसी ही तकलीफ एवं आराम का अनुभव होता है। मनुष्य ने प्रकृति के अन्य जानवरों को, एक-दूसरे जानवर को खाते हुए देखा तथा उसने यही नतीजा निकाला कि चूँकि इन जानवरों का सांस्कृतिक स्तर बहुत नीचा है और अपनी भोजन की समस्या भी अन्य किसी तरह से सुलझा नहीं सकते, इसलिए उनके पास दूसरे जानवरों के खाने को छोड़ कर और दूसरा कोई जरिया ही नहीं है। लेकिन मनुष्य को अपनी संस्कृति का बहुत अभिमान था और उसे यह भी विश्वास था कि बुद्धि के विकास के साथ-साथ वह इतना अनाज पैदा कर सकेगा जिससे कि पूर्ण मानव जाति का भी पेट वह भर सके। मनुष्य को धीरे-धीरे जब पूरा ज्ञान होता गया, तो उसने भी अपनी ही तरह दूसरों के जीवन को भी समझना शुरू किया। धीरे-धीरे मनुष्य ने यह सोचना शुरू किया कि उसे अपनी बुद्धि को अपने विकास की तरफ लगाना चाहिए। अंत में उसको समस्त संसार से अनुभूति प्राप्त हुई और धीरे-धीरे उस सह-अनुभूति ने इतना उग्र रूप धारण किया कि मनुष्य ने संसार के सभी जानवरों को बचाने का भार अपने ऊपर ले लिया। यह सभी मनुष्यों के लिए सही नहीं था। सिर्फ उन्हीं के लिए सही था, जिन्होंने अपने जिम्मे इस जिम्मेदारी का काम लिया था फिर इसी तरह सोचने वाले ने आगे चल कर विभिन्न धर्मों की नींव डाली। बीच-बीच में सभ्यताओं का उत्थान और पतन होता रहा तथा जब सभ्यताएँ आगे बढ़ीं तो मनुष्य की सह-अनुभूति भी आगे बढ़ी। यदि उसके साथ सभ्यताओं का अर्थ धन, दौलत और शक्ति से ही लगाया गया, तो इन सभ्यताओं का भी पतन हो जायगा और मनुष्य की सह-अनुभूति का भी पतन हो जायगा। शाकाहारिता का सिद्धान्त एक देश या वातावरण में पनपा हो, यह समझना भूल है, क्योंकि हम देखते हैं कि जिन-जिन देशों में सभ्यताओं का उदय हुआ, उन-उन देशों मे साथ ही साथ शाकाहारिता का पौधा भी पनपा। पुराने ग्रीस और मिश्र एवं पुराने यहूदी धर्मों के वातावरण मे कोलम्बस के पता लगाने से पहले ही अमरीका की सभ्यताओं के वातावरण में बराबर मनुष्य ने मांस खाने को हेय समझा। इसी तरह पुराने टाओ आदि

धर्मों के अनुयायियों ने भी मांस इत्यादि खाना हेय समझा। आज भी योरोप, अमरीका और रूस में मनुष्य की बुद्धि बढ़ रही है तो उन देशों के अन्दर भी शाकाहारिता का आन्दोलन समय-समय पर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है। इस तरह सभ्यता और शाकाहारिता के पनपने में सीधा संबंध है। इतना होने पर भी संसार के अधिकांश लोग मांसाहारी क्यों हैं और बुद्धि का विकास होने के साथ भी संसार में मांस-उत्पादन और भोजन क्यों बढ़ रहा है, ये समझने की बातें हैं।

मांसाहार क्यों

●

इस संबंध में हम अलग-अलग कारणों को विभाजित कर सकते हैं। पहला कारण यह है कि विज्ञान के आविष्कारों का आविर्भाव अधिकांशतः शीत कटिबन्ध या ठंडे मुल्कों में हुआ। यही कारण है कि ये मुल्क शिक्षा, धन और दौलत आदि के मामले में आगे बढ़े हुए हैं। इसका असर यह हुआ कि ठंड से संबंधित मुल्कों पर ये जातियाँ विजय प्राप्त न कर सकीं और उन्होंने मांसाहार को प्रोत्साहन नहीं दिया। चूँकि इन जातियों ने संसार के अन्य देशों के अन्दर भी विजय प्राप्त की; इसलिए इनकी देखा-देखी अन्य जातियों ने भी मांस खाना शुरू कर दिया। दूसरा कारण यह है कि मांसाहार के कारण मनुष्य के दिमाग में जो भयंकरता पैदा हुई, उससे उसे दूसरों को दबोचने एवं लूटने की भावना को प्रोत्साहन मिला। तीसरा कारण मांसाहार का यह है कि संसार की जनसंख्या जितनी तेजी से बढ़ रही है, उतनी तेजी से भोजन का उत्पादन नहीं बढ़ रहा है तथा यही कारण है कि संसार की अनेक जातियों के पास भोजन की कमी रह जाती है और सबको अपनी इस कमी की पूर्ति मांसाहार से करनी पड़ती है। जब तक हम इन कारणों को दूर करने में सफल नहीं होंगे, तब तक इस मासाहार को भी हम दूर नहीं कर सकते। इस समस्या का इलाज ढूँढ़ने की चेष्टा हमें करनी चाहिए और इसके लिए हमें अपना अनुसंधानात्मक प्रतिष्ठान कायम करना चाहिए। जहाँ तक समझ पड़ता है, मैं आपको बताने की चेष्टा करता हूँ।

पहला कारण जो ठंड से संबंध रखता है, उसके बारे में मुझे इतना ही कहना है कि मांस से जो गरमी पैदा होती है उतनी ही या उससे अधिक गर्मी हमें दुग्धजन्य पदार्थों से मिल सकती है—बशर्ते कि दूध पूरे माप में उपलब्ध हो। दूसरी समस्या, जो कि मांसाहारियों के प्रभुत्व से संबंध रखती है, उस बारे में मेरा विचार है कि मांसाहार की प्रवृत्ति को त्याज्य समझें और अगर हम आत्मरक्षा के सिद्धान्त को भी स्वीकार करें, तो भी हमें यह सोचना चाहिए कि दुग्धजन्य पदार्थों से भी हम अपनी आत्मरक्षा उसी तरह से कर सकते हैं जिस तरह से कि मांसाहारी जातियाँ कर सकती हैं। इस संबंध में मैं आपके सामने पंजाब और राजस्थान के जाटों के उदाहरण रखता हूँ, जो कठिन से कठिन परिस्थितियों के अन्दर भी, अपने विरोधियों से, जो कि अधिकांश मांसाहारी थे, उनसे बराबर डटकर लड़े। अगर प्रत्येक जाति भय के आभास को सोचने लगी तो एक ऐसे शस्त्रीकरण का अभियान उठेगा, जो कि अन्त में मनुष्य जाति को नष्ट कर देगा। इसलिए हमें आत्म रक्षा के विचार से ऊपर उठना है और ऐसी हालत पैदा कर देनी है, जिसमें आत्मरक्षका की आवश्यकता ही न रहे। ऐसी हालत तभी पैदा हो सकती है, जब कि अधिक-से-अधिक संख्या में लोग शाकाहारिता को अपनायें। जहाँ तक दूसरी समस्या का सवाल है, जिसका सम्बन्ध बढ़ती हुई आबादी और भोजन की कमी से है, उस सम्बन्ध में हमें सोचना है कि बढ़ती हुई आबादी का पहला कारण मांस खाना तथा दसरा कारण अनियंत्रित व्यभिचार

है। इस तरफ मांस खाने की प्रवृत्ति को अगर हम कम करते हैं, तो जन-संख्या की वृद्धि कुछ दूर तक कम हो सकती है। साथ ही अगर हम संयम से काम लेना शुरू करें, तो भी हम कुछ समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। जहाँ तक भोजन की कमी का सवाल है, हमें यह समझना चाहिए कि मांस जिन जानवरों का खाया जाता है उनकी पूर्ति के लिए भी हमें अन्न उपजाना पड़ता है। अगर इसी तरह हम मांस के बजाय अन्न खाना शुरू करें, तो हमें उसी खेती से बहुत अधिक अन्न उपलब्ध हो सकता है। इन्हीं जानवरों को अगर हम दूध पैदा करने के लिए पालना शुरू करें, तो हमें भोजन की कमी दूर करने में अत्यधिक सहायता मिले, क्योंकि किसी भी जानवर का मांस एक बार ही खाया जा सकता है, जब कि उसका दूध हर साल खाने को मिल सकता है। इस तरह हम एक जानवर का मांस खा करके उस जानवर से प्राप्त होने वाले दूध से वंचित हो जाते हैं, जो कि अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से संसार के लिए बहुत बड़ा अभिशाप है। समस्याओं के इन तीनों रूपों से हम यही नतीजा निकालते हैं कि मांसाहार की आवश्यकता को हम तीन ही प्रकार से दूर कर सकते हैं। प्रथम, हम पालतू जानवरों को दूध के लिए अधिक पालें। द्वितीय, हम लूटने-खसोटने की प्रवृत्ति को दूर करें तथा तृतीय, हम अपने गृहस्थ-जीवन में संयम से काम लें। इन्हीं व्यावहारिक रूपों के अन्दर धर्म का साम्य हुआ है तथा सभी धर्माचार्यों ने इन व्यावहारिक रूपों पर अनेक बार जोर दिया है। आज से कुछ वर्ष पहले हम इन उपदेशों को भूल भी सकते थे, क्योंकि उस समय लड़ाई भी अत्यधिक हुआ करती थी, परन्तु तब भी मनुष्य का समूल नाश नहीं होता था। विज्ञान की प्रगति के कारण जो विध्वंस-शक्ति बढ़ी है उससे समूल नाश होने का भय है। आप जानते हैं कि जिन मुल्कों के अन्दर जितना ही अधिक मांसाहार होता है, उन मुल्कों के अन्दर जुल्म का अनुपात भी उतना ही अधिक है।

अमरीका के शिकागो शहर में बताया जाता है कि संसार के जुल्मों की सबसे बड़ी तालिका है। इसके लिए हमें विश्व-सहअनुभूति, विश्व-शांति, विश्व एकता, विश्व-सहयोग के रास्ते पर अगर आगे बढ़ना है, तो हमें शाकाहारिता के सिद्धान्तों को अधिक अपनाना चाहिए और अंत में पुरानी शाकाहारिता बनाने की कोशिश करनी चाहिए। शाकाहारिता का विश्व-शांति से वही सम्बन्ध है, जो कि मांसाहार का विश्व-विध्वंस से है। आज के युग में यह संसार का सबसे ज्यादा जरूरी सवाल है। आज सोवियट रूस के नेतृत्व में विश्व-शान्ति के लिए बहुत बड़ा नेतृत्व हो रहा है, इसके पीछे ईमानदारी है, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि सोवियट रूस अपने अन्दर एक नयी उन्नति, समाज के लिए कर रहा है और उसे शांति की आवश्यकता है। लेकिन उसी देश के कर्णधार ख्रुश्चेव अपने अनेक भाषणों में यह कहा करते हैं कि वे सोवियट रूस के लिए अधिक मांस उत्पादन का स्वप्न देख रहे हैं। वे कहते हैं कि मांस से जीवन की सुन्दरता बढ़ती है। मुझे भय है कि जिस वस्तु को सुन्दरता के रूप में मानते है, वह उसी लक्ष्य को नष्ट कर देगी, जिसके लिए वे इतने प्रयत्नशील हैं। हमारे देश में भी हमारे प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मांसाहार को बढ़ाने की कोशिश की जा रही है। जगह-जगह नये वैज्ञानिक ढंग के कत्लखाने, सूअरखाने, मछलीखाने आदि कायम किये जा रहे हैं। लेकिन इस सबका नतीजा क्या होगा, वह इसके बाद में पता चलेगा। अगर हमें लड़ाई, झूठ-फरेब आदि से बचना है तो हमें चाहिए कि सबसे पहले हम अपने भोजन को सुधारें। यदि हमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा से बचना है, तो हमको सबसे पहले अपने भोजन को सुधारना होगा। जैसा अन्न होता है, वैसा ही मन होता है। संसार के बड़े-बड़े आदर्शों को प्राप्त करने के लिए बड़ी-बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है। इसके सुधार के लिए हमें आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए।

यह कहना कि यह चीज सम्भव नहीं है और संसार में शाकाहारिता को प्रधानता कभी नहीं मिली है, ज्यादा वजन नहीं रखता है। इतिहास में बहुत-सी कुरीतियाँ हमेशा से चली आयी हैं। पहले मनुष्य एक-दूसरे को खा जाया करता था। एक-दूसरे से नफरत करता था। एक जाति दूसरी जाति पर हमला कर दिया करती थी। संसार की सभी कुरीतियों से डट कर मुकाबिला करना चाहिए। इन कुरीतियों में से बहुत-सी कुरीतियाँ तो खत्म हो चुकी हैं तथा कुछ जल्द ही खत्म हो जानेवाली हैं। इसी तरह एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि मांसाहार को भी लोग उसी तरह नफरत की निगाह से देखेंगे, जैसे कि आज मनुष्य-भक्षण को देखा जाता है। इसके लिए कार्य शुरू भी हो चुका है, उन्हीं ठंढे मुल्कों से जहाँ से कि मांस की आदत शुरू हुई। आज शाकाहारिता की एक लहर निकल रही है तथा हरएक बड़े-बड़े शहरों में इनका संगठन भी बनता जा रहा है। इस चीज को आगे प्रोत्साहन मिल रहा है। इसके अन्दर जो सबसे बड़ी कमजोरी है, वह यह है कि संसार के अन्दर शाकाहारियों का कोई संगठन नहीं है, अगर संगठन है भी, तो वे उस पर जोर डालने की कोशिश नहीं करते। जिस दिन संसार के शाकाहारियों का संगठन पूर्ण रूपेण हो जायगा और अपने-अपने मुल्कों में राजनीतिज्ञ राजनीति के तौर इसके लिए विचार करेंगे, तब हम शाकाहारिता की भावना को आगे बढ़ा सकेंगे। एक दिन ऐसा आयेगा कि जब हम यह देखेंगे कि संसार के समस्त लोग मांसाहार से घृणा करते हैं एवं शाकाहार का पक्ष लेते हैं। इसके लिए हमें अपने ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेवारी लेनी पड़ेगी तथा मेहनत करनी पड़ेगी। सबसे अधिक जिम्मेदारी उन लोगों की है, जिन्होंने शाकाहारिता को धर्म के रूप में स्वीकार किया है। पुराने जमाने मे अशोक ने शाकाहारिता के रूप में जगह-जगह अपना संदेश गगनचुम्बी इमारतों से उद्घोषित किया था। आज भी हमें एक नये अशोक की आवश्यकता है, जो कि विश्व के हर देश और हर शहर के अन्दर इस संदेश को फैला सके। लेकिन इसके पहले कि एक अशोक पैदा हो सके हमें उस अशोक के पैदा होने की तैयारी करनी चाहिए। आज का युग प्रजातंत्र का है। इस तरह मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि इस संदेश को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक हर तरह से आगे बढ़ायें, ताकि दस-बीस-पचास वर्षों में हमें फिर अशोक का दर्शन हो सके और उस अशोक के फैलाये हुए संदेश से दुनिया के हर चमन में अमन कायम हो सके। ● ● ●

आहार और स्वभाव

●

योगाचार्य श्रीमत् त्रिपुराचरण

हम लोग जीवन-धारण के लिए रोज आहार करते हैं। दो प्रकार के आहार हैं सामिष और निरामिष। सामिष, याने मछली, मांस, अण्डा प्रभृति उत्तेजनापूर्ण खाद्य और निरामिष याने शाक-सब्जी, दूध, दही, घी-छेना, मक्खन, चावल, दाल, गेहूँ आदि। सामिष खाद्य शरीर के लिए उत्तेजक, चञ्चल और अस्थिर स्वभाव पैदा करनेवाले होते हैं। निरामिष खाद्य रसदार, पुष्टिकर स्वभाव के होते हैं।

हमारे शरीर को रसदार बनाने के लिए सामिष पदार्थ की कुछ जरूरत है, कारण, शरीर में जिस उपादान की कमी होती है, उसकी पूर्ति सामिष तैल, नमक प्रभृति द्वारा शरीर की पुष्टि करनी पड़ती है।

किन्तु हमारे स्वभाव ऐसे हैं कि मछली, मांस, अण्डे इन सबों का सामिष रूप में व्यवहार करते हैं—और चावल, दाल, दूध, छेना, मक्खन को निरामिष में व्यवहार करते हैं। लेकिन दोनों तरह के खाद्य में कुछ-न-कुछ सामिष खाद्य प्राण भरे हैं। किन्तु मछली, मांस, अण्डे प्रभृति खाद्यों में से जो सामिष खाद्य-प्राण हम लोग ग्रहण करते हैं, वह शरीर के लिए उत्तेजक स्वभाव के होते है और उसी से शरीर और दिल की चंचलता बढ़ती है। चावल, दाल, गेहूँ, दूध, घी, छेना, मक्खन प्रभृति से जो सामिष खाद्य-प्राण हमें मिलते हैं, वे रसदार, स्वादिष्ट होते हैं और दिल के लिए पुष्टिकारक। इसलिए ऐसा ही खाद्य ग्रहण करना उचित है जिससे शरीर पुष्ट हो और मन स्थिर रहे; अन्तर स्वच्छ व शुद्ध हो। दिल चञ्चल होने से सब तरह के ज्ञान लोप हो जाते हैं तामसिक रिपुओं की शक्ति बढ़ती है।

हम लोग शरीर की पुष्टि के लिए तो आहार करते हैं, लेकिन मन की पुष्टि का खयाल नहीं करते हैं। कारण हम लोग बुद्धि और शरीरप्रधान जीव हैं, शरीर ही मैं हूँ, इस प्रकार का ज्ञान होने के कारण, शरीर जिस प्रकार से पुष्ट, बलवान, शक्तिशाली हो, उसी प्रकारका खाद्य ग्रहण करते हैं लेकिन साथ-साथ हमें यह भी खयाल रखना चाहिए कि जैसे शरीर का बलवान, शक्तिशाली होना जरूरी है, वैसे ही दिल भी सदा जाग्रत, दुःख, दैन्य, रोग, शोक, हिंसा, घृणा, नीच प्रवृत्ति और जन्म-मृत्यु प्रभृति से दूर पवित्र, चरित्रवान, तथा अमर हो।

हमें जीने के लिए खाना है, खाने के लिए जीना नहीं है, खाद्य द्वारा शरीर-रक्षा होने पर भी मन की चञ्चलता होने के कारण भीतरी शक्ति मुर्दे के समान चेतनाहीन होती जा रही है। यह सोच भी नहीं रुक रहा है कि वह अमृत की सन्तान अमृत है। वेद में है—'शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्राः', अर्थात् अज्ञानता ही मृत्यु, ज्ञान ही अमृत है। किन्तु मृत्यु जय करने के उद्देश्य से संसार में न्याय पर अन्याय के वशमें पड़ कर सब कर्म कर रहे हैं और आज हमारे सभी उद्देश्य व्यर्थ हो रहे हैं। रोज रोज मृत्यु-भय बढ़ रहा है। हमारे जाग्रत सभी कर्मों के मूल में है, मृत्यु-जय करना। दूसरा उद्देश्य नहीं है। यदि हम लोग प्राकृत अमृत की तरह जीवन-लाभ करना चाहते है, तो प्राकृत चिरन्तन सत्य का अनुभव करते हुए विश्वभ्रातृत्व के आवेष्टन में आबद्ध होना चाहिए और आत्मज्ञान-लाभ करके एक आत्मबोध-प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहिये, विश्वासी विश्वशान्ति की यदि हम कामना करते हैं, तो हमें पहले अपने आहार के विषय में सचेष्ट होनेकी आवश्यकता है। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' आहार शुद्ध नहीं होने से दिल में सात्त्विक भाव प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगा। सत्य-भाव का फल निर्मल और उज्ज्वल होता है, वह सात्त्विक ज्ञान के प्रभाव से अन्तर ज्ञानलोक उद्भासित है।

दुष्परिणाम

•

मछली और मांस प्रभृति उत्तेजक पदार्थों से प्राण चञ्चल होते हैं और मन की चंचलता बढ़ती है। मन चञ्चल होने से दुर्बल और अचेतन अवस्था के कारण सर्व विषय का ज्ञान लुप्त हो जाता है और अज्ञानतम असत्य वृत्तियों के अधीन इन्द्रियाँ हो जाती हैं और जड़ता प्राप्त कर विवेक-बुद्धि से वर्जित होती हैं। सत्य-ज्ञान का अभाव होता है। खाद्य-ग्रहण का उद्देश्य एकमात्र प्राणों की स्थिरता होती है। हमारे प्रतिदिन कर्म के माध्यम में स्वाभाविक तरीके से प्राणों का क्षय हो रहा

है। अस्वाभाविक भाव से क्षय होते हैं तब, जब कि हमारे मन असत्य चिन्ता, असत्य वासना, हिंसा एवं अज्ञानतम् वृत्तियों की अधीन होते हैं और यह मन की चञ्चलता से होता है। भीतरी प्राण में चैतन्य की प्रतिष्ठा करनी हो तो शाकाहारी इस विषय में सहायक श्रेष्ठ है, इसलिए हम लोगों को वैसा ही खाद्य ग्रहण करना चाहिए, जिससे प्राण की चञ्चलता न हो तथा वही इन्सान का प्रकृत आहार है जो खाद्यान्न इन्सान अपने स्वभाव के अनुसार ग्रहण करते है। निज स्वभाव भी न खो जाय और स्वधर्म भी न जाये और इन्द्रिय के वश में भी न हो, यह सोचकर खाद्य के साथ मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम लोग जैसा आहार करते हैं, मन भी उसी प्रकार गठित होता है। स्वाभाविक खाद्य ग्रहण करने से मन भी स्वाभाविक हो जाता है और अभाव से मुक्त होता है। अस्वाभाविक खाद्य में मन-स्वभाव अच्युत अवस्था में चञ्चल होकर क्रमशः दुर्गति के पथ में अग्रसर होता है। यदि कोई एक टुकड़ा मछली या मांस का मुँह में रखे तो तत्क्षण वो स्वभाव से परित्यक्त होते हैं, किन्तु अन्य कोई द्रव्य-विशेष केसम्पर्क में ऐसा नहीं होता। स्वभाव से ग्रहीत उपयोगी खाद्य के सामने होने से जीभ में रस संचारित होता है और उसको ग्रहण करने की लोलुपता बढ़ती है। इसलिए अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि हमारे स्वाभाविक खाद्य क्या है। पशु-पक्षी प्रभृति अपना स्वाभाविक खाद्य ग्रहण करते हैं। उनके सामने अस्वाभाविक खाद्य आने से ग्रहण नहीं कर सकते, उसे छोड़ देते हैं वह भी अपना दलबद्ध रहने का अभिलाषी है। किन्तु मनुष्य पृथ्वी का श्रेष्ठ जीव होते हुए भी इनमें परस्पर मिलन नहीं है, केवल परस्पर द्वन्द्व, घृणा, ईर्ष्यापरायण होकर भगवतविमुख अवस्था में परस्पर अनिष्ट चिन्ता करते है। हम लोंगो के जिन्दा रहने का मतलब यही हैं और हम लोग मृत्यु के कवल में कवलित क्यों है ? मृत्यु-भय से हमेशा भीत क्यो है ? संसार-समरांगन में वीर सैनिक की तरह अस्थिर चित्त न होकर स्थिर क्यो नहीं रह सकता और हम सर्व जीव के सहित प्रेम और मैत्री-भाव से मिल क्यों नहीं सकते ? एक ही जगत् से अपने आगमन सोचकर भ्रातृत्व में आबद्ध क्यों नहीं होते ? यही हमारी स्वाभाविक विरुद्ध अवस्था है।

किन्तु हम लोग विचारबुद्धि-परायण जीव हैं। हमें अपने तन-मन एवं आत्मा की उन्नति के लिए कैसा खाद्य ग्रहण करना उचित है इसपर विचार नहीं करते। इसलिए तन-मन और आत्मा को उन्नत होने का मौका प्राप्त नहीं होता। यदि किसी दिन अपना सोया हुआ स्वभाव पुनः प्राप्त हो, तब अस्वाभाविक खाद्य ग्रहण नहीं करेंगे। हम लोग अपने स्वभाव में जितना स्वधर्म में प्रतिष्ठित कर सकेंगे, उतना ही परस्पर होकर शान्ति प्राप्त होगी। विशेषकर ब्रह्मचर्य-जीवन में अर्थात् जीवन के पहले भाग में सामिष आहार नितान्तव र्जनीय, है यही समय है प्रकृत-ज्ञान अर्जन करने का। इसी समय ब्रह्मचर्य-जीवन का उपयोगी शाकाहार यदि प्रयोजन है, उसे नैतिक चरित्र का गठन करने में सुयश की प्राप्ति होती है। श्रेष्ठ बाल्यकाल में ही अस्वाभाविक द्वारा शरीर पुष्ट हो, तब मन की चञ्चलता के कारण मानवोचित मनुष्य उपार्जन में बाधा होती है और भविष्य में संसारागमन में दुःख, दैन्य मृत्यु रूप प्रबल शत्रु के समक्ष युद्ध-जयी होना असम्भव हो जाता है। मानव-चरित्र लाभ करने का बाल्य-कालीएकमात्र समय है, मानवों का मानव-चरित्र खो जाने से उसके साथ सभी खो जाते है।

हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं, कि जो लोग बाल्यावस्था में हैं, उन लोगों को शक्तिवान् ज्ञानवान् होने का गुरुकुल अर्थात् विद्यालय में सुयोग प्राप्त हो। उन लोगों के जीवन के लिए उपयोगी आहार प्राप्त हो। स्वभाव से दृष्टिगोचर होता है कि देश-भेद में, ऋतु-भेद में आहार का कुछ पार्थक्य हो सकता है। शीतप्रधान देश का खाद्य ग्रीष्मप्रधान देश में अनुपयोगी है। भगवान् की करुणा से देश के मौसम

के हिसाब से ही खाद्य उत्पन्न होता है। देखने में आता है कि शाकाहारी निरोगी और दीर्घ आयु होता है और तृणभोजी पशुगण भी अधिक कष्टसहिष्णु अचञ्चल होता है। जो लोग धर्मपिपासु, भगवद्-अनुरागी हैं तथा इस संसार के सर्वभेदों से शून्य होकर प्रेम-मैत्री और भ्रातृत्व के बन्धन में आबद्ध होकर स्वयं को मुक्त करना चाहते हैं उनके लिए आवश्यक है कि वे निरामिषभोजी हों क्योंकि यही सबसे अधिक अनुकूल है। ● ● ●

धर्म-परिसम्वाद

(५ फरवरी, १९६०)

अध्यक्ष : श्री अबुल फजल हाजेधी [ईरान]

प्रधान अतिथि : महामण्डलेश्वर स्वामी सर्वानन्दजी महाराज [अहमदाबाद]

●

महामण्डलेश्वर स्वामी सर्वानन्दजी महाराज

विश्वधर्म-सम्मेलन के धर्म-परिसम्वाद-अधिवेशन का आरम्भ हो रहा है। इसमें विश्व भर के धार्मिक लोग उपस्थित हैं। आज संसार में धर्म के सम्बन्ध में कई प्रकार की विचारधाराएँ चल रही हैं। क्या पाश्चात्य, क्या प्राच्य। पश्चिम के देशों में या पूर्व के देशों में, सभी देशों में धर्म के सम्बन्ध में कुछ निषेधात्मक विचार अधिकाधिक प्रचलित होते जा रहे हैं। जब तक यह मानव-समाज किसी भी एक धर्म का पालन करनेवाला और मानने वाला नहीं होगा, तब तक सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए विश्व को भौतिकवाद की चकाचौंध से दृष्टि को हटाते हुए धर्म की ओर आना चाहिए। इस समय लोग पुराने लिबासों और विचारों को इस तरह से छोड़ रहे हैं तथा नये लिबास और विचारों को अपने जीवन में इस प्रकार ला रहे हैं कि वर्तमान मानव का मन अशान्त और अव्यवस्थित है वह वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक विचारों के अन्दर उलझा रहता है। कभी भी उसके मन में यह निश्चय नहीं हो पाता कि किधर और कहाँ जाना है। उसका रास्ता किस तरफ है तथा किस प्रकार वह अपने आप को तथा विश्व को सुख शान्ति दे रहा है? इसी विचार के लिए यह विश्वधर्म-सम्मेलन आरम्भ हो रहा है, जिसके लिए सभी लोग सम्मिलित होकर विचार करें और यह निश्चय करें कि यदि सुख और शान्ति की सही प्राप्ति हो सकती है, तो वह धर्म के द्वारा ही सम्भव है। इसके लिए धर्मानुष्ठान आवश्यक है। उसके बिना सुख-शान्ति का मार्ग नहीं ढूँढ़ सकते। धर्म चाहे नवीन हो या प्राचीन, यह तो एक परम्परा के बाद दूसरी आती और चली जाती है।

विश्वधर्म-सम्मेलन का यह भी मतलब नहीं है कि सभी का विचार एक ही तरह का हो जायगा। उन सभी का खानपान एक हो जायगा या सभी एक ही मान्यता को मानेंगे। बात ऐसी नहीं

है, बल्कि विभिन्न मान्यताओं को मानते हुए, विभिन्न सभ्यताओं को अपनाते हुए उन्हें किसी एक मूलाधार पर पहुँच जाना है, जो मूल और वास्तविक तत्त्वमय धर्म का मुख्य लक्ष्य है। आज बाह्य साधनों से सारा संसार एक हो रहा है और योरोपीय तथा एशियायी देश कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं, परन्तु इन सबका जो सामीप्य है, एकता है, वह अभी तक हमारे आन्तरिक सुख और शक्ति का साधन नहीं बनी है। हम एक-दूसरे के समीप आ रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एशिया, योरप, अफ्रीका, अमेरिका आदि सबके सब मानो एक सूत्र में संगठित होकर चलना चाहते हों, परन्तु यह बाह्य एकता अभी तक आन्तरिक सुख-शान्ति का साधन नहीं बनी, क्योंकि उन्हें अनुप्राणित करनेवाली कोई एक चीज अनुभव नहीं हुई। आन्तरिक लोक में देश एक दूसरे से डर रहे हैं, भयभीत हैं। इसी कारण से वे बाहर से तो मिलते हैं, पर भीतर से लड़ाई की तैयारियाँ करते हैं। जब तक धर्म की भिन्न भिन्न मान्यताओं पर भी हार्दिक एकता, हार्दिक प्रेम और स्नेह की भावना नहीं पैदा होगी, तब तक यह बाहरी एकता हमें एक सूत्र में नहीं बाँध सकती। इसलिए वेद में कहा है—"धर्म-विश्वे जगता प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठम् प्रजा श्रवन्ति, तस्मात् धर्मम् परमम् वदन्ति"—यह जितना संसार है और जितने देखने में संसार के दृश्य हैं, उन सभी का मूल आधार धर्म है। उसी धर्म के आधार से सारा विश्व अनुप्राणित हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति एक ही धर्म को लेकर चलता है। भले ही उसमें कोई बाह्य भेद प्रतीत होता हो, उन भेदों के रहते हुए भी, जैसे कहा गया कि—"एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" यदि मानव एक तत्त्व पर ठीक से निश्चित नहीं चलेगा, उस पर निष्ठा उत्पन्न नहीं करेगा, तो बेशक वह कभी भी अपने आप को सुख और शान्ति के मार्ग पर नहीं ले जा सकेगा। तिलक, कंठी-भगवा या सफेद कपड़ा, मुँहपट्टी, दाढ़ी, केश आदि धर्म है नहीं है। वह चीज धर्म है, जिससे विचार उत्पन्न होता है। अभी हम भगवान् और उस विश्वनियन्ता से इतनी प्रार्थना करते हैं कि इस सम्मेलन को सफल बनायें और साथ-साथ जिस उद्देश्य और लक्ष्य के लिए यह किया गया है, उसकी जो वास्तविक सफलता मानव-एकता की है, उसे यह प्राप्त करे। ● ●

लक्ष्य एक है

●

हाजेघी अबुल फजल

मेरा यह कर्तव्य है कि मैं सर्वप्रथम सभी को धन्यवाद दूँ। यह एक ऐसा स्थान है, जहाँ सभी आकर एक-दूसरे के निकट सम्बन्ध में रह सकते हैं और मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता धर्म के सम्बन्ध में बोल सकते हैं। हम लोग इस जीवन में ईश्वरीय में विश्वास के बिना इस संसार में नहीं रह सकते और यदि किसी का अपना कोई विशेष धर्म है तो भी हमलोग एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं तथा एक-दूसरे को समझ सकते हैं। हम सभी का उद्देश्य और लक्ष्य एक ही है और हमें निश्चित रूप से अपने जीवन में उसी भावना को रखना चाहिए। इस सम्मेलन में हम अपने किसी भी वैसे विचार को रख सकते हैं जिससे हम सभी विचार, मत, जाति, देश, राष्ट्रीयता, सम्प्रदाय आदि सभी विभिन्नताओं से ऊपर उठ कर एक हो सकते हैं। आज एक सर्वमान्य प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा और मैं आपकी आज्ञा से यह कह सकता हूँ कि इस प्रस्ताव में विश्व के लिए एक संदेश इस सम्मेलन की ओर से है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित कर रहा हूँ।

प्रस्ताव

"इस सम्मेलन का यह निश्चित अभिमत है कि जीवन में धर्म की बहुत आवश्यकता है, जिसका उपयोग विश्व-बन्धुत्व एवं विश्व-शान्ति के लिए किया जाना चाहिए। संसार के तमाम धर्मों के तत्व समान होने के नाते जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, लिंग, देश आदि के किसी भेद-भाव के बिना दुनिया के मानव-मात्र को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए सत्य एवं अहिंसा के माध्यम से सक्रिय प्रयास होना चाहिए। यह सम्मेलन सभी सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा अन्य सभी संस्थाओं, जिनके अन्तर्गत शैक्षणिक संस्थाओं का संचालन होता है, से शिक्षा-प्रणाली में तथा पाठ्यक्रमों में धर्म-शिक्षा को स्थान देने के लिए अपील करता है।"

प्रेम का पैगाम

•

एस० के० चटर्जी क्रिश्चियन

सर्वप्रथम मैं इस सम्मेलन के आयोजकों को धन्यवाद देता हूँ कि मुझे उन्होंने बोलने का अवसर दिया, जिससे मैं आपके समक्ष ईसाई धर्म के बारे में कुछ कह सकूँ, जिस धर्म का मैं माननेवाला हूँ और जिसमें मैं विश्वास करता हूँ।

जैसा कि आपमें से कुछ लोग जानते हैं कि ईसाई धर्म कोई एक प्रकार का दर्शन या एक प्रकार का सिद्धान्त, डौगमा या सम्प्रदाय (क्रीड) नहीं है बल्कि यह एक बहुत ही सरल चीज है।

यह एक व्यक्ति ईसा मसीह (जीसस क्राइस्ट) पर केन्द्रित है, जिसे हम लोग ईश्वर का अवतार (इन्कारनेशन) मानते हैं।

मनुष्य सदा से यह चाहता रहा है कि वह ईश्वर को जाने, उसके निकट सम्पर्क में जा सके और उससे निकट से आदान-प्रदान कर सके (सेन्ट आगस्टाइन)। शताब्दियों पूर्व, इसलिए, ईसा मसीह के इस संसार में आने के पूर्व बाइबिल में उल्लेख है कि एक साधु (हरमिट) रहता था, जो वाटर ब्रूक अपने ओतप्रोत (टेन्टेड) हृदय के साथ आया। इसलिए उन्होंने अपने हृदय को उसी के अनुरूप कर लिया। इसलिए जो वास्तविक सिद्धान्त, जैसा कि एक महान् ईश्वरीय शक्ति ने कहा—ईश्वर ने मानवों की सृष्टि अपने लिए की है और हम लोगों का हृदय उनके लिए बेचैन है। उसे जानने के लिए दो चीजें आवश्यक हैं। प्रश्न : ईश्वर को किस प्रकार जाना जा सकता है या किस प्रकार उससे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

उत्तर : ईश्वर को ईश्वर के माध्यम से ही जाना जा सकता है। इसके लिए दो चीजों में से एक आवश्यक है : एक तो ईश्वर स्वयं बन जाय, जो असम्भव है और दूसरी बात कि

ईश्वर मनुष्य बने, जो सम्भव है। यह घटना करीब दो हजार वर्ष पहले घटी, उस स्थान में जिसे बेथलहेम कहते हैं। वह मनुष्यों के बीच केवल दो सन्देशों के साथ आया : (१) ईश्वर हम सभी को प्यार करता है और (२) तुम सभी एक-दूसरे से प्रेम करो (हम लोग सभी एक-दूसरे से प्रेम करें।)

पहला सन्देश कि ईश्वर हम सभी को प्यार करता है, यहूदियों के लिए एक आश्चर्य की बात हुई, जिनके बीच में वह रहता था। यहूदी लोग यह विश्वास करते थे कि ईश्वर एक बहुत बड़ा न्यायाधीश (जज) है और जब हम कोई गलती करते हैं, तो वह सजा देने के लिए तैयार रहता है। परन्तु ईसा ने कहा कि ईश्वर हम सभी को प्यार करता है और इसीलिए वह सदा हम लोगों को बचाने के लिए चिन्तित रहता है। ईसा मसीह ने अपने उपदेशों और शिक्षाओं में लोगों से कहा कि ईश्वर ने उन्हें संसार के रक्षक के रूप में भेजा है। इसलिए उनसे लोग गलती नहीं कर सकते हैं। इस सारे विषय का बाइबिल में एक छन्द (व्हर्स) कहा गया है कि ईश्वर को इस संसार के प्रति इतना प्रेम है कि उसने अपने प्यारे इकलौते लड़के को इस पृथ्वी पर भेजा, जिससे कि उस पर जो अपना विश्वास रखता है, उसका नाश नहीं हो सकता, बल्कि उसकी आयु काफी लम्बी होगी—उसका जीवन लम्बा या सदा रहनेवाला सर्वकालिक (एवरलास्टिंग) होगा । ईसा ईश्वर का एक बरदान था और ईसा ने अपने जीवन भर इस बात की घोषणा की।

दूसरी बात यह कि हम लोग सभी एक-दूसरे से प्रेम करें, इसे ईसा ने केवल उपदेश से ही नहीं बताया, बल्कि अपने जीवन से यह बताया कि हम लोग एक-दूसरे से जाति, रंग, वर्ग, वर्ण, राष्ट्रीयता आदि के बिना भेद-भाव के प्रेम करें। उसने कहा कि अपने शत्रुओं से प्रेम करो, जो तुम्हें शाप देते हैं, उन्हें तुम आशीर्वाद दो। यदि कोई तुम्हारे एक गाल में चपत लगाता है तो तुम उसकी ओर दूसरा गाल भी घुमा दो। इसके बारे में बाइबिल में अनेक कहानियाँ हैं। उन्होंने अपने इन उपदेशों को अनेक कहानियों के द्वारा लोगों को समझाया।

ईसा अपने जमाने का सबसे गलत समझा जानेवाला व्यक्ति था। उनके बहुत शत्रु हो गए परन्तु वह उन सभी से प्रेम करते थे। ईसा ने अपने जीवन से यह बताया कि किस प्रकार ईश्वर हम सभी को प्यार करता है और हम लोगों को चाहिए कि एक दूसरे से प्रेम करें (एक कहानी है एक अमेरिकन की, जो यहूदी नहीं था परन्तु उसने एक यहूदी को बचाया।) ईसा ने एक नयी बात कही। इसलिए लोग उनके शत्रु बन गये। विशेषकर यहूदियों का सरदार तो उनका कट्टर शत्रु हो गया। वह उनकी शिक्षाओं को सहन नहीं कर सका। वे उनमें दोष ढूँढ़ने लगे। उन लोगों ने उनके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा और उन्हें समाप्त कर देना चाहा। उनपर झूठे दोषारोपण किये गये और एक अदालती जाँच का ढोंग रचा कर यह आदेश दिया गया कि इन्हें मौत की सजा दी जाय। वे सभी बुजदिल थे और उन लोगों ने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया। जब वे उन्हें सूली पर चढ़ा रहे थे, उस समय भी ईसा ने यही कहा कि "पिता, इन्हें क्षमा कर दो, क्योंकि वे नहीं जानते और न समझते हैं कि वे क्या कर रहे हैं ?" सूली का यही वह दृश्य है जिसने उन्हें संसार को उनके चरणों में झुकाया। इस प्रकार उन्होंने अपनी सूली के द्वारा यह चरितार्थ किया कि वे सभी से प्रेम करते थे और ईश्वर सभी से प्यार करता है। इसलिए हम लोगों का विश्वास है कि उनकी मृत्यु सूली (क्रॉस) पर हुई।

दो चित्र सामने आते हैं—एक काँटों के ताज के साथ सुकरात (सॉक्रेटिस) का है, जिसने आत्मा के अमरत्व की बात कही और दूसरा ईसा का है, जिसने कहा कि ऐ मेरे ईश्वर, तुम क्यों मुझे भूल गये हो ?

सुकरात को हम दूर से मानते हैं, पर ईसा के आगे हम लोग खिंचे चले आते हैं और उनके चरणों में पड जाते हैं तथा उन्हें पूजते हैं।

ईसा मरे, परन्तु तीसरे दिन वह पुनः उठे और आज तक जीवित हैं। हम ईसाई मृत ईसा को नहीं पूजते, बल्कि जीवित ईसा की पूजा करते हैं। ● ● ●

मेल-मिलाप की छाया में

●

मौलवी बसीर कादियानी

इस धर्म-सम्मेलन में आपकी सेवा में मैं यह अर्ज करना चाहता हूँ कि धार्मिक पुस्तकों से यह ज्ञात होता है कि एक समय ऐसा आयगा कि तमाम मनुष्य इस प्रकार रहना शुरू कर देंगे, जैसे एक ही शहर, एक ही धर्म और एक ही घर में रहते हों जैसा कि आज इस सम्मेलन में देख रहे हैं। आज से १५० वर्ष पहले इंग्लैण्ड जाने में कई महीने लग जाते थे, जहाँ अब कुछ घन्टों (४८ घन्टों) में ही जा सकते हैं। साथ ही वहीं से एक ही समय में बातें भी कर सकते हैं। इस प्रकार जैसा हम वैदिक ग्रन्थों तथा कुरान मजीद से समझते हैं कि आध्यात्मिक रूप से भी सारे इन्सान एक-दूसरे से मिल जायेंगे। परन्तु यह किसी सियासी (राजनीतिक) आधार से सम्भव नहीं है। यह मेल धर्म के ही आधार पर होगा।

अब तक जो मेल नहीं हुआ, उसका कारण है कि हमारे ऋषि-मुनियों, पैगम्बरों ने जो बातें बतायी और जो पुस्तकों में लिखी हैं, उनपर हम अमल नहीं कर रहे है। आज हम यदि उनपर अमल करें तो यकीनन हम सभी एक जगह पर जमा हो सकते हैं और एक हो सकते है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि किसी धर्म ने ऐसी असूली तालीम नहीं बतायी, जो दूसरे धर्म के असूलों के खिलाफ हो। अगर वैदिक धर्म कहता है कि इन्द्रम्, मित्रम् वरुणम् आहूर, आसोद्यो दिव्या गुरु समान् विद्या सासुत परम गुसनाम एकः सद्विप्राः बहुधा वदन्ति, अग्निम मा करिष्यामि आहुर तो कुरान मजीद ने भी कहा है कि उल्लहू अल्लाहु अवलद, अल्लाहु समदलम अलिद व वलद उलद व अकम वहुकुहन अहद। यदि तमाम धर्मों के प्रतिनिधि यह बताते हैं कि एक-दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार करो, तो यही हजरत मुहम्मद ने और दूसरे ऋषियों ने भी बताया।

ये तमाम मखलूक अल्लाह की है। उन तमाम से प्रेम करना तथा खुदा की भक्ति हासिल करना चाहिए। ये दो सिद्धान्त हैं, जो किसी भी धर्म, वैदिक, इस्लाम, जैन आदि में मिलेंगे। यदि इन पर हम अमल करें और कामयाब हो सकें, पर हमारी मिसाल तो उस जैसी है, जिसने गाड़ी नहीं देखी थी पर टिकट लेकर गाड़ी पर सवार होना चाहता था। कुली से उसे मालूम हुआ कि गाडी का इंजन काला होता है और धुआँ निकलता है। उसने एक काले रंग का वस्त्र पहने हुए और सिगरेट पीनेवाले आदमी को इंजन समझ कर कूदकर सवार होना चाहा तथा मना करने पर कहा कि वह टिकट लेकर सवार हो रहा है, बिना टिकट नहीं है। इसी प्रकार हम सभी अपने अपने धर्म का टिकट लिये हैं, पर धर्म के वास्तविक एवं मूल सिद्धान्तों को न जानते हैं और न समझते है। इस प्रकार सिद्धान्त पर अमल किये बिना मंजिले-मकसूद तक नहीं पहुँच सकते हैं। इसलिए मैं कहूँगा कि यदि आज हर मुसलमान, हर हिन्दू, हर क्रिश्चियन आदि विभिन्न धर्म वाले अपने-अपने धर्म पर सच्चे अर्थ में धार्मिक हो जायँ तो तमाम इन्सान प्रेम से एक स्थान पर मिल सकते हैं, इकट्ठा हो सकते हैं और सभी प्रेम तथा शान्ति का जीवन बसर कर सकते हैं। ● ● ●

कार्यकर्ताओं का, समर्थकों का, शुभचिंतकों का और सहायकों का संपूर्ण बल मिलकर ही काम को सफल बनाता है।

अजीतमलजी पारख

मोतीलाल मालू

आसकरणजी
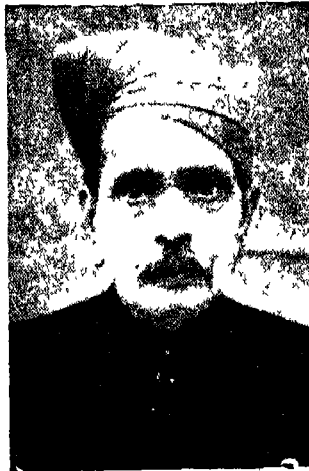
रमेशचन्द्र अग्रवाल

कन्हैयालालजी मालू

ये हैं, समाज के ऐसे तपस्वी, जिनकी विचार-साधना के आगे नतमस्तक होकर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि विश्वधर्म-सम्मेलन का संकल्प एक अद्भुत विचार-दर्शन है !

पद्मविभूषण सूर्यनारायण व्यास

सौभाग्यमल जैन

चंपालाल बांठिया

मगनलाल पी० डोशी

खतरे का मुकाबला

•

श्री एन. सी. चक्रवर्ती

आज हम लोग ऐसे समय में मिल रहे हैं, जब संसार एक भयंकर खतरे का सामना कर रहा है। आज संसार दो विभागों में विभक्त हो गया है और दोनों विभाग से हम लोग अन्यतम भौतिकता का सामना कर रहे हैं। इस सिद्धान्त के समर्थकों का यह मत है कि भूत या अर्थ ही चरम सत्य या वास्तविकता है तथा भौतिक उन्नति में ही लोगों का सुख छिपा है तथा भूत से परे कुछ नहीं है। वे मानते हैं कि आत्मा कोई चीज नहीं है और तथाकथित आत्मा कुछ नहीं, बल्कि भूत की ही एक परिवर्तित वस्तु है। दूसरी ओर, दूसरे विभाग में अशान्त आत्मा की एक धीमी आवाज सुनायी पड़ती है, जो असीम भौतिकता से त्राण के लिए पुकार रही है। इसलिए आज का सबसे विचारणीय एवं ज्वलन्त प्रश्न यह है कि क्या आत्मा को दुष्ट भौतिकता से बचाया जा सकता है? क्या मानव-आत्मा की यह क्षीण पुकार वर्तमान अशान्त संसार में शान्ति लाने में समर्थ हो सकेगी और मानव के लिए प्रेम की भावना को जाग्रत करने में सफल हो सकेगी? यदि हम लोग मानव-आत्मा को भौतिकता के बन्धन से ऊपर नहीं निकाल पाते हैं, तो वर्तमान खतरे से विश्व के बचने की कोई आशा नहीं है। भौतिकता के समर्थकों के विचार से इन्द्रियजन्य आनन्द ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है और इसके लिए मनुष्य को उच्चतम भौतिक प्रगति तथा उन्नति चाहे जिस किसी तरह भी हो, प्राप्त करने का ध्येय होना चाहिए, जिससे अधिकाधिक इन्द्रिय-सुख प्राप्त हो सके। ऐसे नाजुक समय में हम लोगों का यह परम कर्तव्य है कि ऐसे माध्यम या साधन का आविष्कार करें, जिससे भौतिकता की इस दुष्ट शक्ति पर विजय प्राप्त हो जा सके, जो संसार की शान्ति और सौख्य को समाप्त करने को तैयार है। भौतिकवादियों के विचार से अर्थ—जो मस्तिष्क से स्वतन्त्र सत्ता रखता है—ही चरम सत्य है। इस भौतिक संसार से परे कुछ सत्य नहीं है, क्योंकि इसका ज्ञान बाह्य इन्द्रियों के माध्यम से नहीं अनुभव किया जा सकता है, पर यदि उस ज्ञान को हम लोग यह सिद्ध कर सकें कि ऐन्द्रिय-अनुभव ही वास्तविक और अन्तिम सत्य नहीं है, बल्कि सच्चा ज्ञान उससे परे है, जो इन्द्रियों से नहीं, बल्कि बुद्धि से जाना जा सकता है और जो केवल तर्कसंगत या मानसिक कल्पना ही नहीं है, बल्कि जिसका आधार सत्यता है और जिसे अनुभव किया जा सकता है, तभी संसार की वर्तमान अशान्ति दूर हो सकती है। इस बात की सत्यता विश्व की आधारभूत व्यवस्था पर आधारित है। इस सत्यता का दर्शन मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों के विश्लेषण से ही सम्भव है।

भौतिकवादियों की इस महान् ललकार के उत्तर में हम लोग यह दिखा सकते हैं और सिद्ध कर सकते हैं कि आत्मा शरीर से एक पृथक् सत्ता है तथा इसका नाश कभी नहीं होता है। यह "मैं" प्रकृति के प्रभाव में कभी मस्तिष्क के रूप में प्रकट होता है, तो कभी आत्मा के रूप में प्रकट होता है। यह शरीर से आवेष्टित आत्मा अदृश्य आत्मा और चरम आत्मा का संयुक्त रूप है। इनफिनिट मैनिफेस्टेसन—एम्बोडिड सोल, इनफिनिट सोल और एब्सोल्यूट सोल। यह चरम

आत्मा संसार में विभिन्न रूपों और वस्तुओं में विभिन्न तरीकों से प्रकट हुआ है और इसने उन इन्द्रियों का सृजन किया है, जिससे वह अपने को समझ सके और दूसरे घातों से अपनी रक्षा कर सके। फाइनाइट सोल या अन्तरंग आत्मा अपने को सदा बन्धन से मुक्त कर चरम आत्मा में विलीन होने के लिए प्रयत्नशील रहता है। फाइनाइट आत्मा का फाइनाइट्यूड बन्धन से मुक्त करने का प्रयास भी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित है। इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (प्रोसेस) के परिणामस्वरूप फाइनाइट आत्मा अन्त में एब्सोल्यूट आत्मा में मिलने के लक्ष्य को प्राप्त कर जाता है। मानव जाति इस चरम आत्मा को ही ईश्वर के रूप में जानती है।

यहाँ पर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुछ आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धान–जो भौतिकवादी मनोवैज्ञनिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं— का आधार ठीक नहीं है। विषय के बहुत विशद विवरण में न जाते हुए हम लोग केवल इतना कह सकते हैं कि जो वर्तमान विचार और दृष्टिकोण है वह सत्य से बहुत दूर है। जैसे आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में सूर्य एक जलता हुआ विशाल अग्निपुंज है, पर जिसे हम लोग सूर्य कहते हैं, वह पृथ्वी के चारों ओर गैसों का आवरण है, उस पर पड़ने वाले प्रकाश की किरणों के प्रतिबिम्ब की छाया है। सूर्य वास्तव में जलता हुआ कोई अग्निपुंज नहीं है। हम लोगों को सीधे सूर्य से कोई प्रकाश या गरमी नहीं मिलती है। सूर्य की अदृश्य किरणें जो बहुत ऊँचाई से आती हैं, वे पृथ्वी के गैसीय आवरण के सम्पर्क में आकर गैस की शक्ति का विस्तार करती है। और तब हमें उष्णता और प्रकाश का विकास होता दिखता है। घनत्व, प्रतिबिम्ब, पुनर्विच्छेद आदि जो सूर्य की अदृश्य रश्मियाँ हैं और जो उसका प्रकाश है, उसके बारे में आधुनिक वैज्ञानिक अभी तक इस वास्तविक सत्यता का पता लगाने में असमर्थ रहे हैं कि सूर्य क्या है? यह भी देखा जा सकता है कि वर्तमान वैज्ञानिकों के द्वारा जो आविष्कार हुए हैं, वे अभी तक किसी भी तरह से प्रकृति के किसी भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सके हैं, जो विश्व के विधान से सम्बन्धित है, जिससे विश्व शान्ति संचालित होती है और वे विश्व के इस विधान की कोई भी उचित व्याख्या नहीं प्रस्तुत कर सके है। उनके द्वारा जो व्याख्याएँ दी गयी हैं, वे अनिश्चित हैं और वे सत्य पर आधारित नहीं है। वे भूल जाते हैं कि तथाकथित भौतिक सिद्धान्तों का निर्माण प्रकृति के नियमों तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (प्रोसेस) के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। विश्व की वर्तमान अशान्ति तथा भौतिक उन्नति की वासना (लालच) चरम सत्य के ज्ञान के अभाव के ही कारण है। इसलिए हमलोग प्रार्थना करते हैं और आशा करते हैं कि मनुष्य निश्चित रूप से आत्मा, प्रेम और मानवता के विषय में जान बूझ कर सोचेगा।

• • •

एक सूत्रता

•

श्री० टी० एम० जरीफ

मैं इस सम्मेलन के संयोजकों का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस सम्मेलन में अपने दो अलफाजों को कहने का मौका दिया है। मैं बदकिस्मती से धर्म सम्बन्धी अच्छा ज्ञान नहीं रखता हूँ

और न किसी धर्म का स्कॉलर ही हूँ कि उसके सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रकाश डाल सकूँ। पर एक सामाजिक कार्यकर्ता के नाते मैं इतना कहना चाहता हूँ कि धर्म के नाम पर जो-जो अच्छाइयाँ या बुराइयाँ होती हैं, उसके शिकार हम जरूर होते हैं। आज मैं बता देना चाहता हूँ कि धर्म के नाम पर यदि कुछ अच्छा हो सकता है, तो बुरा भी हो सकता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई जब मुझे पता चला कि कलकत्ता में विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। दुनिया में इससे कोई बड़ी चीज नहीं हो सकती, यदि सभी धर्म के माननेवाले एक हो जायँ और सभी एक मार्ग पर चलें, जिससे उन सभी का उद्धार हो जाये।

आप यदि हिन्दुस्तान के फसादों का इतिहास देखेंगे, तो जितने फसाद हुए, उनमें सबसे अधिक धर्म के नाम से ही हुए—कहीं गोकशी, कहीं मस्जिद पर बाजा बजाने, कहीं सूअर काटने आदि ऐसी छोटी-छोटी बातों में हजारों फसाद हुए। हमारे देश को यदि किसी चीज से सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचा है, तो धार्मिक फसादों से पहुँचा है। इन फसादों को करने वाले कौन थे? वे क्यों हो रहे थे? धर्म वाले उसे क्यों नहीं रोक रहे थे?

धर्म सम्बन्धी एक बात मैं कहूँ कि यद्यपि धर्म सम्बन्धी मेरा ज्ञान नहीं के बराबर रहा है, पर मैं हमेशा दिल टटोलता रहा हूँ कि कौनसा धर्म सच्चा है और कौनसा धर्म सच्चा नहीं है। जब से मैंने सक्रिय सामाजिक जीवन में प्रवेश किया, तभी से मैं ये नारे सुनता रहा कि अमुक धर्म अच्छा है और अमुक अच्छा नहीं है। मैंने करीब-करीब सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन इस बात का पता लगाने के लिए किया कि व्यावहारिक दृष्टि से कौन सा धर्म सबसे ठीक है। इस विचार ने मुझे वर्षों तक अशान्त रखा। इसी खोज के दौरान में मेरी मुलाकात इंगलैण्ड से आये हुए सर फ्रान्सिस यंग हसबैन्ड से हुई जो कलकत्ता एक इसी प्रकार के सर्वधर्म-सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए इंगलैन्ड से आये थे। वह सम्मेलन यहाँ के एलबर्ट हॉल में हुआ था, जो हॉल अब नहीं है। यह २५ वर्ष पहले की बात है। वह कॉलेज स्ट्रीट में था। उस धर्म-सम्मेलन के खुले अधिवेशन में उनसे किसी ने यह प्रश्न पूछा कि संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन-सा है? मै भी ऐसा ही प्रश्न पूछने का सोच रहा था, इसलिए मैं उत्तर की बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा करने लगा। उन्होंने सरल भाव से उत्तर दिया कि जिस प्रकार हरएक व्यक्ति के लिए संसार में सर्वश्रेष्ठ और पवित्र औरत उसकी माँ होती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसमें उसका जन्म होता है। जो व्यक्ति जिस धर्म मे उत्पन्न हुआ है, उसके लिए उससे पवित्र और श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है। सबके लिए सच्चा धर्म वही है, जिसमें उसकी माता ने उसे जन्म दिया। इस उत्तर से मेरी तितिक्षा, जिज्ञासा, मानसिक बेचैनी समाप्त हो गई। इसलिए मैं आज इस मंच से ऊँचे स्वर में कहूँगा कि मेरे लिए सबसे अच्छा धर्म इस्लाम है और आपके लिए सबसे अच्छा धर्म वह है, जिसमें आप उत्पन्न हुए हैं।

मुझे आज वास्तव में बहुत प्रसन्नता है कि यहाँ विभिन्न धार्मिक नेताओं के द्वारा मानव मात्र को धर्म के महान आदर्शों के आधार पर एकसूत्र में बाँध कर संगठित करने का प्रयास किया जा रहा है। यदि वे अपने प्रयास में सफल होते हैं, तो वह मानव जाति के लिए उनकी सबसे बड़ी सेवा होगी। आज हम सभी धर्म वालों को मिलकर और एकसाथ बैठकर यह विचार करना है कि हम अपने अपने रास्ते चलते जायँ और अन्त में एक ही जगह मिलें। हमारी जो दूरी की भावना

है, वह दूर हो जाय। मेरा यह विश्वास है कि धर्म के उपस्थित प्रतिनिधियों और नेताओं के द्वारा यदि सच्चे हृदय और लगन से प्रयास किया जाता है, तो सफलता अवश्य मिलेगी। धर्म एक जीवित शक्ति है, वह कभी मर नहीं सकती। धर्म में ही वह शक्ति है, जो मनुष्य मात्र को तमाम बुराइयों से मुक्त कर सकती है।

शान्ति के द्वार पर

•

प्रो० कुलराज सिंह
(कलकत्ता सिक्ख सांस्कृतिक केन्द्र के प्रतिनिधि)

जब मैं अपना जीवन अपने पूर्वजों के जीवन से मिलाता हूँ, जो हमसे दो तीन पुश्त पहले थे, तो मुझे लगता है कि आज मैं उनसे अधिक खुशहाल हूँ और सुखी हूँ। कुछ वर्षों पहले हमारी एक चाची टी. बी. के रोग से मर गई, पर यदि वह आज उस रोग से पीड़ित होती, तो डाक्टरों ने उसकी उचित चिकित्सा की होती। पाँच पुश्त पहले के पूर्वज कलकत्ता से अपने गाँव पंजाब में इतने शीघ्र और अनेक बार नहीं जा पाते जितना वह हम लोगों के लिए सम्भव है। पाँच पुश्त पहले हमारे पूर्वज तीन दिनों में दुनिया का चक्कर नहीं लगा सकते थे, जैसा कि आज सम्भव है और आज जो चीजें देखने में आ रही हैं, उन्हें मैं उस समय नहीं देख पाता था। इस प्रगति के बाद भी हम पूर्ण विश्वास के साथ यह नहीं कह सकते हैं कि बहुत अर्थों में हमारी पीढ़ी पूर्व की पीढ़ियों से अधिक, बहुत अधिक सुखी या प्रसन्न है। ये ऐसा इसलिए है कि आज की प्रगति की सारी योजना एक तरफा है। इसका कारण यह है कि जहाँ ज्ञान में हमने प्रगति की है वहाँ एक ओर धर्म का प्रकाश अनायास मन्द पड़ गया है और हम लोग एक बड़े गढ़े के कगार पर अपने को खड़ा पा रहे हैं, जिसमें हम लोग किसी क्षण गिर सकते हैं। इसका कारण यह है कि हम लोगों ने अपने व्यक्तित्व के सभी तत्वों का विकास नहीं किया। हम लोग एक सर्वांगीण कार्यक्रम जो मानवता के विकास का है, उस पर नहीं बढ़ रहे हैं। इसीका यह फल है कि सभी अवसरों के मिलने पर भी अपने अन्तर का विकास नहीं है। इसी कारण से आज की सबसे बड़ी आवश्यकता धर्म है।

हम लोगों ने देखा है कि आज संसार में चारों ओर क्या हो रहा है। ऐसा लगता है कि मनुष्य ने अपनी वास्तविकता को पत्थर के साथ जोड़ लिया है। कुछ पीढ़ी पूर्व जब किसी पड़ोसी के यहाँ कोई विपत्ति आती थी, तो पड़ोस के दूसरे लोग उसकी सहायता में जुट कर उसके दुख को दूर करते थे पर आज वैसी बात नहीं है। आज हम लोगों ने एक नियम स्थिर किया है कि कोई किसी के घर में प्रवेश नहीं कर सकता। आज की स्थिति यह है कि हम एक बड़े राज्य के समर्थक बन सकते हैं और अकारण ही अपने पड़ोसी देश पर आक्रमण कर सकते हैं। बिना किसी लाभ के प्रकृति प्रदत्त स्वतन्त्रता का अपहरण कर सकते हैं। तथाकथित नैतिकता के विकास के बाद भी विषम आर्थिक परिस्थिति में हम अपनी नैतिकता को भूल जाते हैं। जो अशक्त हैं, उन लोगों के साथ सद्व्यवहार का अभाव है। इस कारण से आज संसार के लिए धर्म नितान्त आवश्यक हो गया है। केवल धर्म ही लोगों में आवश्यक उच्च गुणों का संचार कर सकता है।

लीग ऑफ नेशन्स या संयुक्त राष्ट्र-संघ के द्वारा शान्ति का प्रयास चलता रहा है। पर शान्ति की प्राप्ति इस माध्यम से सम्भव नहीं है, क्योंकि युद्ध के कारण अभी भी सक्रिय हैं, जो हमारे अन्तर में है। मेरा स्वार्थ, मेरी वासना, मेरा भय, मेरे सारे कार्यकलापों को अन्ततोगत्वा उन कर्तव्यों की ओर प्रेरित करता है, जो अन्त में मानव जाति का सर्वनाश करते रहे। यदि हम अपनी सुरक्षा और शान्ति चाहते हैं, तो हमें धर्म के उपदेशों का प्रचार करना होगा। संसार के विभिन्न धर्मों की शिक्षाएँ और उपदेश बहुत ही अच्छे ढंग से सन्तों की वाणी में प्रकट हुए हैं।

विकास का वातावरण

•

कैप्टेन भाग सिंह

(मन्त्री सिक्ख सांस्कृतिक केन्द्र, कलकत्ता)

मैं अपना भाषण प्रारम्भ करने के पहले एक शंका को दूर कर देना चाहता हूँ। मैंने शारीरिक रूप से और सक्रिय प्रकार से १३ वर्षों तक युद्ध में काम किया है और कुछ युद्धों में कर्मठ होकर भाग लिया है। यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि एक सिपाही यहाँ आकर विज्ञान और धर्म के बारे में कुछ कहे। पर यह सत्य है कि युद्ध के नतीजों को जानने के कारण ही मैं आपके समक्ष कुछ कहने आ सका हूँ।

यद्यपि नागरिकों ने अहिंसा का स्वागत किया है, पर हम संसार को एक दिन में नहीं बदल सकते हैं। यदि पाशविक शक्तियाँ हैं, तो निश्चित है कि अच्छी दैवी शक्तियाँ भी रहेंगी जो उनका सुरक्षित अंग है और इस प्रकार अहिंसा की भी एक शक्ति है। यह एक आधारभूत तथ्य है जिसे विषय को स्पष्ट देखने और समझने के लिए हमें जानना चाहिए।

धर्म प्राथमिक रूप में नैतिक विधान है। धर्म के इतिहास में सर्वप्रथम नैतिक नियमों का गठन हुआ, जिससे कि मनुष्यों में अनुशासन आ सके और वह ऊँचा उठ सके। नैतिक विधान मानवीय, सामाजिक और ऐतिहासिक हैं। यह मानवीय इसलिए है कि यह मानव-जीवन से सम्बन्ध रखता है और मानव स्वभाव में व्याप्त है। यह मानवीय स्वभावों और अनुभवों की योजना है। यह सामाजिक इसलिए है कि यह सामाजिक अनुशासन का विधान है। यह ऐतिहासिक इसलिए है कि यह मानव अनुभवो और ज्ञान से विकसित हुआ है। नैतिक विधान की समस्या मानव स्वभाव से सम्बन्धित है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि आज शोषण और गुलामी के वातावरण में मानव स्वभाव का पतन हो गया है। मानवीय नैतिकता की आधारभूत आवश्यकता यह है कि मानवीय स्वभावों का उत्थान हो या दूसरे शब्दों में मनुष्य की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति हो। मनुष्य तथा उसके स्वभाव की इस उन्नति के लिए एक सामाजिक वातावरण की आवश्यकता होती है जो शोषण तथा गुलामी से परे हो। धर्मों में आज बुराइयाँ आ गई हैं तथा अन्धविश्वास घर कर गए हैं और अनेक अन्ध परिपाटियाँ या परम्पराएँ कायम हो गई हैं। इसमें आश्चर्य नहीं कि आधुनिक युग में धर्म की सर्वप्रियता घटती जा रही है। धर्म को आज मानसिक दासता तथा आध्यात्मिक गुलामी कहा जाता है। यद्यपि एक कदम आगे बढ़ कर देखने से स्थिति वैसी नहीं है बल्कि बहु

विस्तृत सफल एवं आवश्यक प्रतीत होता है। यह मानसिक दबाव और आध्यात्मिक दासता से बहुत दूर है। मनुष्य आर्थिक शोषण का एक दयनीय चक्र या पुतला हो गया है और वह भी धर्म के नाम पर। यदि धर्म आर्थिक, सामाजिक और मानसिक शोषण की शक्ति और साधन हो जाता है तो मैं कहूँगा कि वह धर्म अपनी सही शक्ति से हीन हो गया है। आज हमें इस धर्म को उन्नत बनाने के उपायों और तरीकों को खोज निकालना है और इसे मनुष्य की उन्नति के लिए सक्रिय शक्ति बनाना है। धर्म का जागरण तभी प्राप्त होता है जब वह दूसरी सामाजिक शक्तियों को सक्रिय बनाने में सहयोगी होता है जिससे कि वह मानसिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का पालन कर सके। केवल इसी दशा में मानवीय स्वभाव सहायक सिद्ध होगा। धर्म मनुष्य के नैतिक तथा वैचारिक स्वभाव में परिवर्तन ला सकता है जिसका परिणाम समस्त समाज के परिवर्तन में होता है। इसे हमलोगों को स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य स्वभाव से सामाजिक है और नैतिकता या नैतिक गुण सामाजिक मानव के आधारभूत गुण हैं।

एक व्यक्ति अपना नैतिक और वैचारिक व्यक्तित्व का विकास उचित वातावरण में कर सकता है। परिस्थितियाँ मनुष्य का निर्माण उसी प्रकार करती हैं जिस प्रकार मनुष्य परिस्थितियों को उत्पन्न करता है। हमलोग यह आशा करें कि इस विश्वधर्म सम्मेलन से धर्म की सत्यता तथा प्रारम्भिक उद्देश्यों और कार्यों का पुनर्जन्म होगा और लोगों में नए स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास होगा जो न केवल धर्मों के समन्वय में सहयोगी होगा बल्कि धर्म की दूसरी शक्तियों के साथ समन्वय में भी सहयोगी होगा। उन नैतिक नियमों के साथ भी उसका समन्वय सम्भव हो सकेगा जिससे कि वर्तमान संसार का कल्याण हो सके।

संक्रांति-काल

•

श्री अब्दुल हुसैन

हम सभी यहाँ एक ऐसे समय में मिल रहे हैं, जब मानव एक विकट परिस्थति से गुजर रहा है, जिसे संक्रान्ति कह सकते हैं। वर्तमान परिस्थिति में, जो विज्ञान और यन्त्रों की द्रुत प्रगति के विकास से उत्पन्न हुई है, धर्म का प्रभाव लोगों के मानस पर कम होता जा रहा है, संसार के लोगों का विश्वास धर्म से हटता जा रहा है और विशेषकर युवक वर्ग इससे दूर होता जा रहा है।

इसके लिए हमलोगों को विज्ञान या यान्त्रिक प्रगति को दोष नहीं देना चाहिए। मैं इस मौलिक विचार में विशेष दिलचस्पी रखता हूँ, जिसमें धर्म को इसकी बुराइयों, अन्धविश्वासों, दुर्व्यहारों, दुराचरणों, मानसिक और बौद्धिक दासताओं से मुक्त करने की अपील की गई है, इन बुराइयों के कारण ही, जो धर्म में घर कर गई हैं, धर्म आज संसार में अपनी शक्ति और प्रियता को खोता जा रहा है।

हम लोगों को स्वीकार करना पड़ेगा कि धर्म के द्वारा किसी प्रकार से भी विज्ञान के विरोध की कोई योजना सफल नहीं होने वाली है और वह न सहायक ही हो सकती है। धर्म को विज्ञान का सहयोगी बनना ही पड़ेगा, क्योंकि विज्ञान स्वयं एक ज्ञान है। विज्ञान के सहयोग के द्वारा ही धर्म को मानव की भलाई के लिए एक शक्ति के रूप में रहने का मौका मिल सकेगा।

मैं कहना चाहूँगा कि आज धर्म मानव के लिए एक कल्याणकारी शक्ति नहीं रह गयी है। यह कोई आलोचना नहीं है, बल्कि वस्तुस्थिति है। किसी दूसरे तथ्य पर दोष मढ़ने के बदले यह लाभदायक होगा कि धर्म स्वयं अपना अन्तर्दर्शन करे और पता लगाये कि आज जिस स्थिति में वह अपने को पाता है, उसके लिए कौन दोषी है?

प्रारम्भ में धर्म मानव के आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्कर्ष का लक्ष्य रखता था। अपने शुद्ध रूप में यह एक साधन था, जिसके द्वारा मनुष्य नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के विभिन्न स्तरों की यात्रा कर पाता था, यदि धर्म का यह कार्य दूर हो जाता है और यदि वह कुछ स्वार्थी लोगों का, सांसारिक लाभ के लिए उनके हाथ का खिलौना हो जाता है, यदि वह सामाजिक या आर्थिक शोषण का साधन बन जाता है और यदि उसका उपयोग मानवीय प्रगति के विरोध में किया जाता है, तो वह धर्म नहीं रह पाता—जैसा कि धर्म का आधारभूत और सही दृष्टिकोण है, दुर्भाग्य से धर्म को अपने स्वीकृत आचरण से दूर कर दिया गया है। इससे आँख मूंदना व्यर्थ होगा कि आज धर्म को जो एक नैतिक शक्ति होना चाहिए था, नहीं है। जिस उद्देश्य को लेकर धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था, उस उद्देश्य और कार्य से आज धर्म को च्युत कर दिया गया है।

धर्म मनुष्य को निश्चित रूप से स्वतन्त्र सत्ता बनने में सहायक हो और हरप्रकार के शोषण से बचाये। मानव-व्यक्तित्व के विकास में नैतिक एवं आध्यात्मिक दासता तथा बौद्धिक दबाव अन्य शोषणों से भी अधिक हानिकर है। भारत में हम लोग एक नये समाज की रचना के लिए प्रयत्नशील हैं। इस स्वप्न को साकार करने के लिए मानव के व्यक्तित्व के विकास की आवश्यकता है, व शोषणहीन वातावरण की आवश्यकता है। समाज और वातावरण के इस परिवर्तन में धर्म का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि धर्म अपना पार्ट इसमें सफलतापूर्वक अदा करे तो उसके लिए उसे उन बुराइयों से मुक्त करना होगा, जो इसमें प्रविष्ट हो गई हैं।

धर्म का यह दावा है कि वह लोगों को प्रेम, करुणा, सहिष्णुता की शिक्षा देता है। आज के वर्तमान संसार में ये तीनों गुण ओझल हो गए हैं। क्या मैं यह कहूँ कि बहुत दूर तक इसके लिए धर्म ही दोषी है? हाल में ही बम्बई में सहिष्णुता का एक चमत्कारिक उदाहरण सामने आया। वहाँ के एक प्रमुख गुजराती समाचार-पत्र 'बम्बई समाचार' ने अपने सम्पादकीय में धर्म के नाम पर होनेवाली कुछ कुप्रथाओं पर प्रकाश डाला, जिससे उक्त धर्म के आचार्य को बहुत चोट लगी। उनकी प्रेरणा से और उनके कहने पर कुछ सौ लोगों ने उस समाचार-पत्र के कार्यालय को घेर लिया और सम्पादक को पीटा! आज के युग में जब वाणी और विचार की स्वतन्त्रता एक इच्छित लक्ष्य है, इस प्रकार की असहिष्णुता जो धर्म के नाम पर होती है, धर्म को अप्रिय बना देती है। इस सम्मेलन को प्रदत्त प्रधान मन्त्री नेहरू के सन्देश को मैंने पढ़ा, जिसमें उन्होंने उचित ही सुझाव रखा है कि सम्मेलन को विशेष ध्यान भाषा, जाति, मत, धर्म और विचार के नाम पर होने-वाली हिंसाओं को दूर करने की ओर भी रखना चाहिए।

आज जब समाजवादी विचारों का प्रसार बढ़ रहा है और वह लोगों के मानस को अधिक असर डाल रहा है, तो धर्म लोगों की भलाई और कल्याण की एक शक्ति बन सके, इसके लिये उसे वैज्ञानिक उत्कर्ष और अनुरूप वैचारिक परिवर्तन करना पड़ेगा। मैं इस बात से सहमत हूँ कि धर्म को दूर नहीं किया जा सकता। वह असम्भव है, क्योंकि वह लोगों की भावनाओं में प्रविष्ट है। इस दिशा में जो भी प्रयत्न किया जायगा, असफल रहेगा। प्रयास इस दिशा में किया गया है और वह

असफल रहा है। इसी प्रकार धर्म के द्वारा भी यदि विज्ञान के विरुद्ध कोई प्रयास किया जाता है, तो वह भी असफल रहेगा। वह मानवता के लिए खतरनाक भी होगा। एक ही रास्ता है कि धर्म और विज्ञान में समन्वय हो। साथ ही धर्म की उपयोगिता तभी है, जब कि वह एक ऐसे वातावरण के निर्माण में सहायक हो जिसमें वह दूसरी शक्तियों का सहायक होकर सामाजिक मौसम का सृजन कर सके जहाँ सभी लोग बौद्धिक, आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का अनुभव कर सकें तथा सामाजिक और आर्थिक शोषण से मुक्त हो सकें। ● ● ●

धर्म और विज्ञान

●

श्री अब्दुल हाजेघी (ईरान)

धर्म और विज्ञान दो भिन्न चीजें हैं। धर्म आत्मा को उन्नत बनाने का साधन है। विज्ञान शरीर को उन्नत बनाने का साधन है। धर्म हमें ईश्वर से प्राप्त हुआ है, जिससे हम अपने को आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नत बना सकें। विज्ञान की प्रगति इसलिए है कि वह इस प्रकाश को पा सके तथा दूसरी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। दोनों के कार्य अलग-अलग हैं और उन्हें एक-दूसरे के साथ मिलाना उचित नहीं। हम लोगों में विभिन्न मत हैं और उन सभी के लक्ष्य एक ही हैं। यद्यपि विश्वास भिन्न हो सकते हैं, पर लक्ष्य एक हो सकता है। यदि किसी को रूस जाना है, वह बर्मा—जापान होकर भी जा सकता है, ईरान होकर भी जा सकता है और दूसरे मार्गों से भी जा सकता है। इसी प्रकार हमारा लक्ष्य ईश्वर है और हम उस तक विभिन्न मार्गों से पहुँच सकते हैं।

कट्टरता न हो

●

स्वामी क्रियानन्द गिरि
(योगोदा आश्रम)

ऐसे युग में, जब कि विज्ञान ने संसार को एक चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है, हम-लोग पाते हैं कि विभिन्न मतों में एकता—वास्तविक एकता-स्थापित करने में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। विभिन्न धर्मों के माननेवालों में मान्यताओं की इतनी विभिन्नताएँ हैं कि मेल कठिन हो जाता है। आज भी हमने बहुतों को सुना है और इससे पहले बहुत वर्षों से पढ़ा भी है कि मूल रूप से सभी धर्म एक हैं, परन्तु जब तक हमारी मान्यताएँ और विश्वास ऐसे हैं, जैसे वे अभी हैं, उनमें यदि एकता लाना चाहते हैं, तो कम-से-कम सभी मान्यताओं में एक समझौता आवश्यक है। ऐसा क्यों है? क्योंकि बहुत से आधारभूत सिद्धान्त सीधे-सीधे दूसरों से विरोधी हैं। इसलिए यह असम्भव है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में एकता हो। मेरा खयाल है कि सारा आधार ही गलत है। हम लोग विचारों के पथ पर बहुत आगे निकल गये हैं, पर अनुभव में पीछे

रह गये हैं। हम लोग प्रेम की व्याख्या करने में बहुत आगे बढ़ गये हैं, पर बहुत ही कम लोग उसका अनुभव कर पाये हैं और उसके लिये प्रयत्न शील हैं। तब तक सभी धर्म एक नहीं हो सकते, जब तक हम लोग केवल उसमें विश्वास करते हैं, उपदेश देते हैं और उसका अनुभव नहीं करते हैं। जब तक हम इस सत्य, प्रेम, आनन्द, ज्ञान का स्वयं अनुभव नहीं कर पाते हैं, तभी अनायास हम पाते हैं कि विभिन्न धर्म सशरीर उठकर एक मंच पर पहुँच गये हैं और वह मंच वैसा है, जहाँ सभी धर्मों की एकता का दर्शन होता है। क्रिश्चियन, इस्लाम, बौद्ध, जैन, वैदिक आदि सभी धर्मों की शिक्षाओं को यदि हम देखते हैं, तो एक ही सत्य का दर्शन पाते हैं। यदि हम सभी धर्मों का संगठन करना चाहते हैं, तो निश्चित रूप से हमें उसे अनुभव का विषय बनाना होगा—न कि केवल एक सिद्धान्त के लिये अन्ध समारोह करना है। एक सज्जन ने अभी कहा कि विज्ञान और धर्म को अवश्य एक होना चाहिए और मैं समझता हूँ कि वह सम्भवतः सही है। हम विज्ञान और धर्म को एक-दूसरे के निकट लायें पर हमें उसके बारे में कट्टर नहीं होना चाहिए कि विज्ञान का अर्थ केवल रासायनिक या भौतिक विज्ञान ही है। धर्म को किस प्रकार एक व्यावहारिक सत्य बनाया जा सकता है? यदि हम उसे व्यावहारिक बनाते हैं, तभी धर्म वैज्ञानिक हो सकता है। भारत तथा अमेरिका में भी एक ऐसे विज्ञान का विकास हुआ है, जिसे योग कहते हैं। योग से मेरा अर्थ केवल उपवास से नहीं है, बल्कि राजयोग से है, जो चिन्तन विज्ञान है, जिससे अपनी आत्मा को अपने आधीन किया जाता है, इस विज्ञान का उपयोग क्रिश्चियन, मुसलमान, हिन्दू सभी समान रूप से कर सकते हैं क्योंकि गणित की तरह यह मनुष्य को अनुभव प्रदान करने के योग्य बना है। इस विज्ञान के द्वारा लोगों को अपने अन्दर में ही वास्तविक शान्ति और प्रेम की अनुभूति होती है। इसका पता पाने के बाद ही पृथ्वी पर शान्ति आ सकती है, अन्यथा नहीं आ सकती।

विश्वबंधुत्व

•

स्वामी सत्यानन्दजी

(मलाया)

अनुभव के संसार में विभिन्नताएँ हैं। इसके साथ ही उसके मूल में एकता का भी दर्शन होता है, जिसे वास्तविकता, ईश्वर, सार्वभौम सत्ता, परमात्मा आदि अनेक नामों से जानते हैं। यह स्वयं चिरस्थायी शान्ति की सत्ता है।

विभिन्नता और एकता (भूत और आत्मा) दोनों दो अलग इकाई नहीं हैं। वह एक ही सिक्के के दो पहलू–सम्मुख और पीठ के समान हैं। उसे एक ही चरम सत्ता–अविच्छिन्न सत्ता के दो पहलू के रूप में समझा जा सकता है। इन विभिन्नताओं के अन्तर की एकता का दर्शन कुछ अंशों में काव्य, संगीत, कला, दर्शन, विज्ञान, बौद्धिक प्रयत्नों तथा सेवाओं के द्वारा किया जा सकता है।

धर्म का गूढ़तम विषय विश्व-प्रेम, दया तथा आत्म-संयम है, जो एक उन्नत नैतिक एवं वैचारिक जीवन में निहित है। इस एकतत्व की प्राप्ति की कुंजी चिन्तन एवं मनन है। ऐसा सभी

धर्मों के अनुभवों से चरितार्थ होता है। वे सभी इस बात में एकमत हैं कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए जीवन की शुद्धता एक आवश्यक शर्त है। इसकी प्राप्ति से मनुष्य के जीवन में एक परिवर्तन आ जाता है—उसके व्यक्तित्व में एक परिवर्तन आ जाता है—आदमी के अन्दर का शैतान एक ईश्वरीय शक्ति में परिवर्तित हो जाता है और वह एक पूर्ण शान्त पुरुष हो जाता है। नाम, रूप, विभेद, समारोह आदि साधन हो सकते हैं, पर वे अनावश्यक हैं। वास्तव में विभेद और आचार्यत्व आदि के द्वारा धर्म के अनावश्यक तत्त्वों पर ही अधिक जोर दिया जाता है और वह वास्तव में धर्म की असफलताओं के कारण हुए हैं। आवश्यक यह है कि एक धर्म के समर्थन या दूसरे धर्मों की असहमति या एक व्यक्तित्व, या दूसरे व्यक्तित्व या एक या दूसरे धर्म-सम्प्रदाय की सहमति या असहमति के बदले आध्यात्मिकता के सिद्धान्तों को अधिक चलाया जाय।

विभिन्नताएँ विकासवाद के सिद्धान्त पर अनुशासित हैं, जो विभिन्न शक्तियों और तथ्यों पर निर्भर करते हैं। विकास का उद्देश्य चरम स्थिति की प्राप्ति है। मनुष्य की सभी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में, जिनमें स्वीकृत धर्म या धर्म-समूह भी सम्मिलित हैं, कुछ स्थायी आवश्यक तत्त्व भी शामिल हैं। इन मूल्यों को खुले हृदय और मस्तिष्क से स्वीकारकरना होगा और उनके मूल्यों के कारण यह जानकर मानना पड़ेगा कि इनमें एक ईश्वरीय एकत्व की अभिव्यक्ति है, जो विभिन्न समयों और दशाओं में समय और दशानुकूल आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे हैं। इनका उद्देश्य विश्व-संस्कृति एवं विश्वबन्धुत्व है।
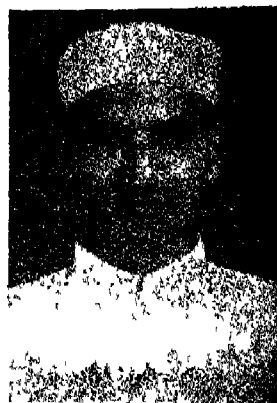
स्वामी सत्यानंदजी

मानवता आज एक सामाजिक क्रान्ति के द्वार पर है, जो आज साधारण मनुष्यों की क्रांति है। जातियाँ, संस्कृतियाँ जाने-अनजाने आज परस्पर एक-दूसरे के निकट आ रही हैं। विज्ञान आज आकाश एवं दूरी को सीमित कर रहा है तथा विश्रृंखल विचारों एवं कट्टरताओं को दूर कर रहा है। मानव-विचार हर क्षेत्र में अन्तरंग या बहिरंग फैलता जा रहा है–समता व एकत्व की ओर। इस युग की पुकार और भावना एकता की है। जीवन के उन्नत मूल्यों और अर्थों के उचित ज्ञान के अभाव में इस भावना का दुरुपयोग संहार और विनाश के लिए हो रहा है।

इस वैचारिक भावना को ठीक दिशा में मोड़ा जा सकता है—यदि विभिन्न देशों, समाजों और धर्मों के नेतागण, अपने दृष्टिकोण को, अपने जीवन को अपने कार्यों को, पूर्ण रूप से उस प्रकार आध्यात्मिक बनाकर, जिस प्रकार महात्मा गांधी ने बनाया, निष्ठा के साथ काम करें। आध्यात्मिक समाजवाद आज के युग की आवश्यकता प्रतीत हो रही है।

आज के इस विशेष युग में विज्ञान और धर्म के मूल्यों के समन्वय की जरूरत है, जिससे मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण हो सके।

●

श्रीमती गुरमीत वृन्दा

हम लोग आज एक ऐसे संसार में रह रहे हैं, जहाँ गलतफहमियाँ, कटुताएँ तथा संघर्षों का राजनैतिक एवं सामाजिक वातावरण में विस्तार बढ़ता जा रहा है। अस्थिरता, भय तथा शंका लोगों के दुखों की वृद्धि करते जा रहे हैं।

ऐसी खतरनाक और भयावह घड़ी में सत्ता की बढ़ती हुई लोलुपता, शक्ति का दुरुपयोग तथा लोगों में व्याप्त शंकाओं ने सभ्यता को ही कुंठित कर दिया है। असुरक्षा, असमानता, वैषम्य, अशान्ति ने आज देशों और राष्ट्रों को जकड़ रखा है। अर्वाचीन मानव को न तो बाह्य सुरक्षा और न आन्तरिक शान्ति है। भय ने विश्वास का स्थान ले लिया है। ईश्वर आराधना के स्थान पर आज नग्न शक्तियों की पूजा होती है। लोगों की आत्माओं में आध्यात्मिकता के अभाव के कारण समस्त ज्ञान के रहते हुए भी मानव-आत्मा आज वास्तविकता, सत्य एवं ईश्वर के प्रति अन्धी तथा मृत प्रतीत हो रही है।

आज का सभ्य संसार वातावरण में घुटन तथा अस्वच्छता का अनुभव कर रहा है। एक ओर जहाँ क्षुद्र एवं विध्वंसक भौतिकता व्याप्त है, दूसरी ओर सत्तापरक भावनाओं के फलस्वरूप वह विषाक्त हो रहा है।

इस परिस्थिति से घबड़ाकर और परेशानी के कारण निर्दोष व्यक्ति आज राजनैतिक हिंसाओं का शिकार हो रहा है। थौमस हार्डी के समान गहन विचारक भी कल्याणकारी ईश्वर की सत्ता में विश्वास खोते जा रहे हैं।

उपन्यास-लेखिका भरजीनियाँ उल्फ की तरह कुछ अत्यन्त भावुक लोग ऊबकर आत्महत्या की शरण लेते हैं। इस दुखद संसार को छोड़ने के पहले उसने लिखा था कि मेरा खयाल है कि मैं पागल हो जाऊँगी। मैं अब अधिक इस दुखद स्थिति में नहीं रह सकती।

आज की मानव-स्थिति इतनी अन्धकारपूर्ण है कि निराशावादी लोगों का यह स्वाभाविक प्रश्न होता है कि ईश्वर कहाँ है और क्या ईश्वर सचमुच मानव कल्याण में अपनी दिलचस्पी रखता है? पर इस प्रश्न का उत्तर सिद्धान्तों, धर्म-ग्रन्थों के उद्धरणों आदि से नहीं दिया जा सकता है। इसका उत्तर उन महान् धार्मिक लोगों के द्वारा दिया जा सकता है, जिनकी आँखों में ईश्वर की ज्योति है, जिनकी भुजाएँ सदा ईश्वर की इच्छाओं और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम करती हैं, जिनका हृदय प्रेम की कभी न समाप्त होनेवाली ज्योति से परिपूर्ण है और जिसकी उपस्थिति से वातावरण ज्योति एवं शान्ति से भर जाता हो। ऐसे लोगों के अन्तर-प्रकाश से ही मानवता अज्ञान से ज्ञान, असभ्यावस्था से सभ्यावस्था, असहायावस्था से शक्ति की ओर अग्रसर होती रही है।

शांति की चिन्ता

●

आज संसार शान्ति की चिन्ता में है और शान्ति की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है। परन्तु शान्ति की सही और उत्कट अभिलाषा अभी भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। ज्वलन्त उदाहरण और जीवन अनुभव के रूप में आज शान्ति कहीं भी नहीं है। वह शान्ति, जो एक क्रियात्मक शक्ति हो और जिसके आनन्द में सभी भाग ले सकें, वह अदृश्य है। शान्ति की भावना सभी लोगों के हृदयों में है और सभी लोग उसकी चर्चा करते हैं, परन्तु केवल शब्दोच्चारण से शान्ति आने वाली नहीं है। जैसा कि एक महान सिक्ख दार्शनिक भाई गुरुदास ने कहा है कि—

'खाँड खाँड़ कहे जिह्वा ना स्वाद मीठो, अग्नि अग्नि कहे, शीत ना विनाश है'

केवल खाँड़ खाँड कहने से उसके मिठास का अनुभव नहीं हो सकता है, अग्नि अग्नि कहने मात्र से ठंढक दूर नहीं हो सकती। अतः शान्ति के लिए एक आध्यात्मिक जागृति आवश्यक है। केवल नारों से शान्ति नहीं आ सकती। शान्ति के सारे प्रयत्न विफल होते जा रहे हैं। इसका कारण यह नहीं है कि यह समस्या ही विकट और उलझनपूर्ण है, बल्कि संसार आज आध्यात्मिक, नैतिक, धार्मिक मूल्यों का जरा भी खयाल किये बिना भौतिक आधार पर अग्रसर हो रहा है। जनता में शान्ति की बहुत ही उत्कट अभिलाषा है, पर इसके साथ-साथ वह अपनी अज्ञानता के कारण बिना विचारे विजातीय विचारों और मूल्यों को अपनाता जा रहा है। इसके कारण लाखों लोग आज संगठित यान्त्रिक राजनीति के गुलाम हो गये हैं, जो भौतिकता का प्रचार करते हैं और अपनी विध्वंसक शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

आज का युग सबसे पिछड़ा युग है, क्योंकि आज हमारे मस्तिष्कों का वैसा ही उपयोग किया जा रहा है, जैसे मिट्टी के बर्तनों का किया जाता हो, जिसे जैसा जब और जिस वस्तु से चाहो भर दो या खाली कर दो। उनका अति भयंकर दुरुपयोग किया जा रहा है और वह भी मानव-कल्याण के नाम से। युद्धों की जड़ लोगों के मस्तिष्क में है। युद्ध का विचार वैसे ही मस्तिष्कों में उठता है, जिसमें भय, अहंकार, द्वेष और लाभ भरा हुआ है। इसलिए शान्ति की क्रियात्मक शक्ति को लोगों के हृदय में विकसित करने के लिए वहाँ मानवता और प्रेम का आलोक भरना होगा।

विश्व-शान्ति की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है, जब विश्व-एकता की भावना का अनुभव सर्वत्र किया जाता। इस काम को केवल धर्म ही कर सकता है। सभी महान धर्मों में विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा दी जाती है, जिसे गुरु नानक ने इन शब्दों में कहा : एक पिता, एक ही के हम बालक अर्थात् हम सभी एक ही ईश्वर, परम पिता परमेश्वर के पुत्र हैं। इस प्रकार ईश्वर के पितृत्व और मनुष्य मात्र के बन्धुत्व की भावना ही एकमात्र वह मार्ग है, जिससे सौहार्द, प्रेम और शान्ति की स्थापना हो सकती है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हम आग को आग से नहीं शान्त कर सकते और घृणा को घृणा से नहीं जीत सकते हैं। इसी प्रकार हम युद्ध को समाप्त नहीं कर सकते हैं। आज की महान शक्तियाँ वास्तविक शान्ति से भय खाती हैं, क्योंकि शान्ति का मूल्य बहुत अधिक है, पर यदि वे उस मूल्य को सोचें, जो उन्हें उस स्थिति में चुकाना पड़ेगा जब पुनः युद्ध छिड़ा, जिसकी तुलना में वास्तविक शान्ति के लिए चुकाया जानेवाला मूल्य नगण्य होगा। ये महान राष्ट्र जो कीमत नहीं चुका सकते हैं, वह सत्तालोलुपता है तथा विभिन्न राष्ट्रों एवं शक्तियों

के प्रति उनकी कृत्रिम घृणा एवं द्वेष है। आज ऊँचाई से घृणा का प्रचार किया जा रहा है। आर्ट पेपर पर घृणा सम्बन्धी पत्रिकाएँ छापी जाती हैं और उनका वितरण निःशुल्क किया जाता है तथा शान्ति और स्वतन्त्रता के नाम पर घृणा का संगठित आन्दोलन चलाया जा रहा है। साथ ही उनके घृणा के आन्दोलन में जो उनका साथ नहीं देता, उन्हें विद्रोही कहा जाता है, उन्हें जेलों में बन्द किया जाता है। और बिना सुनवाई के उन्हें गोलियाँ मारी जाती हैं। हमारे महान् सन्त ब्रूनो, बर्गसन, सुकरात से लेकर महात्मा गाँधी तक को इन घृणा-प्रचारकों का शिकार होना पड़ा। यदि संसार को ऐसे घृणा-प्रचारकों से मुक्त कर दिया जाय, तो युद्ध बन्द हो जाय। ऐसे नरपिशाचों का हृदय परिवर्तन कर दो और फिर सारे कलह स्वयं शान्त हो जायेंगे। जब तक वे विद्यमान हैं, तब तक शान्ति की कल्पना करना मूर्खता है। आज इस घृणा-युद्ध को शीत-युद्ध का एक आदरणीय नाम दिया गया है। यह शीत-युद्ध और कुछ नहीं, बल्कि उष्ण-युद्ध की तैयारियों का ही दूसरा नाम है, जिसकी आड़ में विभिन्न राष्ट्र चुपचाप युद्ध की तैयारियों में संलग्न रहते हैं। इस शीत-युद्ध के कारण शान्ति-कालीन समयों में भी शान्ति का अभाव रहता है। यह सोचना कि संहारक शस्त्रास्त्रों का युद्ध शीत-युद्ध के द्वारा बन्द किया जा सकता है, उसी प्रकार भ्रामक है, जिस प्रकार कोई संक्रामक रोगों का निराकरण उसके कीटाणुओं को फैला कर करे।

हम सारे भाई बहन एक होकर सभी देशों में एक शरीर और एक आत्मा के रूप में उठें और घृणा के इस बढ़ते हुए विष के विरुद्ध ईश्वरीय प्रकाश के प्रकाशवाहक बनने की कोशिश करें। आज जो अन्धकार व्याप्त है, उसे अन्धकार से दूर नहीं किया जा सकता है। वह केवल प्रकाश के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। हम लोगों को निश्चित रूप से एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिसे गुरुमुख कहा करते थे और जिससे मानस में शत्रुता की सारी भावनाएँ खो जाती हैं और कोई भी शत्रु नहीं प्रतीत होता है—

> ना कोई मेरा दुशमन राम, ना हम किसी के बैरी।
> ब्रह्म प्रसार पसरिया भीतर, सत्गुरु ते सोझी पाई॥

अर्थात् न कोई मुझे शत्रु प्रतीत होता है और न मैं किसी का शत्रु हूँ। मेरे स्वामी ने मुझमें नई रोशनी भर दी है और मैं सभी दिलों और आत्माओं में ईश्वर के प्रकाश को ही देखता हूँ। यही नव-चेतना, उन्नत विचार एवं जागृत मनुष्य को क्रियात्मक शान्ति के लिए प्रेरित कर सकती है। हमें निश्चित रूप से अपने साथ उपलब्ध नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का संचय कर घृणा के इस बढ़ते हुए विष को दूर करने के लिए उस प्रकार से लोहा लेना चाहिए, जिस प्रकार मृत्यु से लोहा लिया जा सकता हो। आज घृणा को इस प्रकार आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है कि इसके विरुद्ध एकाकी आवाज को बहुत आसानी से दबा दिया जाता है और उसे महत्त्व-हीन बना दिया जाता है।

ईश्वरीय पुरुषार्थ

●

यदि हम लोग सचमुच में ईश्वर में विश्वास करते हैं, तो हमें कभी यह आशा नहीं करनी चाहिए कि हमारी सहायता के लिए, ईश्वर आयगा, जो हम से बहुत दूर बैठा है। हमें अपने

अन्तर के ईश्वर की आवाज को सुनना चाहिए। ईश्वर और उसका आध्यात्मिक उद्देश्य सर्वत्र एक है, उसकी आवाज भिन्न स्थानों में भिन्न नहीं हो सकती।

यदि हम ईसा, भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध, भगवान् कृष्ण, हजरत मुहम्मद साहब, गुरु नानक साहब आदि महान् आत्माओं एवं विभूतियों में विश्वास रखते हैं और यदि हम शान्ति के लिए जाग्रति नहीं उत्पन्न कर पाते, तो इसका यह अर्थ होगा कि उन महान् आत्माओं, जिनमें हम विश्वास करते हैं, का जन्म और मृत्यु निरर्थक ही रही। यदि हम संसार को घृणा, लोभ, स्वार्थ, अभिमान आदि से मुक्त करने में असमर्थ रहते हैं, तो अन्तिम आशा भी समाप्त है। यदि हम इस रोगी समाज और मानवता को बचाने का कोई उपाय नहीं खोज पाते हैं, तो हम लोगों की इस सभ्यता का भाग्य अन्धकार में है। संक्षेप में हमें घृणा, द्वेष, स्वार्थ के मूल को नष्ट करना है और लोगों में नैतिक एवं आध्यात्मिक भावनाओं को विकसित करना है, जिससे विश्व-बन्धुत्व की सही भावना का प्रसार हो सके। यदि इस काम को हम लोग नहीं करते तो और कौन करेगा?

यदि विश्व-एकता और विश्व-शान्ति किसी प्रकार से शक्ति और यन्त्रों के द्वारा लायी जाती है, तो एक भयानक प्रकार की विश्व-व्यापी दासता आयगी और यह पृथ्वी एक विशाल जेल के समान हो जायगी, जिसमें लौह-आवरण की भी आवश्यकता नहीं होगी और आत्महत्या के सिवा कोई चारा नहीं होगा। ईश्वर ही इससे बचाये। जो सबसे बड़ी आवश्यकता है, वह यह है कि नैतिक एवं आध्यात्मिक धरातल पर एक नव-क्रान्ति हो। हमें इन नये बन्धनों, सीखचों, घृणा तथा कट्टरवादों के घेरे को तोड़ना ही होगा। अब हम एक मूक दर्शक की तरह प्रतीक्षा में समय नहीं बिता सकते।

यह तभी सम्भव हो सकता है, जब धर्म गिरिजाघरों, मन्दिर और मस्जिदों से बाहर आता है और बाहर आकर क्रियात्मक रूप धारण करता है, शान्ति की समस्या का समाधान आध्यात्मिक मूल्यों से हीन सामाजिक और अर्थिक क्रान्तियों से सम्भव नहीं है, यह धार्मिक एवं सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित आध्यात्मिक क्रान्ति ही है जो मनुष्यों को खुशहाली और उच्चतम कल्याण के लिए बिना किसी प्रकार की क्षति की भावना के प्रेरित कर सकती है। यह आध्यात्मिक क्रान्ति का आधार मानव-प्रेम होगा, न कि राष्ट्रीय घृणा या वर्ग-संघर्ष। इसकी प्राप्ति लक्ष्य एवं वास्तविकता में घृणा उत्पन्न करने के बदले वास्तविकता को लक्ष्य में परिणत करने से हो सकेगी। जो सामाजिक एवं आर्थिक प्रयोजनों पर आवश्यकता से अधिक जोर देते हैं, वे अपने को आध्यात्मिकता एवं धर्म से बहुत दूर ले जाते हैं। इस प्रकार वे जिन फूलों को खिलाना चाहते हैं, उनकी जड़ों को ही काट डालते हैं। सामाजिक दक्षता आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में मनुष्य को कहीं नहीं ले जायगी। पर पूरे सामाजिक ज्ञान के साथ आध्यात्मिक एवं धार्मिक दक्षता चिरस्थाई शान्ति का निर्माण कर सकेगी।

जब तक मनुष्य अपना प्रतीक जो उसे दूसरों से भिन्न करता है, लगाये रहता है, वह मानवता की महत्ता तक ऊपर नहीं उठ सकता है। सच्ची शिक्षा वह है, जो हमें भारतीय, अमेरिकन, रशियन, जापानी आदि न बनाकर केवल एक मानव और ईश्वर का एक विनम्र भक्त बनाती है। एक वास्तविक संस्कृत मनुष्य वह है, जिसकी चमत्कृत सहानुभूति हृदय की सच्ची भावनाएँ, ईश्वरीय आचरण उसमें मनुष्य की सभी जातियों के प्रति बन्धुत्व की भावना का विकास करता है। वह एक सार्वदेशिक व्यक्ति होता है। इस प्रकार के मानव गुरु नानक थे, भगवान् बुद्ध थे, ईसा मसीह थे, भगवान् कृष्ण और भगवान् महावीर थे।

इसलिए वास्तविक एवं चिरस्थायी शान्ति के लिए एकमात्र उपाय घृणा का निराकरण है, जो लोगों के मन में रहती है। सहिष्णुता जो एकमात्र प्रेरक है, ईश्वर की आध्यात्मिक शक्ति जो एकमात्र विधान है, प्रेम और एकमात्र प्रार्थना, नैतिक साहस तथा सत्य की विजय ही शान्ति की प्राप्ति का वास्तविक साधन है। ● ● ●

विनाशक तैयारियाँ

●

त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति शायित्व माधव

संसार आज बहुत द्रुत गति से वैज्ञानिक प्रगति की ओर बढ़ रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं। पर उनकी आश्चर्यजनक वैज्ञानिक सिद्धियों एवं बीसवीं सदी की सभ्यता के अभिमान के बाद भी यह एक ताज्जुब का विषय है कि वे अणुबम सरीखे आयुधों के आविष्कार में संलग्न हैं और समस्त मानव जाति के नाश की योजना बना कर उसके लिए कब्र खोद रहे हैं। किसी क्षण आग भड़क सकती है और परिणामस्वरूप सारे संसार का विनाश हो सकता है। विश्व के सन्तगण इस विचार में तन्मय हैं कि किस प्रकार इस खतरे को दूर किया जाय। केवल भौतिक एवं वैज्ञानिक सिद्धियाँ इस प्रकार के खतरे से संसार को बचाने में समर्थ नहीं हैं। हालांकि वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं प्रगतियाँ अपने स्वभाव में दोषी नहीं हैं। सब उनके उचित प्रयोग पर निर्भर करता है। विज्ञान का उपयोग मानवता के कल्याण के लिए भी हो सकता है और उसका दुरुपयोग मानव-सभ्यता के विनाश के लिए भी हो सकता है। इसलिए इस विषय पर विचार करना तथा परस्पर अविश्वास, जो व्यक्तियों या विभिन्न राष्ट्रों में व्याप्त है उसके मूल रोग का पता लगाना आवश्यक है। जब तक विभिन्न व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के स्वार्थ अलग-अलग हैं, संघर्ष और झगड़े अवश्यम्भावी हैं। उसे कोई भी दूर नहीं कर सकता है। यह संसार सीमित है। जब एक ही सीमित वस्तु के अनेक इच्छुक होते हैं या हकदार होते हैं, तब उनमें संघर्ष निश्चित है। इसी कारण से भारतीय सन्तों के विचार पाश्चात्य नेताओं से तथा अपने देश के पाश्चात्य मनोवृत्ति के नेताओं से शान्ति की समस्या के समाधान के लिए भिन्न हैं। भारतीय सन्त आधारभूत कमी का अनुभव करने में बहुत ही बुद्धिमान हैं, जो कमी तथाकथित सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमानों के प्रयत्नों में परिलक्षित है। वे इस बात को जोर देकर कहते हैं कि समस्या का व्यावहारिक समाधान तब तक सम्भव नहीं है, जब तक व्यक्ति सीमित वस्तुओं की प्राप्ति की लालसा को छोड़कर असीम, अन्तिम और चरम शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं होता।

मेरा यह निश्चत मत है कि अशान्ति, घृणा तथा चिंता का प्रमुख कारण अपनी वास्तविक स्थिति की अज्ञानता है, वह शारीरिक सहिष्णुता नहीं है, यह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से परे है। प्रत्येक व्यक्ति एक आध्यात्मिक चेतना के सिवा कुछ नहीं है। आत्मा अविनाशी है। इसका आदि और अन्त नहीं है। यदि हम इस गहन विषय की तह में पहुँचें, तो इसका अस्तित्व उस परम सत्ता में मिल सकेगा। यह वही चेतन सत्ता है, जिसे ईश्वर कहते हैं। इसे सत् चित् आनन्द अर्थात् सर्वचेतन, सर्वज्ञ और परमानन्द कहते हैं। विभिन्न व्यक्ति उसमें से निकलती हुई ज्योति-किरण के समान हैं। व्यक्ति

का स्वयं में अपना अस्तित्व नहीं है। वे सभी एक-दूसरे से सम्बन्धित और आपस में आबद्ध हैं तथा सभी का एक सह-अस्तित्व है, पर व्यक्तियों की एक वैयक्तिक चेतना है और इससे एक स्वतन्त्र विचार है। वह अपने भिन्न आचरणों तथा उसके परिणामों की विभिन्नता के कारण भिन्न वातावरण की प्राप्ति का अवसर ढूंढता है। इसीसे उनके विचारों और स्वभावों में भिन्नता होती है। इस विभिन्नता और वैषम्य को हम लोग दूर नहीं कर सकते हैं। यह एक समस्या है, जो एक मनुष्य को दूसरे का शत्रु बनाती है। यहाँ सहिष्णुता की जरूरत होती है। संसार के धर्म-प्रवर्तकों के लिए विशाल दृष्टिकोण एवं दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता की भावना भारतीय सन्तों की एक देन है।

उपरोक्त विषमताओं के समाधान के लिए उद्देश्य एवं मंच की एकता की जरूरत है। लोगों में उद्देश्य व भावना की एकता की भावना तभी भरी जा सकती है, जब उन्हें मालूम हो कि वे आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा वे एक ही सृष्टि-विधान के अंग तथा एक ही पिता के पुत्र एवं पुत्रियां हैं। यह विषय धर्मों का है। वह लोगों को शिक्षा दे कि सभी एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। यद्यपि ईश्वर के प्रति निष्ठा प्रत्येक व्यक्ति के स्वस्थ विकास के लिए सहायक है, उसकी अन्धभक्ति जिससे कटुता का प्रादुर्भाव होता है, भर्त्सना के योग्य है; क्योंकि वह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के हक में हानिकर है। सच्चा धर्म सभी के प्रति प्रेम की शिक्षा देता है। भगवान कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु ने जाति, पंथ धर्म आदि के भेदों के रहते हुए भी सभी जीवों को एक सूत्र में बाधने के लिए ईश्वरीय प्रेम की शिक्षा दी है।

सहिष्णुता और संतोष के अभाव का जन्म लोभ एवं लोलुपता से होता है। जिस कार्य का उद्देश्य निज के ही स्वार्थों का एकमात्र प्रतीक है, वह लोभ है। इस तृष्णा और लोभ की पूर्ति बिना दूसरों को क्षति पहुँचाये सम्भव नहीं है और इसका बहिष्कार अपेक्षित है। स्वार्थ की पूर्ति की बाधा से क्रोध, कलह, संघर्ष का विकास व्यक्तियां एवं राष्ट्रों के बीच होता है। जब तक लोग यह नहीं समझते कि वे परस्पर सभी एक-दूसरे से अभिन्न रूप से सम्बन्धित हैं तथा उनके कार्यों का केन्द्र ईश्वर है, केवल भावुकता या सिद्धान्तों से व्यक्तियों के बीच सच्चा प्रेम नहीं आ सकता है। यदि यह मालूम हो जाय कि किसी दूसरे की क्षति पहुँचाने से निज की ही क्षति होती है, तो हमें किसी को क्षति पहुँचाने की प्रेरणा नहीं प्राप्त होगी। यदि हम उस परम सत्ता से प्रेम करें, मेरा मतलब ईश्वर से है, तो उसके ही किसी अंग को क्षति पहुँचाने की भावना कभी नहीं आ सकती है। इसलिए संसार की समस्याओं के समाधान के लिए ईश्वरीय प्रेम सर्वोत्तम मार्ग या साधन है।

मैं यह नहीं मानता कि यह परिवर्तन एक ही दिन में सम्भव हो सकेगा। संसार के सभी धर्माचार्यों से मेरी अपील है कि इस सम्बन्ध में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनायें। मेरा सुझाव है कि एक उपसमिति का गठन किया जाय, जिसमें संसार के सभी धर्म के प्रतिनिधि हों, कुछ नैतिक एवं आध्यात्मिक नियमों को चुन लें, उन शिक्षाओं को एकत्र कर लें जो सभी धर्मों में समान हैं तथा जो दूसरो की मान्यताओं और विश्वासों को ठेस न पहुँचायें, जो सभी प्रतिनिधियों को स्वीकार हों और उन शिक्षाओं को पुस्तक के रूप में छपवाने की व्यवस्था सभी भाषाओं में की जाय तथा उसकी शिक्षाएँ सभी स्कूलों तथा कॉलेजों में अनिवार्य हो।

और जिनकी तन-मन-धन से की गयी सहायता ने द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन के कार्यक्रमों को सुव्यवस्थित रूप से संपन्न किया ।

भानूलाल रामजी कोठारी

बाबूभाई अडानी

जेठमल बाँठिया

नेमचंद ठाकरसी जैन
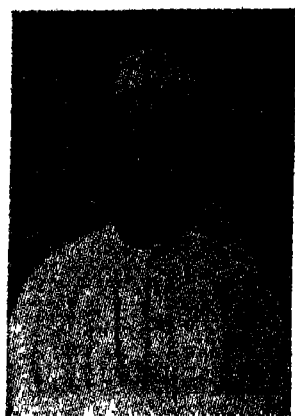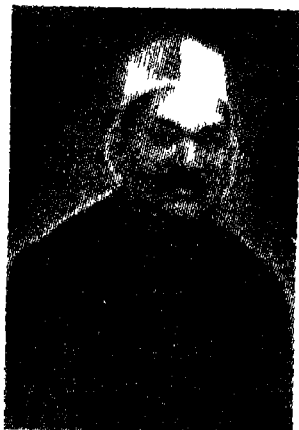
हीराचंद त्रिभुवन कमाणी

अगरचंदजी सेठिया

जिनके दृढ़ समर्थन ने सम्मेलन को बल प्रदान किया।
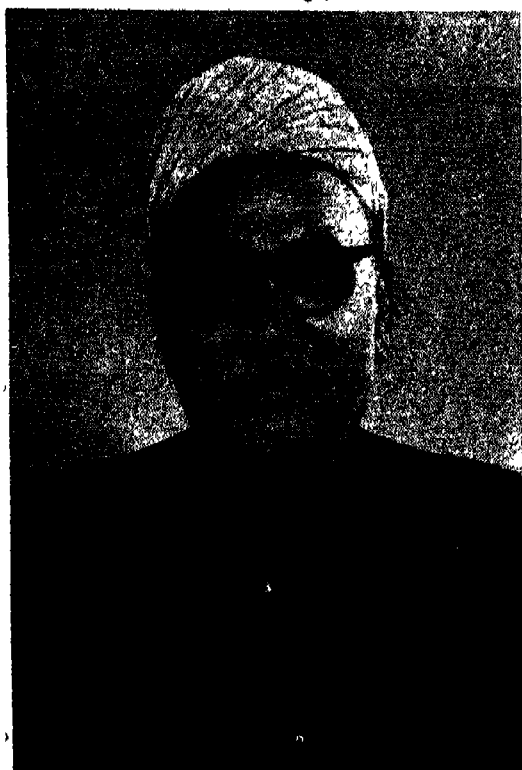
पूरनमल जयपुरिया

डूंगरमल दस्सानी

नरेन्द्र सिंह सिंघी

गोविन्दरामजी भंसाली

धर्मों का सहअस्तित्व

डा० तारन सिंह
(सिक्ख खालसा दिवान)

निस्सन्देह इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि सभी धर्मों को सह-अस्तित्व का अधिकार है तथा उन्हें एक-दूसरे का आदर करना चाहिए। यहाँ पर प्रश्न यह है कि इस समस्या का क्या समाधान है कि आज विभिन्न धर्म परस्पर सह-अस्तित्व एवं समादर का भाव नहीं रखते तथा एक ही प्रकार का आदर भाव सभी के लिए नहीं रखते। इस प्रकार की अश्रद्धा तथा संघर्ष को दूर करने का उपाय क्या है? सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक ने इस समस्या के समाधान के लिए दो महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। एक के सम्बन्ध में मैं सिक्खों के पवित्र धर्म-ग्रन्थ का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। वह यह है कि इस ग्रन्थ में केवल सिक्ख गुरुओं एवं प्रवर्तकों की ही वाणियों का संग्रह नहीं है। वास्तव में इसमें सभी धर्मों की वाणियाँ संग्रहीत हैं। गुरु ग्रन्थसाहब में बाबा फरीद, जो पंजाब के एक मुसलमान थे, की शिक्षाएँ भी सन्निहित हैं और उनकी शिक्षाओं का आदर उतना ही है, जितना गुरु नानक की शिक्षाओं का। फिर इसमें कबीर की शिक्षाएँ भी सम्मिलित हैं और उनका आदर भी सिक्खों में उतना ही है, जितना गुरु अर्जुन या अन्य सिक्ख गुरुओं की वाणियों का। फिर इस ग्रन्थ में रामानन्द, रविदास आदि की वाणियाँ भी सम्मिलित हैं और सबका समान आदर है। इसलिए पहली चीज जो हम लोगों को करनी चाहिए वह यह है कि किसी भी धर्म के अनुयायी को चाहिए कि वह अन्य सभी धर्मों के सन्तो, प्रवर्तकों एवं शिक्षाओं के प्रति आदर का भाव रखे, चाहे उनका जन्म कहीं भी हुआ हो और उनकी शिक्षाएँ कुछ भी हों। चाहे कुछ तात्विक या सैद्धान्तिक भेद भी हों, पर यह सत्य है कि किसी भी एक सन्त की शिक्षाओं को यदि ठीक से पालन किया जाय तो वह मनुष्य को काफी उन्नत बना सकती है।

दूसरी बात यह है कि एक धर्म के द्वारा दूसरे धर्मवालों को अपने धर्म में परिवर्तित करने के कार्य को बन्द किया जाय। गुरु नानक जब भी कभी मुसलमानों के सामने आये, तो उनसे वे ऐसा कभी भी नहीं कहते थे कि तुम मेरे पन्थ में आ जाओ और तुम्हारा कल्याण होगा। कोई मुसलमान मिलता तो उससे यही कहते कि यदि तुम अपने में चरित्र के कुछ गुणों का विकास कर पाते हो, तो तुम्हारा पहले से ही कल्याण है और उन्हें वह कहते–सिदिक मुसल्ला हक हलाल कुरान, तसबी सात सुभाव की नानक राखै लाज–यदि तुम करुणा की मस्जिद में जाते हो, यदि तुम अपने में दया का विकास करते हो तो तुम्हारी रक्षा तो पहले से ही हो गयी। यदि तुम्हें अपने पैगम्बर पर विश्वास है और तुम्हें ईश्वर में विश्वास है, तो तुम्हारा कल्याण है। तुम्हारे लिए यह कोई आवश्यक नहीं कि तुम उसी प्रकार के ईश्वर में विश्वास करो, जिस प्रकार ईश्वर में मैं विश्वास करता हूँ। यदि तुम्हें अपने पैगम्बर में विश्वास है वह चाहे, जो भी हो, तो

तुम्हारा कल्याण है। जब भी उनसे हिन्दू मिलते थे, तो उन्हें भी वह अपने पन्थ में आने के लि नहीं कहते थे। वह उनसे कहते थे कि "दया, कृपा, संतोष, सत, यत् गन्डी तत् सत्त।"

यदि तुम में दया है, तुम्हारा कल्याण है। यदि तुम्हें विश्वास है, उस सत्ता में, चाहे वह जो भी नाम से हो, तो तुम्हारा कल्याण है। जब कभी उन्हें किसी योगी से भेंट होती थी, तो वह उनसे यह नहीं कहते कि तुम्हें योग से मोक्ष नहीं मिल सकता है, मोक्ष केवल भक्ति के द्वारा ही मिल सकता है। वह ऐसा नहीं कहते, बल्कि वह कहते कि कर्म, ज्ञान योग सभी एक हैं। यदि आप में संतोष व चरम पद प्राप्ति की भावना है। यदि तुममें करुणा, दया है तो तुम्हारा कल्याण पहले से ही है। यदि तुमने बहुत-सी शिक्षाएँ सुनी हैं पर तुममें दया नहीं है, तो तुम्हारा त्राण नहीं है। इसलिए प्रश्न यह है कि हम लोग किसी एक धर्मवाले को दूसरे धर्म में लाने का प्रयत्न नहीं करें, बल्कि मुसलमानों को कहें कि तुम्हारा कल्याण इस्लाम से है, क्रिश्चियनों को कहें कि कल्याण क्रिश्चियन धर्म से है और हिन्दुओं का कल्याण उनके अपने धर्म के द्वारा होगा और इसी प्रकार सभी का कल्याण अपने-अपने धर्मों से ही सम्भव है—यदि उसे अपने धर्म के प्रति विश्वास और श्रद्धा है।

• • •

युद्ध की छाया में

•

वेनरेबल विशुद्धानन्द महाथेरो
(अध्यक्ष, बुद्ध क्रिस्टि प्रचार-संघ, पाकिस्तान)

मानव-समाज के विकास के एक महत्त्वपूर्ण काल में हम सभी आज मिल रहे हैं। जब हम लोग पिछली बार दिल्ली में मिले थे, उसको दो वर्षों से भी अधिक हो गये। वह विश्व के विभिन्न भागों के धर्म-प्रतिनिधियों का शान्ति के मित्रों के मिलन के समान था।

इस बीच में ससार मे अनेक आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। मनुष्य अन्धकार में, असीम शून्य के रहस्यात्मक क्षेत्र में कूद पड़ा है और वायुमण्डल एवं नभ के विजय की कल्पना से भी परे की खोज की भावना के चक्कर में पड़ गया है। फिर भी भयानक युद्ध के खतरे की सम्भावना अपनी छाया मानवमात्र को आवेष्टित कर रही है। यह प्रसन्नता का विषय है कि सद्भावनाओं एवं सद्विचारों के भी कुछ चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं और मानव जाति तथा अतीत काल से उसके चिर संचित सभ्यता के एक क्षण में सर्वनाश के भय के बीच में यह एक आशा की किरण विद्यमान है।

हम लोगों ने धार्मिकों की हैसियत से अपना कर्तव्य निभाया। हम लोगों ने अपनी तरह से उद्देश्य की एकता को लेकर एक उन्नत वातावरण तथा मानव मात्र में सुन्दर धार्मिक एवं सात्विक मूल्यों की प्रेरणा भरने के लिए प्रयास किया है। गत सम्मेलन में हम लोगों ने युद्ध के विरुद्ध लोगों की नैतिक भावना को उभारने का बीड़ा उठाया था तथा उसकी भयानक सम्भावनाओं के विरुद्ध भी। हम सभी शान्ति के पक्ष में हैं और एक ऐसी शान्ति, जिसका विकास मानवमात्र की प्रसन्नता एवं सौख्य में होता है तथा सभी धर्मों का यही एक अन्तरंग सूत्र है।

इस प्रसंग में मैं अपने हृदय के अन्तर से आप सभी का अभिनन्दन करता हूँ हम लोग सुदूर एवं निकट के देशों से आकर मिल रहे हैं, हमारी भावनाएँ एक चमत्कृत भविष्य की कल्पना में आह्लादित हो उठती हैं।

हम सभी गोरे, काले, भूरे रंगों के तथा हजारों मील एक-दूसरे से अलग स्थित देशों के लोग यहाँ पर आये हैं। परन्तु हम सभी एक ही विचार-स्रोत के हैं और एक उन्नत वातावरण का निर्माण समाज में तथा समस्त विश्व में कायम करने की उत्कट अभिलाषा रखते हैं।

आप सभी जानते हैं कि मैं पाकिस्तान से आया हूँ और मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि हमारे यहाँ के लोगों में भी शान्ति एवं प्रगति के समर्थक हैं। पहले भी हम लोगों का लक्ष्य वही था और आज भी शान्ति-प्रेमी लोगों के साथ मानवता की चिरस्थायी शान्ति एवं उन्नति के स्वर में मैं अपना स्वर मिलाता हूँ।

इस प्रसंग पर हम लोगों को अपनी शक्ति का अन्दाजा लगाना आवश्यक है। अपने पूर्वजों की देन से ही और जब मैं आपके समक्ष बोल रहा हूँ तो मेरा मन मानव-इतिहास के अतीत काल की ओर दौड़ता है, जब इस देश में भगवान् गौतम बुद्ध के रूप में एक महान् मानवीय दार्शनिक का अवतरण हुआ था। उनके उपदेशों में एक अत्यन्त सुसंस्कृत भावना का दर्शन मिलता है। सभी घटनाओं के कारण होते हैं और सभी कर्मों का परिणाम होता है। यह सिद्धान्त सारे संसार में कार्य करता रहता है और इनका परस्पर का सम्बन्ध ही तथ्यों के वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का आधार है। इसी कारण से बुद्ध के मत को आज के बुद्धिजीवी लोगों में भी एक बहुत ऊँचा स्थान और सम्मान प्राप्त है, हालांकि मूल्यांकनों में परिवर्तन आ रहे हैं।

उन्होंने सभी प्रकार की रूढ़ियों का विरोध किया तथा लोगों से अपने सिद्धान्तों की जाँच करने को भी कहा, न कि वे केवल अंध श्रद्धा में उन्हें स्वीकार करने जायें। उनके शब्द हैं—"एहि पास को, उपनायिको पकट्टम्, वेदिताब्बोविन्नुहिती।" अर्थात् आओ और देखो यदि तुम इसे ठीक समझ पाते हो, तो स्वीकार करो अन्यथा तुम्हें अस्वीकार करने का अधिकार है। यह स्वर उसीका हो सकता है, जो एक साहसिक क्रान्तिकारी हो, उन सभी रूढ़ियों के विरुद्ध जो आज समाज में व्याप्त हैं। आज संसार आग की लपटों से घिरा है। अन्तर और बाहर आग लगी है। यहाँ पर मैं केवल इस बात का स्मरण दिलाना चाहूँगा कि बुद्ध ने मनुष्यों के लिए क्या उपदेश दिया। "मेत्ता, करुणा, मुदित एवं उपेक्खा"—एक ऐसे संसार में जो घृणा एवं द्वेष से जर्जरित हो इससे बढ़कर कौनसा गुण चाहते हैं, जिसे हृदय और आत्मा में पाला जाय, जो व्यक्ति एवं समाज के लिए प्रेम और करुणा है।

हमें निश्चित रूप से बुरे कर्मों से दूर रहना चाहिए और उचित बुद्धिसंगत कार्यों को करना चाहिए, मैं केवल उन्हीं सिद्धान्तों पर जोर देना चाहता हूँ, जिसका मानव समाज की [illegible] से निकट का सम्बन्ध है, जब कि आज के युग में मनुष्य घृणा और भय से संत्रस्त है। हममें से प्रत्येक को अपना जीवन उस उद्देश्य के लिए लगा देना चाहिए, जो मानवता को विनाश से बचा सकता है। मैं भगवान बुद्ध के सन्देश को पुनः दुहराता हूँ कि—'सब्बे सत्ता सुखिता हन्तु' और मैं समस्त प्राणियों की सुख-शान्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ। ● ● ●

धर्म : एक सर्वांग जीवन-दर्शन

मुनिश्री सुशील कुमारजी

आज द्वितिय विश्वधर्म-सम्मेलन के अन्तर्गत होने वाले इस धर्म-परिसंवाद में आपको उपस्थित देख कर मुझे बहुत प्रसन्नता है। वैसे तो यह विश्वधर्म-सम्मेलन स्वयं ही विभिन्न प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन है, जिसका उद्देश्य धर्म से सम्बन्धित समस्याओं एवं गुत्थियों को सुलझाना है। फिर भी इस धर्म सम्मेलन में उपस्थित विभिन्न धर्मों के हम सभी लोगों को चाहिए कि हम इस पर बहुत अधिक व्यापक रूप से विचार करें।

इस प्रकार के सम्मेलन पुराने जमाने में भी हुआ करते थे। उस जमाने में बहुत से मुल्कों में एक से अधिक धर्म हों, ऐसा नहीं था। इसलिए जो भी शास्त्रार्थ होते थे वे धर्मों की पार्श्वभूमि में होते थे और विचार के द्वारा उसी धर्म से संबंधित गुत्थियों को सुलझाना होता था। जैसे-जैसे जमाना बीतता गया नये-नये धर्म नये-नये रूप में संसार के सामने आये और एक ही मुल्क में एक से अधिक धर्मों के अनुयायी रहने लगे। इससे धार्मिक परिसंवादों को एक समस्या का सामना करना पड़ा, क्योंकि जिस सहूलियत से पहले आपस में बात हो सकती थी, वह सहूलियत बाद में नहीं रह गयी क्योंकि अलग-अलग धर्मों के प्रतिनिधि, अपने-अपने धर्मों की बातों को ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि मानने लगे थे। फल यह हुआ कि उनको एक-दूसरे की बड़ाई ही नहीं, धार्मिक भाषा भी समझने में दिक्कत पडने लगी। सब अपने ही धर्म को मानने लगे और अपने धर्मों में सर्व-श्रेष्ठता को ही सिद्ध करना उनका उद्देश्य बन गया। फल यह हुआ कि विभिन्न धर्मों के अन्दर आपस में कटुता बढ़ी और सैनिक एवं राजनैतिक रूप में ही नही, दार्शनिक रूप मे भी उनमे बराबर झगड़ा चलता रहा। संसार का धार्मिक इतिहास ऐसे अनेक झगड़ों से भरा पड़ा है। उनमें धर्म के नाम पर इतनी ज्यादा खून-खराबी हुई, जिसको देख कर रोंगटे खड़े हो जाते है। धार्मिक गुरुओं को जलाया गया, फाँसी दी गयी, कत्ल किया गया। शासन करने वाली सत्ता को जिसने अंगीकार किया उसके अलावा दूसरे धर्मों को मानने वाली प्रजा पर अनेक तरह का जुल्म ढाया गया और सारे संसार के इतिहास में एक बार नहीं, हजारों बार धार्मिक मदान्धता एवं क्रूरता का प्रयोग किया गया। इससे धर्म के सुन्दर चेहरे पर कालिख लग गयी और जिस धर्म से समस्त संसार को सभ्यता, समानता, शान्ति एवं शिष्टता की प्रेरणा मिली थी, वही धर्म स्वयं ही इन गुणों को नष्ट करने के लिए प्रधान साधन बन गया। यह बात भी ठीक है कि बीच-बीच मे इस संसार के अन्दर अच्छे-अच्छे आदमी आये, अच्छे-अच्छे शासक पैदा हुए तथा उनके जमाने में सभी धर्मों को एक जगह एकत्रित करने की चेष्टा की गयी। लेकिन इस काम मे सफलता नहीं मिल सकी। इसी कारण से अधिकाश संख्या में विभिन्न धर्मों को मानने वाली जनता में एक दीवार खडी हो गयी तथा किसी को अपने से भिन्न धर्मों

के मानने वालों के बारे में कोई जानकारी ही न रह गयी। धर्मों के बीच इस तरह की लड़ाई का किस तरह से खतरनाक नतीजा हो सकता है, इसका सबसे मुख्य उदाहरण हिन्दुस्तान का दो भागों में बँट जाना है।

हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के अनुयायियों के बीच इस लड़ाई का कितना खतरनाक परिणाम हुआ, यह इसी से मालूम पड़ता है कि कम-से-कम पचहत्तर सौ आदमियों को अपनी भूमि छोड़कर घर-बार से बहुत दूर जाकर बसना पड़ा। पुराने जमाने में भी रोमन कैथालिकों और प्रोटेस्टेन्टों के बीच भी ऐसे ही खतरनाक झगड़े हुए थे। इसी तरह इस्लाम की मार के सामने पारसियों को अपना घरबार छोड़ करके हिन्दुस्तान में आना पड़ा और इन पारसियों में से जो लोग ईरान में रह रहे हैं, उन पर अनेकों तरह के जुल्म ढाये गये। इस्लाम को स्वयं भी ईसाइयत के सामने ईसाइयत को इस्लाम के सामने बहुत बुरी अत्याचारों का सामना करना पड़ा। इसी तरह यहूदियों को भी पूरे २५ वर्षों तक ठोकरें खाते हुए अस्त-व्यस्त-त्रस्त रह करके फिरना पड़ा। चीन में भी टाओ धर्म कन्फ्युशियस और बुद्ध धर्म के बीच में अनेक झगड़े हुए और उनमें काफी खून-खराबी हुई। इससे संसार का धार्मिक इतिहास खून से लाल ही लाल रंग उठा है। आज अगर धर्मों के नाम पर दुनिया में भय पैदा होने लगा है, तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है। अगर यही धर्मों के व्यावहारिक जीवन में उसूल हुए, तो इतने कत्ल धर्मों के नाम पर क्यों हुए, यह सवाल है। इस सवाल का जवाब देना हमारे लिए बिलकुल आसान नहीं है। अगर हम सही तौर से जवाब न दे पाये और इस रोग का ठीक इलाज न ढूंढ़ पाये तो धर्मों की कीमत संसार में कम ही होती चली जायगी। इसके लिए हमें आपस में बैठकर यह समझना है कि हमारे बीच ऊँचे सिद्धान्तों के होते हुए भी झगड़े क्यों हो रहे हैं?

आखिर ऐसा क्यों ?

•

जहाँ तक मुझे मालूम है, इन सब झगड़ों का कारण यह है कि जैसे-जैसे धर्मों के मूल प्रचारक या पैगम्बर या मसीह इस संसार में न रहे और उन धर्मों की बागडोर उनके शिष्यों के साथ में आयी, वैसे वे धर्मों का राजनैतिक और सैनिक लिबास लेने और धर्मों के नाम पर अलग-अलग फिरकों और जातियों के बनाने एवं दूसरों को लूटने का काम अपनाने लगे। चूँकि इन फिरकों के धर्म आपस में अलग-अलग थे, इसलिए फिरके जो कि अधिक उन्नति कर जाते थे, वे एक-दूसरे के नाम पर अत्याचार एवं अन्याय करने लगे। इसी तरह धर्मों के इतिहास के अन्दर अलग-अलग जातियों की साम्राज्य-लिप्सा और लूटने-खसोटने की प्रवृत्ति छिपी हुई है। और इसी प्रवृत्ति ने धर्म के इतिहास को खून के कतरों से भर दिया। इस तरह जिसको हम धर्म का इतिहास कहते है, वह सही माने में धर्म का इतिहास नहीं है। इस इतिहास के बनाने में चाहे किसी भी धर्म का नाम लिया गया हो चाहे, वह बुद्ध धर्म हो, ईसाइयत हो, यहूदी धर्म हो या हिन्दू धर्म हो, ये इतिहास इन धर्मों के नाम पर बनाए भले ही गये हों, लेकिन असल में वे इन धर्मों के कब्रस्तान पर ही खड़े हैं। अगर ऐसा नहीं तो मुझे है यह समझ में नहीं आता कि उन महात्माओं के नाम पर उनके अनुयायियों ने संसार के सारे देशों को फतह करने का विजय अभियान किस तरह उठाया? इन देशों में भी पोर्चुगीज, केथोलिक पादरियों ने लोगों को जबरन ईसाई बनने के लिए जो कारनामे किये, वह किसी से छिपे हुए नहीं हैं। इसी तरह

मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि हिन्दू धर्म के अन्दर मनु के दस धर्मों के लक्षण धर्मों के प्रधान लक्षण माने गये हैं। लेकिन इन लोगों में इस तरह अहंकार कैसे छाया कि लोग एक-दूसरे को छूने आदि में घृणा करने लगे। मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि जिन महात्मा बुद्ध ने प्राणी मात्र के लिए दया भाव का उपदेश दिया था तथा छोटी-से-छोटी तकलीफ देना भी आपत्तिजनक अर्थात् इसे बहुत बड़ा पाप समझा जाता था उन्हीं के मानने वाले बुद्ध धर्मावलम्बी किस तरह से आज संसार में सब से प्रबल मांसाहारी हैं। इसी तरह मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि जिन मुहम्मद साहब ने अपने पड़ोसियों के प्रति पूरा प्यार बर्तनेका उपदेश दिया था उन्हीं के अनुयायियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में कुरान लेकर एटलांटिक से लेकर प्रशान्त महा सागर तक किस तरह खून की नदियां बहाईं। मुझे यह समझ नहीं पड़ता कि जिन जैनियों के लिए एक पतिंगे को मारने में भी पाप लगता है उन्हीं में से किस तरह आज हजारों नवयुवक मांस तक खाते हैं, शराब पीते हैं, ब्लैक करते हैं और रिश्वत लेते व देते हैं। इन सब बातों से मुझे यही समझ पड़ता है कि इन सब धर्मों के अनुयायी अपने मूल धर्म के सिद्धान्तों के कठोर शत्रु हो गये हैं तथा उन धर्मों के मूल आदर्शों एवं नियमों को तो इन्होंने भुला ही दिया है। उन धर्मों का जो अंश रह भी गया था वह भी सूखते-सूखते अब बिल्कुल खाली हो गया है। यही कारण है कि आज सारा धर्म इतना विकृत हो गया है और संसार के बहुत से लोग इन सभी धर्मों को बड़ी नफरत से देखते हैं। संसार में कुछ राष्ट्रों के लोग तो आज धर्म का नाम लेने को ही पाप समझते हैं। उसके पीछे उनके मन के अन्दर धर्मों का यह विकृत रूप ही काम करता है। अगर इस विकृत रूप का हम परिष्कार न कर सके तो जिस तरह एक बाघ के सामने हजारों भेड़ों का झुन्ड एक साथ ही भागता है उसी तरह आधुनिक विज्ञान के सामने इन सारे धर्मों के झुन्ड को एक साथ ही भागना पड़ेगा। जिस तरह कि भेड़ें भागने पर भी बाघ से छुटकारा नहीं पा सकती हैं उसी तरह ये धर्म भागने की चेष्टा करते हुए भी भाग नहीं सकेंगे और विज्ञान की हवा एवं विज्ञान की भावना इन सभी धर्मों को एक साथ ही खा जायगी।

तो हमें चाहिए कि हम इन धर्मों के रूप को परिष्कृत करें। इन धर्मों के बनने के बाद इनमें जो बुराइयां फैली हैं उनको दूर करें। सब से पहले हर एक आदमी को चाहिए कि वह अपने-अपने धर्म की बुराइयों को दूर करें तथा अपने-अपने धर्मों के सम्मेलन बुला करके इन धर्मों की बुराइयों पर विचार करें और उनको दूर करने की चेष्टा करें। क्योंकि हर एक धर्म के पैगम्बरों के अपने एक छोटे दायरे रहे हैं। इसलिए हमें चाहिए कि इन पैगम्बरों के उपदेशों को शिरोधार्य करें, लेकिन उन्हें स्पष्ट रूप से समझने की भी चेष्टा करें, ताकि इतिहास में जो फिरकेबाजी रही है, उसे भी हम समझ सकें। हर एक धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्म सम्मेलन करने पर जिस नतीजे पर पहुँचें, उन नतीजों को फिर दूसरे धर्मानुयायियों के साथ बैठ करके समझने की चेष्टा करें, ताकि हरएक धर्म को यह पता लग सके कि हमें दूसरे धर्म वाले किस नजर से देखते हैं। तब हमारा अहंकार कुछ कम हो जायगा तथा इतिहास के कुछ और धर्मों की तस्वीर भी स्पष्ट हो जायेगी। दूसरा काम यह होगा कि अलग-अलग धर्मों के आचार्य और अनुयायी एक साथ बैठ करके यह फैसला करें कि एक धर्म का दूसरे धर्मों से किन-किन बातों में मतभेद है और वह मतभेद किस तरह से दूर किया जा सकता है। इस बारे में हमें 'धर्मों के बीच पंचशील' के सिद्धान्त को लागू करने की चेष्टा करनी चाहिए। अगर धर्मों के बीच इस पंचशील के सिद्धान्त को हम लागू कर

देते हैं, तो हम यह देखेंगे कि ये झगड़े शीघ्र ही खत्म हो जायेंगे और एक धर्म दूसरे धर्म को इज्जत की निगाह से देखना शुरू कर देगा। यह मानकर चलना ठीक नहीं होगा कि एक धर्म में जो कुछ लिखा है, वही ब्रह्म-वाक्य है, क्योंकि अगर ऐसा मान कर हम चलते हैं, तो किसी तरह कोई झगड़ा समाप्त नहीं हो पायेगा। आज राष्ट्रों के बीच में भी आपस में जो झगड़े होते हैं, वे बातचीत, सलाह तथा समझने आदि से तय होते हैं। उसमें जो उचित पक्ष होता है, उसको ही दूसरे पक्ष वाले भी स्वीकार करते हैं। इसी तरह अगर धर्मों के आचार्यगण भी काम करें, तो धर्मों में होने वाले आपस के झगड़े धीरे-धीरे, सुलझाये जा सकते हैं। इसलिए यह मानना चाहिए कि धर्मों के मूल उपदेशों के अन्दर ज्यादा अन्तर नहीं है तथा अगर इस मूल उपदेश के दायरे में हम काम करें, तो इन झगड़ों का सुलझाना बहुत मुश्किल काम नहीं है। इसके लिए हमें अहंकार अंध-विश्वास, साम्राज्य-लिप्सा एवं जबरदस्ती दबोचने की प्रवृत्ति का परित्याग करना पड़ेगा। एक धर्म का दूसरे धर्म से अगर किसी प्रकार का मतभेद है तो इस मतभेद को हमें नैतिक माप से देखना पड़ेगा। जो पक्ष नैतिक माप से कमजोर पड़ता है उस पक्ष को दूसरे पक्ष के मुकाबले में अपनी जिद छोड़नी पड़ेगी। इस तरह धीरे धीरे ये सब झगड़े छोटे-छोटे दायरों में होते चले जायेंगे और एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि हम देखेंगे कि यह झगड़ा बहुत कम हो गया है। जब झगड़े धीरे धीरे कम पड़ जायेंगे, तो हम एक जगह बैठ करके कार्यक्रम बनाने में सफल होंगे। हमें याद रखना चाहिए कि संसार के सारे लोगों में से अधिकांश लोग अपना जीवन किसी-न-किसी धर्म के नाम पर ही बिताते हैं। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम धार्मिक साम्राज्यवाद को खत्म कर दें। जब सभी धर्म ऊँचे और उत्तम कोटि के हैं, तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों एक धर्म दूसरे धर्म के अनुयायियों को अपने में मिलाने की चेष्टा करता है। अगर समझ बूझ कर कोई एक आदमी एक उसूल से दूसरे उसूल में जाता है तो वह एक अलग बात है। लेकिन लोभ से, लालच से, जोर-जबरदस्ती से, बहलावे से अगर कोई एक धर्म अपना प्रचार करना चाहता है तो वह अपने पर ही कुठाराघात करता है। मुझे इस बात पर थोड़ा गर्व अवश्य है कि भारत ने कभी भी धर्म प्रचार करने के लिए तलवार या रुपये पर भरोसा नहीं किया। यह एक बड़ी चीज थी और अगर संसार के सारे धर्म इस सिद्धान्त को अपना लेते हैं तो यह संसार के लिए बहुत बड़ी बात होगी। आज अगर फ्रान्स पर जर्मनी हमला करता है या चीन हिन्दुस्तान पर हमला करता है तो दुनिया के लोगों को बहुत बुरा लगता है। फिर अगर ईसाइयत इस्लाम पर हमला करती है या इस्लाम हिन्दू धर्म पर हमला करता है तो यह कैसे बुरा नहीं है ? यह मुझे समझ में नहीं आता। ईसामसीह और हजरत मुहम्मद इसके बहुत बड़े परिपोषक हैं लेकिन इसके लिए तो ईसाई और मुसलमान बनने की आवश्यकता ही क्या है। महापुरुषों के उपदेशों का तो मैं दूर से ही स्वाद ले सकता हूँ जिस तरह कि गुलाब के बगीचे की खुशबू सभी को दूर से ही मिल जाती है। इसी तरह अगर कोई कृष्ण, पातंजलि या वेदव्यास के प्रशंसक हैं तो उन्हें हिन्दू बनने की क्या आवश्यकता है, यह मुझे समझ नहीं पड़ता। बहुत से देशों के अन्दर विभिन्न धर्मों के लोग आपस में एक ही साथ खाते पीते हैं, आपस में रिश्ता कायम करते हैं और एक दूसरे के देवस्थान की बहुत बड़ी इज्जत करते हैं, यह बड़ी अच्छी चीज है तथा इस चीज को हमें धीरे-धीरे बढ़ते हुए देखना चाहिए तभी हमारे मनों की दरारें और दीवारें दूर होंगी तथा तभी हम कह सकेंगे कि हम सही माने में एक दूसरे की इज्जत करते हैं। अगर किसी धर्म को अपने धार्मिक नियमों के अनुसार अलग बैठ कर खाने का आदेश है तो वह अपना काम

एकान्त में बैठकर-कर सकते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अपने को औरों से महान् समझें। इसी तरह अगर कोई फिर्का अपने रक्त की शुद्धता के लिए अपने अन्दर के रिश्तों में विश्वास करता है तो यह समझ में आता है। फिर भी हमें यह भी देखना चाहिए कि एक ही धर्म के अन्दर बहुत सी जातियां एवं देशों के रक्त मिले हैं और रक्त शुद्धता का अभिमान किसी भी जगह माने नहीं रखता। इन धार्मिक मतभेदों को हम जबतक ईमानदारी से कम नहीं करेंगे तब तक यह काम अधूरा ही रहेगा और धर्म के लिए भविष्य का खाका बाहर ही रह जायगा।

धर्म के आपस के झगड़ों को छोड़ कर अगर हम देखते हैं तो हमें मालूम पड़ता है कि धर्म के लिए खतरा दूसरे धर्मों से नहीं बल्कि विज्ञान की भौतिक प्रवृत्ति से है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि धर्म को समाजवाद या साम्यवाद से कोई बड़ा खतरा है। लेकिन मैं इन बातों को जरूरी मानता हूँ कि मनुष्य की विज्ञान के रूप में जो बढ़ती हुई शक्ति है मनुष्य पर जो उसका नशा चढ़ता जा रहा है उससे धर्म को अवश्य खतरा है। आज मनुष्य को विज्ञान की बदौलत कुछ शक्ति मिली है, कुछ ज्ञान बढ़ा है एवं कुछ उत्पादन करने की शक्ति बढ़ी है तथा सोचने की शक्ति में भी वृद्धि हुई है। अगर इस बढ़ी हुई शक्ति को मनुष्य रचनात्मक कामों में लगाता है तो संसार के लिए सुख-समृद्धि बढ़ेगी। लेकिन अगर इस बढ़ी हुई ताकत को संसार से झगड़ा करने में लगाया और एक दूसरे से घृणा उत्पन्न हुई तो भविष्य के लिए एक महान् खतरा है। यह खतरा क्यों है यह बताने की जरूरत मैं आप लोगों को नहीं समझता। क्योंकि आज संसार का हर एक राजनीतिज्ञ इसी चिन्ता से परेशान है। लेकिन इस बात के लिए भी हमें दुख है कि अगर मनुष्य की दौलत बढ़ती है तो उसमें अभिमान भी बढ़ता है और अगर उसकी शक्ति बढ़ती है तो उसके पाशविक विचार को भी उत्तेजना मिलती है। अगर बुद्धि बढ़ती है तो मनुष्य उस बुद्धि को दूसरे का शोषण करने के काम में लाता है। आज मनुष्य की दौलत, शक्ति और बुद्धि तीनों बढ़ रही हैं। इसका उपयोग अभिमान, क्रूरता या शोषण पर होगा कि नहीं, यही सवाल है। अभी तक जितने संकेत मिलते हैं उनसे यही मालूम पड़ता है कि मनुष्य ने अपनी बढ़ी हुई शक्ति, दौलत और बुद्धि का उपयोग बाहरी तरीकों से ही करने का फैसला किया है। जैसे-जैसे विज्ञान में उन्नति होगी वैसे-वैसे मनुष्य की दौलत, शक्ति और बुद्धि भी बढ़ेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है। लेकिन इसका उपयोग अधिक अभिमान, क्रूरता और शोषण प्रवृत्ति में हुआ तो यह बाहरी बात होगी और मनुष्य का अस्तित्व समाप्त होने का एक बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायगा। इसलिए जहाँ पहले धर्मों को अपनी बुराइयों से खतरा था वहाँ आज सब धर्मों को एक साथ मनुष्य की बढ़ती हुई शक्ति से खतरा हो गया है। हम यह नहीं चाहते कि यह शक्ति, दौलत एवं बुद्धि घटे, इसके बढ़ने में ही हमारा फायदा है। फिर भी अगर हम इस शक्ति का उपयोग बाहरी तरीके से करते हैं तो हमारे लिए पहले जितना खतरा था उससे भी ज्यादा खतरा पैदा हो जायगा। सभी धर्माचार्यों को जो यहाँ बैठे हैं, उनसे यह निवेदन है कि इस मामले में वे मनुष्य जाति का पथ प्रदर्शन करें। उनमें सभी के अपने-अपने अनुयायी हैं और उन अनुयायियों के माध्यम से आप लोग बहुत बड़ा काम कर सकते हैं। परन्तु इसके पहले सबको अपने धर्मों के अन्दर की खराबियों को दूर करने के लिए तैयार होना चाहिए। साथ-साथ में दूसरे धर्मों से जो उनके मतभेद हैं, सब को साथ में बैठ कर के इन मतभेदों को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। जहाँ पर जरूरत है वहाँ पर झुकना चाहिए और जहाँ पर जरूरत

है वहाँ पर दूसरे से अपनी उचित बात मनवानी भी चाहिए। तभी उनके काम करने की और उन्नति करने की शक्ति बढ़ेगी। इसके लिए धार्मिक पैगम्बरों द्वारा बताये हुए मूल नैतिकनियमों की पुनः स्थापना करने की जरूरत है तथा इन नैतिक मूल्यों को समाज के अन्दर लागू करने की आवश्यकता है। अगर ऐसा करने में हम सफल हुए तो इतिहास में हम बहुत बड़ा काम कर पायेंगे और अगर असफल हुए तो हमारा जीवन विज्ञान के आगे नष्ट हो जायगा तथा विज्ञान मनुष्य की नैतिक कमजोरियों के कारण नष्ट हो जायगा। हम इतिहास के चौराहे पर खड़े हुए हैं और हमें यह फैसला करना है कि हमें कुछ काम करना चाहिए या नहीं। अगर काम करना चाहिए तो सही या गलत काम करना चाहिए ! कहने को तो सब यही कहेंगे कि हमें सही काम करना चाहिए लेकिन कहने और करने में बहुत फर्क होता है। हम में से आज भी बहुत से लोग गलत काम कर रहे हैं। इसके लिए ईमानदारी, साहस और परिश्रम की जरूरत है। अगर हमने इन गुणों को अपनाया और इनके अनुसार काम किया तो आज हमारा मिलना सफल रहेगा। इसके लिए हमें संगठन को बहुत अधिक मजबूत बनाने की आवश्यकता है। इसके बाद जो काम होगा वह हमें धीरे-धीरे समझ में आने लगेगा और हम इतिहास में भी कुछ सफलता हासिल कर पायेंगे। मैं आप से अनुरोध करता हूँ कि आप इन सब बातों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें और इतिहास की धारा को सही रास्ते पर ले जाने के लिए जो जरूरी काम है, उसे करें। हमारा और आपका जीवन तभी सफल है अन्यथा हम पिछड़ जायंगे और अन्त में नष्ट हो जायंगे। ● ● ●

इसके अलावा निम्नोक्त प्रतिनिधियों ने विश्वधर्म सम्मेलन के आयोजन की मुक्तकंठ से सराहना करते हुए अपने विचार रखे।

१ स्वामी विज्ञानन्द अवधूत-महानिर्वाण मठ, नवद्वीप

२. मनफूलसिंह जी, सर्व हितकारी संघ

३. हकीम कारी जन्नत हुसैन

४. कामगार पारसी (ईरान)

५. स्वामी स्वानन्दजी (गंगोत्री)

६. डा० मधुसूदन

७. त्रिपुरा चरण देव

८. स्वामी सर्वानन्दजी

९. मौलवी बशीर अहमद

१०. सैयद भाई जरीब

अन्त में अध्यक्ष के भाषण के साथ उपरोक्त प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया।

●

(६ फरवरी, ६०)

●

डॉ० राधाविनोद पाल (अध्यक्ष)

द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन के इस महान अवसर पर विश्वधर्म-संगम में सहयोगी बनने के लिए आपके निमन्त्रण से अपने को मैं बहुत ही सम्मानित समझता हूँ। इस अपूर्व सम्मान के लिए कि मुझे इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया, मैं समिति के सदस्यों के प्रति कृतज्ञता की अपनी भावनाओं को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ।

जैसा कि आप सभी जानते हैं, आज का सम्मेलन जिस विषय पर विचार-विमर्श करने जा रहा है, वह "अहिंसा" है। क्या मेरे लिए यह कहना आवश्यक है कि यह प्रश्न वर्तमान विश्व के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है !

समय-समय पर ऐसी समस्याएँ होती हैं, जिनका विभिन्न काल में विशेष दृष्टिकोण से अपना एक विशेष महत्त्व होता है। अन्तरराष्ट्रीय विधान के कुछ प्रश्न, जिन पर एक समय काफी चर्चा की गयी आज घटनाचक्र के परिवर्तन से गौण और कम महत्त्व के हो गये हैं। दूसरी ऐसी समस्याएँ हैं, जिनका महत्त्व आज अत्यधिक बढ़ गया है। परन्तु संहारक एवं विस्फोटक हथियारों के विकास एवं निर्माण से, जिन्हें विज्ञान ने लोगों के हाथों में सौंपा है, जो भयानक समस्या उत्पन्न हुई है और जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी का विनाश ही दृष्टिगोचर हो रहा है, उससे बढ़कर शायद आज कोई दूसरी समस्या नहीं है। विनाश की इन सम्भावनाओं के कारण जो समस्या इस सम्मेलन के द्वारा उठायी गयी है वह एक ऐसी समस्या है, जो सद्विचार के लोगों के मानस को अनायास ही आकर्षित करेगी।

फिर भी, इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सरल नहीं है। जो इस समस्या के उत्तर-दायित्व को समझते हैं, वे अवश्य ही इस बात को भी समझते हैं कि इसके लिए वे राजनीतिक सत्ता-व्यवस्था की इस स्थाई समस्या से लोहा लेने के तथ्य को इन्कार नहीं कर सकते। क्या सामुदायिक संगठनों की शक्ति को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया जाय? यहाँ पर हमें राजनीतिक संगठन की इन सभी पुरानी समस्याओं का एक अन्तरराष्ट्रीय जीवित समुदाय के नये स्तर पर सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

यह हम लोगों के लिए लाभदायक सिद्ध होगा, यदि हम लोग यह भूल न जायँ कि जिस अन्तर-राष्ट्रीय समुदाय का चित्र हम लोगों के मस्तिष्क में है, वह विवेक एवं भावनाओं का आसान संयोग नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि वैधानिक व्यवस्था समुदाय की उस भावना को परिलक्षित करती है, जिसमें वह शक्ति एवं स्वार्थ की चेतन-सत्ता की अराजकता को जीतकर सह्य सामञ्जस्य एवं मधुरिमा को लाना चाहती है। दूसरी ओर प्रस्तुत उत्तेजना तथा जीवन एवं शक्ति का संतुलन जो सामाजिक जीवन की अचेतन गतिविधियों के कारण होता रहता है, उसका भी यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सामाजिक संगठनों में शक्ति का चिरस्थाई महत्त्व मनुष्य के स्वभाव के दो गुणों पर आधारित है। उसमें एक शक्ति एवं विवेक का समन्वय है तथा दूसरा सम्भवतः किसी दूसरे से अपने को अधिक महत्त्वपूर्ण समझने की भावना तथा किसी भी सामुदायिक समस्या को अपने निजी स्वार्थ पर आधारित दृष्टिकोण से देखने, समझने या हल करने का रुख है।

आज तक कोई भी समुदाय या सम्प्रदाय चेतना एवं विवेक का सरल, स्वस्थ संगठन न हुआ है न हो सकता है। वस्तुतः सभी समुदाय कम या अधिक संतुलित या मानवीय शक्तियों के विचित्र संगठन रहे हैं, वे शक्ति के द्वारा शासित एवं उसी पर अवलम्बित रहते हैं।

शक्ति से केवल त्रासदायी सरकार या राज्य की संगठनात्मक शक्ति का ही मतलब नहीं है। वह तो सामाजिक शक्ति के दो पहलुओं में से एक पहलू है और दूसरा पहलू किसी भी सामाजिक परिस्थिति में शक्तियों एवं मानव-चेतनाओं का संतुलन है। संक्षेप में सामुदायिक जीवन के निम्न दो तत्त्व हैं :

(१) केन्द्रीय संघटनात्मक सिद्धान्त एवं शक्ति

(२) शक्ति का संतुलन! ये दोनों सामुदायिक संगठन के आवश्यक चिरस्थाई पहलू इस हद तक हैं कि कोई भी नैतिक एवं सामाजिक प्रगति किसी भी मानवीय समुदाय को उसकी स्वतन्त्रता से मुक्त करने में सम्भवनीय है।

शक्ति और संतुलन

●

ये दोनों तत्त्व व्यवस्था के तरीकों की भिन्नता एवं उसकी अच्छाई के अंशों पर निर्भर करते हैं।

सामुदायिक जीवन में सामाजिक शक्तियों के संतुलन एवं व्यवस्था के तरीकों में भिन्नताएँ हैं। इसी प्रकार केन्द्रीय संगठनात्मक सिद्धान्त एवं शक्ति में भी अनिश्चित विकास एवं परिवर्तन की संभावना रहती है। इस माप के किसी एक बिन्दु पर शक्ति के संतुलन का सिद्धान्त अराजकता का रूप ले

सकता है तथा शक्ति की व्यवस्था का सिद्धान्त निरंकुशता में परिणत हो सकता है। सचमुच में ही शक्ति के संतुलन का सिद्धान्त सदा ही अराजकता की सम्भावनाओं से गर्भित है, तथा शक्ति एवं व्यवस्था के सिद्धांत में, बहुधा दबाव से सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न होता है और अन्ततोगत्वा वह निरंकुशता का रूप ग्रहण कर लेती है।

निरंकुशता एवं अराजकता इन दो बुराइयों के बीच से ही सामाजिक न्याय की नाव को सदा खेना पड़ता है। कोई भी सामाजिक शक्तियों का विकास या राजनैतिक माधुर्य इन कठिनाइयों को दूर नहीं कर सकता।

सामाजिक संगठनों के संबंध में हम लोगों को मानवीय प्रकृति की उपरोक्त दो विशेषताओं को अपने ध्यान में रखने की आवश्यकता है, जो शक्ति को चिरस्थाई महत्व प्रदान करता है।

दूसरी विशेषता मनुष्य में इतनी प्रबल सिद्ध हुई है कि केवल नैतिक एवं भावनात्मक बन्धन शायद ही उन्हें नियन्त्रित करने के लिए पर्याप्त हों। दूसरी और पहली विशेषता व्यक्ति एवं समुदाय की इच्छा-शक्ति की सम्पूर्ण शक्तियो एवं आधारों से रूढ़िवादी उद्देश्यों को संरक्षण प्रदान करती है।

इससे यह आवश्यक हो जाता है कि इन समाजविरोधी गतिविधियों पर सारी प्राप्त शक्तियों से सामाजिक नियन्त्रण लगाया जाय। वास्तव में दोनों ओर की प्राप्त शक्तियों के संकलन एवं संग्रह ही इस मामले में निर्णायक पहलू हैं। इस प्रकार शक्ति की धमकी सभी सामाजिक सम्बन्धों में एक चेतन अस्त्र सिद्ध हो रहा है, यद्यपि हो सकता है कि एक संतुलित एवं पूर्ण व्यवस्थित समुदाय में उसके प्रयोग की आवश्यकता बहुधा नहीं ही हो।

इसलिए शक्ति या पौरुष की धमकी से इन्कार करना एक ऐसे सामाजिक संगठन में सम्भव नहीं प्रतीत होता है, जहाँ मनुष्य की वर्तमान मानसिक एवं वैचारिक स्थिति विद्यमान है।

मनुष्य की आध्यात्मिक एवं शारीरिक शक्तियाँ उनकी एकता, परस्पर सम्बन्ध तथा उस शुद्ध वैचारिकता से नग्न शारीरिक पौरुष में शक्ति के समूह एवं असीम विभेदों एवं प्रकारों के निर्माण में सक्षम है। परन्तु विवेक भी, यद्यपि साधारणतया वह पारदर्शी समझा जाता है, कभी रूढ़ियों के शस्त्र के रूप में उपयुक्त हो सकता है। विवेक के प्रति वास्तविक विश्वास ऐसा भरोसा है कि वस्तु का अन्तिम स्वभाव मधुरिमा में विराजता है, जो निरंकुशता मात्र के वातावरण को दूर करता है। यह वह विश्वास ही है कि वस्तुओं की जड़ में हम लोग केवल निरंकुशता का रहस्य नहीं पाते हैं। वास्तव में मनुष्य अपनी गरिमा से हीन हो जायगा, यदि वह निर्मित वस्तुओं की मधुरिमा एवं सामंजस्य का अनुभव नहीं करेगा।

वह चाहे जो भी हो, हमारे महात्माजी को शक्ति एवं सामुदायिक जीवन के इसी सम्बन्ध के निर्माण मे एक पार्ट अदा करना था और उन्होंने शक्ति के प्रयोग का खुले शब्दों में परित्याग किया। महात्माजी का अहिंसा का सिद्धान्त एक पूर्ण विधि थी और यह पूर्ण इसीलिए थी कि उनके मस्तिष्क में यह कोई साधन या प्रकार नहीं थी, बल्कि वह आन्तरिक चेतना के प्रति आज्ञाकारिता थी।

महात्माजी ने वर्तमान सभ्यता के अन्धकारपूर्ण भविष्य को पहले ही अपनी दूरदर्शिता से देखा और यही कारण है कि पश्चिमी औद्योगिक पद्धति के भारत में प्रवेश की समस्या के साथ होड़ लेने में तथा पश्चिमी विचारों, जो उस पद्धति के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलते हैं, से होड़

लेने में वे इस निष्कर्ष को मानते थे कि भारत न केवल वर्तमान पश्चिमी पद्धति का विरोध करे, बल्कि उन सम्पूर्ण पद्धतियों एवं विचारों का विरोध करे, जिनके लिए वे काम करते हैं और जो उनका लक्ष्य है, यदि उससे मुक्ति प्राप्त करना है। यही कारण है किउन्होंने इस बात पर जोर दिया कि संसार का दृष्टिकोण और केन्द्र तथा उसकी शक्तियाँ भौतिकता से आध्यात्मिक कार्यों की सतह पर केन्द्रित हो।

नैतिक प्रश्न

ऐसा हो सकता है कि प्रत्येक युग में, प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे नैतिक प्रश्न सदा ही उठते हैं, जो समाज के भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। परन्तु ऐसा होते हुए भी इसमें सन्देह नहीं है कि वर्तमान समय में यह केवल प्रौद्योगिक प्रश्न ही नहीं है, जो आज के युग में हम लोगों के समक्ष है बल्कि वह प्रश्न नैतिकता का है। जहाँ तक यान्त्रिक उत्कर्ष का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि संसार ने अपना दृष्टिकोण पहले ही बदल लिया है, प्रशंसा में पहले से ही आलोचना का पुट विद्यमान है, संतोष के स्थान पर पहले ही से शंका छा चुकी है और वह शंका खतरे की घंटी सिद्ध हो रही है। एक घबराहट एवं असन्तोष का भाव सर्वत्र विद्यमान है और ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई बहुत दूर, आगे निकल जाने के बाद अनुभव कर रहा हो कि वह गलत मार्ग पर चल पड़ा है। संसार आज केवल इतना ही अनुभव कर पा रहा है। कि अब पीछे जाना असम्भव है, यद्यपि हम लोग यह भी नहीं जानते है कि हम लोगों की वर्तमान प्रगति हमें कहाँ ले जा रही है।

एक महान व्यक्ति अपने जीवन का लेखा-जोखा रखता है या अपने अन्तरप्रकाश के आधार पर किसी सिद्धान्त या स्वयं-सिद्धि का प्रतिपादन करता है। दूसरों के लिए, जिनमें स्वाभाविक गुण विद्यमान नहीं होता या उनकी मनोवैज्ञानिक बनावट एवं भिन्नता के कारण यह समझना कठिन होता है कि उनके कहने या सिद्धान्त का क्या मतलब है, वे उनकी बातों का अर्थ अपनी-अपनी बुद्धि, रूढ़ियों एवं ज्ञान के आधार से करते हैं। वे अपने उपदेशकों से यह नहीं सीख पाते कि उनके समान बनें, बल्कि उन्हें ही वे अपने ढंग से समझने का प्रयास करते हैं।

महात्माजी के अहिंसा के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कभी यह कहा गया है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन की दुखद एवं नृशंस वास्तविकता की चेतन प्रवृत्तियाँ कभी विद्रोह कर सकती हैं और वह सभी शक्तियों को अस्वीकार करने का निश्चय कर सकती हैं। परन्तु इस प्रकार की पूर्णरूपेण अस्वीकृति सामाजिक शक्तियों के सन्तुलन को समाप्त कर देगी और इस प्रकार यह सफल दृढ़वादिता की सम्भावनाओं को बढ़ायेगी।

बुद्धिवादी जीव होने के कारण हमें चाहिए कि हम अपने विवेक का उपयोग करें। यदि हम अपने हृदय की आवाज को सुनें तो शायद गलतियाँ कम हों। जब तक हम लोगों का अकाल, प्रौढ़-प्रौद्योगिक ज्ञान-कहानी को शीघ्र ही समाप्त नहीं कर देता, जब कि आज के इस युग ने, जिसमें हम लोग रह रहे हैं और जिसने भावी इतिहासज्ञों को इतना अधिक दूर छोड़ दिया है कि शायद ही वे काल की इस हद को देख सकें, तब तक संसार महात्माजी को एक अत्यन्त ही कुशाग्र के रूप में कि केवल महात्माजी ने ही स्पष्ट रूप से साफ-साफ इस तथ्य को देखा, पाया कि हम लोगों

को शान्ति से हिंसा युद्ध एवं विवाद को मिटाना है, और उन्हें कष्ट सहकर भी अभी दूर करना है, क्योंकि यदि हम विमुख होते हैं या असफल रहते हैं, तो वह मनुष्य पर हावी एवं विजयी हो जायगा, जो इस बार निश्चित एवं अन्तिम होगा यह स्वीकार नहीं कर सकते। युद्ध के नवीन पहलुओं की संसार को पहले से ही जानकारी होनी चाहिए। संसार को इस तथ्य का अनुभव करने में असफल नहीं रहना चाहिए कि यदि पुनः युद्ध हुआ तो अणुबम या अन्य विध्वंसात्मक शस्त्रास्त्रों में केवल शत्रुओं को ही नहीं बल्कि समस्त मानव जाति को समाप्त करने की क्षमता है। हम लोगों को यह भी अनुभव करना चाहिए कि किस प्रकार वर्गवाद का दोष यान्त्रिक प्रगति से बढ़ता गया है। तो क्यों नहीं सभ्यता एवं मानवता को इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि यदि आवश्यकता हुई, यदि असफलता पर असफलता भी हाथ आये और मार्ग कष्टकर एवं अशोभनीय भी हो, तो भी सभी शक्तियों के उपयोग का बहिष्कार किया जाय, जैसा कि महात्माजी ने कहा है। आज की इस भयानक दुखद स्थिति में, जिसमें हम अपना हाथ जीवन एवं मृत्यु के बीच एक को आलिंगन करने के लिए उठाते हैं और जिसमें हम सभी पथ से बहुत दूर जा रहे हैं, शायद हम लोगों को यह जानने की जरूरत है कि हम किस मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं!

विश्व-समुदाय

●

परन्तु सभी प्रकार के सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित अहिंसा के इस प्रश्न को छोड़कर हम लोग प्रश्न के केवल उसी पहलू पर विचार करें, जहाँ तक इसका सम्बन्ध वर्तमान विश्व-समुदाय से है।

विश्व-इतिहास की इस भयंकर एवं निर्णायक घड़ी में, जिसमें हम लोग दो भयंकर महायुद्धों के बाद भी जीवित हैं, ऐसा अनुभव करते हैं कि भय से संत्रस्त होकर साथ ही उज्ज्वल भविष्य की आशा से प्रभावित होकर हम लोग मानव-समुदाय के दायरे के विस्तार की समस्या के समक्ष आकर खड़े हो गये हैं। विश्व की पारस्परिक आर्थिक निर्भरता ने वास्तव में हम लोगों पर एक उत्तर-दायित्व डाल दिया है और वह मानव-समुदाय के विस्तार की सम्भावनाएँ प्रदान करता है, जिससे कि व्यवस्था एवं न्याय के सिद्धान्तों का शासन अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय समुदायों पर हो सके। वास्तव में हम लोग अन्धे हैं, यदि हम लोग यह अनुभव नहीं कर पाते कि राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति के हथकन्डे के रूप में राष्ट्रीय स्थिति समाप्ति के क्रम में है। वैचारिक एवं विवेकशील प्राणी होने के नाते शान्तिपूर्ण प्रबन्ध के लिए हम लोगों को तैयार रहना चाहिए था। परन्तु इसके बदले प्राचीन व्यवस्था एवं ढंगों को ही कायम रखने के असफल प्रयत्नों में हम लोगों ने मानव-विवेक की सामान्य वक्रता को अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया है।

युद्ध का प्रभाव

●

वैधानिकता पर आधारित प्रभावी अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था की समस्याओं ने आधारभूत एवं विस्तृत विगत दो महायुद्धों की अर्वाच्य से अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में बहुत अधिक महत्त्व एवं नया

जोर प्राप्त कर लिया है। दो विश्वव्यापी युद्धों ने संसार में एक ऐसी प्रवृत्ति को उत्पन्न किया है, जो युद्धों के प्रारंभ के पूर्व से ही संसार में काफी दिनों से काम कर रही थी। अब वह स्थिति समाप्त हो गयी है। राजकीय प्रभुसत्ता की इन बातों से प्रभावित संसार एवं सृष्टि का निवास उन्हीं में है। आज के नये संसार में उनकी स्वतंत्रता एक न एक प्रकार से सीमित है—यहाँ तक कि बड़ी-बड़ी शक्तियाँ भी आर्थिक क्षेत्र मे विश्वव्यापी स्तर पर आज जो उद्योग का कार्य संचालित कर रहीं हैं, महत्त्वहीन या पंगु हैं। इस नवीन विश्व में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं आदर्श राष्ट्रों के सिवा सभी स्वयं अपने बल पर आर्थिक एवं सामयिक दृष्टि से स्थिर रहने में कम-से-कम समर्थ एव सक्षम अनुभव करते हैं और थोड़ी-सी भी विपरीत परिस्थिति एवं खरोंच से हाल में स्थापित अन्तरराष्ट्रीय संघ में निहित एवं प्रकट अपने राजकीय कुछ कार्यकलापों एवं अधिकारों का बिसर्जन कर सहायता के लिए उत्तेजित हो पड़ते हैं। इस नये युग में जातियों एवं सम्प्रदायों की सामाजिक चेतना में जो प्रधान तत्त्व है, वह किसी बड़े संसार के अंग होने की भावना है—जहाँ उस युग में जो अभी समाप्त हुआ है। चेतना का प्रधान तत्त्व यह था कि संसार हममें ही स्थित है।

इस प्रकार बढ़ती हुई परस्पर की निर्भरता विश्व की विभिन्न इकाइयों के बीच तथा वर्तमान शस्त्रास्त्रों की भयंकरता के कारण शायद यह तत्त्व लोगों के विचार से ओझल नहीं हो सकेगा कि निकट भविष्य में कभी-न-कभी राजनैतिक स्तर पर संसार को एक होना है। परन्तु वास्तव में आज का महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विचारणीय विषय यह नहीं है कि संसार शीघ्र ही राजनैतिक स्तर पर एक होने जा रहा है, बल्कि वह यह है कि दो सम्भव तरीको मे से यह एकता तेजी से किस प्रकार आ सकती है और इस संगठित विश्व-समाज का रूप क्या होगा ?

इस प्रकार की एकता के दो सम्भव तरीके बताये जाते हैं। एक तरीका है, एक के बाद दूसरे युद्ध विभिन्न राष्ट्रों मे तब तक लगातार चलते रहें, जब तक कि अन्त में एक ही सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अपने सभी अन्तिम प्रतिद्वन्दी राष्ट्रों को परास्त करके अपने इस विजय के द्वारा संसार पर शान्ति को जबर्दस्ती जोर से लाद सके। दूसरा उपाय वर्तमान संकटों में परस्पर-सहयोग का है। अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में आचार-निर्धारण एवं निर्णय में शारीरिक शक्ति के अन्ध प्रयोग के स्थान पर वैधानिक शासन की मानव व्यवस्था, जो वर्तमान प्रमुख राजनैतिक उद्योग है, आशा प्रदान करता है।

एक तीसरी सम्भावना भी बतायी जाती है, जो हालाँकि विश्व की एकता का तरीका नहीं है, बल्कि सतत संघर्ष की रूपरेखा है। वह सुझाव यह है कि शक्तियों या राष्ट्रों की संख्या घट कर तीन हो जायगी, जो अपने क्षेत्र के लोगों को स्थाई गुलामी में नियन्त्रित एवं युद्ध के सतत भय से आक्रान्त करके अपने अधीन रखने में सफल होंगे।

इस तथ्य से मुकरना कठिन है कि दो विश्वयुद्धों एवं उसके परिणामों ने मानव-मात्र में युद्धों के विरुद्ध एक ऐसी भावना का विकास किया, जैसी पहले कभी नहीं थी। नये आतंकों एवं स्वप्नातीत भय, जो आधुनिक युद्धों के संहारक यान्त्रिकताओं से उत्पन्न हुए हैं, ने एक ऐसी स्थिति को जन्म दिया है, जिसमें वैसा व्यक्ति भी जो अधिक दूरदर्शी एवं विचारशील नहीं हो, बिना आश्चर्य के युद्ध के आगमन की कल्पना कर सकता है। अब ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि महान राष्ट्रों में युद्ध होने का अर्थ मानव जाति का बिनाश है। हम लोग एक ऐसे युग के छोर पर आ गये हैं, जिसमें

शस्त्रास्त्रों की होड़ तथा संहार के पैशाचिक क्रूर यन्त्रों के आविष्कार ने संसार में मानव-जीवन के भविष्य को असम्भव कर दिया है। आज की परिवर्तित स्थिति में जो माँग की जा रही है, वह राजकीय प्रभुसत्ता के विचारों के प्रति लोगों की नवीन जागृति है, क्योंकि राजकीय प्रभुसत्ता की भावनाएँ मानव-जीवन की परिवर्तित परिस्थिति में दुःख एवं असंगत सिद्ध हो रही हैं।

हम लोगों ने देखा है कि यह समाज, जिसने हमें इस प्रकार का एक इतिहास प्रदान किया है, जो गत ४० वर्षों से हम लोगों के जीवन पर छाया है, एक प्राणघातक रोग से रुग्ण समाज है। ऐसी परिस्थितियों एवं कारणों के भंवर में, जो लोगों को उस सीमा तक ले जाती है, जिसे कोई नहीं चाहता, फँसा हुआ यह समाज आज संकोच एवं तड़पन की स्थिति में है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग एक ऐसे युग में निवास कर रहे हैं, जिसमें सभी विवेकपूर्ण प्रयत्न विवेकहीन तथ्यों के पाषाण से निर्मित दीवार से टकरा कर रह जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग एक पागलखाने में रह रहे हों। जहाँ आशाहीन एवं आवश्यक दुखों के बीच भ्रान्तियों का शासन हो, जहाँ हमारे शुद्ध निजी प्रयोजनों की प्रारम्भिकतम आवश्यकताओं को हमारी वक्र दृष्टि एवं भय, अन्धकार-पूर्ण करती है।

हमारे समय का यह पक्षाघातिक उन्माद अधिकतर हमारे वर्तमान सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थानों एवं यान्त्रिक सभ्यता द्वारा प्रदत्त उत्पादक क्षमताओं के बीच परस्पर के गहन विरोध तथा सभ्यता एवं यान्त्रिकता के विकास के बीच परस्पर सम्बन्ध एवं सहयोग की कमी का परिणाम है।

इस तथ्य के बढ़ते हुए अनुभव के कारण यदि हम लोग इस अराजकता, जिसके बीच सत्ता-सम्पन्न साम्राज्य कायम हैं, पर विजय प्राप्त नहीं करते हैं तो हम लोगों की सारी सभ्यता ही समाप्त हो जायगी, समस्या ने नवीन महत्त्व प्राप्त कर लिया है। राज्य की राष्ट्रीय प्रभुसत्ता के सिद्धान्त के अन्दर की अराजक स्थिति, विश्व में नये आर्थिक इकाइयों के विस्तार की भी नई आवश्यकता के उद्घोष एवं प्रकटीकरण के सिवा कुछ नहीं है। हम लोगों के समय की इस नई एवं परिवर्तित परिस्थिति में यह संसार स्वयं ही एक आवश्यक परिवर्तन की सबसे छोटी इकाई हो गया है।

विश्व-इतिहास के चौराहे पर खड़े होकर शायद हम लोगों का यह अनुभव करना कर्तव्य हो जाता है कि हम लोगों की इस वर्तमान पीढ़ी के समक्ष नयी एवं अनुपेक्षणीय समस्या एक सक्षम एवं प्रभावी अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण की है, जो अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के वर्तमान तनाव एवं अराजकता को समाप्त कर सके।

यदि हम इसे निकट भविष्य में शान्तिपूर्ण व्यवस्था के द्वारा प्राप्त करने में असफल रहते हैं, तो सम्भव है कि उखाड़ फेंकने के दूसरे तरीके का उपयोग किया जाय, जिसमें युद्ध या युद्धों का प्रारम्भ हो, जिसका परिणाम हो कि अन्य सभी का संहार कर कोई एक राष्ट्र या शक्ति विजयी हो।

पर क्या इसकी आशा करना विवेकपूर्ण है ? क्या किसी राष्ट्र के लिए भविष्य के किसी युद्ध पर भरोसा करना बुद्धिमत्तापूर्ण है ? उचित क्षमता के द्वारा नये दृष्टिकोण से नयी युक्तियों में परिवर्तन के लिए आवश्यक समय की लम्बी अवधियों की छूट देने पर हम लोग उस स्थिति का दर्शन कर सकते हैं, जिससे संसार को अगले दस वर्षों में सामना करना पड़े, यदि इसी बीच हम लोग अपने में परिवर्तन नहीं लाते हैं।

शस्त्रीकरण

●

दस वर्षों के क्रम में संसार, विश्व के विभिन्न अंचलों में शक्ति-सन्तुलन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का अनुभव कर सकता है। दोनों सम्भावनाओं के लिए पूरी छूट देते हुए इस सम्बन्ध में इन दो में से किसी भी प्रकार का जबर्दस्त परिवर्तन शायद ही प्रमुख रणकौशल के तथ्यों के किसी आधारभूत सामयिक महत्त्व में कोई परिवर्तन ला सके। हम लोगों के पास अन्तरराष्ट्रीय दूरमारक प्रक्षेपणास्त्रों, अन्तरग्रह दूरमारक यन्त्रों तथा तत्प्रकार अन्य अनेक मृत्युकारक शस्त्रास्त्रों के भण्डार का निर्माण होने जा रहा है। निकट भविष्य में समुद्रों के गर्भ में मानवयुक्त स्थाई मिसाइल-स्टेशन का निर्माण होने जा रहा है। भविष्य में कीटाणु सक्रिय (बैक्ट्रियो लौजिकल), रेडियो सक्रिय (रेडियो लौजिकल) एवं रासायनिक (कैमिकल) युद्धों की सम्भावनाएँ हैं। संसार में आज उन तीक्ष्ण रश्मियों पर शोध एवं अनुसंधान चल रहा है, जो पृथ्वी के रोम-रोम में प्रवेश कर जाती हैं और आकाश में लगातार अणुओं एवं परमाणुओं के फटने से उत्पन्न होती है (कौशमिक किरण) जिससे मनुष्य को सूर्य की शक्ति मृत्यु-किरण 'शस्त्र' के रूप में प्रयुक्त करने की क्षमताएँ शीघ्र प्राप्त हो सकती हैं। हम लोगों के सामने आज मानवयुक्त या मानवहीन अन्तरिक्ष स्टेशन या प्लैटफार्म के निर्माण तथा उसके माध्यम से अन्तर-ग्रहीय परिपणास्त्रों के संहारक प्रयोगों की सम्भावनाएँ हैं। बहुत शीघ्र ही इस प्रकार का स्टेशन अन्तरिक्ष में पृथ्वी के चारों ओर उसके ग्रह-पथ में या चन्द्रमा में निर्मित या स्थापित होने होने जा रहा है। इनमें से किसी भी दशा में वे दूर तक फेंकनेवाले रौकेटों से लैस किये जा सकते हैं और बाद में जिन्हें पृथ्वी के किसी विशेष लक्ष्य पर छोड़ा जा सकता है। शस्त्रास्त्रों से युक्त राकेटों को भी उपग्रहों की तरह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटने के लिए उन्हें पूर्वनियोजित एवं निश्चित व्यवस्थानुकूल संकेतों पर प्रज्वलित किया जा सकता है।

युद्ध

●

उपर्युक्त संभावनाओं से युक्त तृतीय विश्वयुद्ध के होने पर यह असम्भव है कि उसके बाद वर्तमान राजकीय सामाजिक व्यवस्था, ढाँचा या समाज जीवित भी रहेगा। इस प्रकार का युद्ध विगत दो महायुद्धों से भी केवल बड़े पैमाने पर ही नहीं होगा, बल्कि दोनों ही पक्षों का पूर्ण विनाश हो जायगा। वस्तुतः युद्ध कोई ऐतिहासिक आवश्यकता नहीं है।

ऐसा कहना एक मूर्खता की बात हो गयी है, चूँकि आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विरोध तथा शत्रुता के परिणामस्वरूप भूतकाल में अक्सर युद्ध हुए हैं, इसलिए उनके कारण भविष्य में युद्ध होगा ही, यह मूर्खता की बात इस कारण से हो गयी है कि जहाँ भूतकाल के युद्धों में उसमें निहित समस्याओं को सुलझाने की सम्भावनाएँ रहती थीं, वहाँ भविष्य के युद्धों में वैसी कोई सम्भावना नहीं रह सकेगी। भविष्य के युद्धों में कोई विजयी नहीं होगा और उससे किसी भी समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। इसका अर्थ है मृत्यु, जो सभी के लिए विनाशकारी ही होगी।

भविष्य में युद्ध एक राजनैतिक कार्य या वास्तव में राजनैतिक हथकंडा नहीं होना चाहिए। किसी राष्ट्र के साथ यह किसी दूसरे माध्यम से नीति की क्रमिकता नहीं हो सकती। वह स्थिति विगत युद्धों के साथ ही सकती थी जिससे समाजों की क्षति हो सकती थी, परन्तु उससे अन्तस्थल का खतरा नहीं हो सकती थी, जब तक उसमें संलग्न देश न केवल युद्धों के श्रीगणेश, बल्कि उसके अन्त तक की अन्य गतिविधियों को भी संचालित एवं नियन्त्रित करने की स्थिति में रहते थे, भविष्य के आणविक युद्ध का अन्त तक किसी एक स्थिति पर ही चलना सम्भव नहीं है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप जो विध्वंस होगा, उससे उसमें संलग्न सभी देशों, राष्ट्रों एवं समाजों का नाश हो जायेगा, जिससे कोई नीति भी अन्त तक अक्षुण्ण या जीवित नहीं रह सकेगी और न कोई विदेश-नीति ही बच जायेगी। हमारा संसार खतरे से आतंकित है जिसकी क्षमता अभी भी ऐसी है जिससे प्रतीत होता है कि जिनके हाथों में इस सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार है, इससे बच निकलें। अणुशक्ति के उद्भव से दुर्भाग्यवश हमारी विचार-पद्धतियों के सिवा सभी चीजों में परिवर्तन आ गया है, और इसके कारण हम लोग तेजी से एक ऐसे भयानक विनाश की ओर बढ़े चले जा रहे हैं, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। यदि मानवता को जीवित रखना है, तो यह आवश्यक है कि विचारों के तरीकों में परिवर्तन लाया जाय।

इसलिए हम लोगों के समक्ष जो समस्या है, वह केवल अणुबमों या युद्ध के अन्य शस्त्रास्त्रों का नियन्त्रण ही नहीं है, बल्कि युद्धों के कारणों को मिटाना है। तात्पर्य केवल इसके बढ़ते हुए क्षेत्र के काँटेदार और नुकीली किनारों को ही चिकना करने का नहीं है, बल्कि उसके क्षेत्र और उसकी सीमा को समाप्त करने का है। यह केवल सीमाओं और आर्थिक घेरों को संतुलित करने की समस्या नहीं है, बल्कि उसे चौरस और सम करने की है। संक्षेप में यह समाज के सर्वांगीण दृष्टिकोण का प्रश्न है, सारे संसार और उसके तरीकों के पूर्णरूपेण परिवर्तन का है, जिसमें हम लोग रह रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि विश्वयुद्ध के उन्माद से जो कुछ अच्छा उत्पादन हम लोग कर पाए, वह संयुक्त राष्ट्र-संघ है।

वास्तव में इस भू पर प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ तक क्या हुआ और द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद आज तक क्या होता रहा है, जो हम सभी को तृतीय विश्वयुद्ध की ओर घसीट रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी वैचारिक समन्वय की सम्भावना बहुत कम है। वास्तव में हम लोग आज एक ऐसे युग में रह रहे हैं, जब कुविचारों का आधिपत्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग उन कारणों और परिस्थितियों के चक्कर में पड गये हैं, जो हम लोगों को कुछ ऐसी चीज की ओर तेजी से घसीट कर ले जा रहा है जिसे कोई भी पसन्द नहीं करता है। जो कुछ भी आज हो रहा है या किया जा रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह सभी हम लोगों के विरुद्ध षड्यन्त्र हो रहा है, जो हम लोगों की सामाजिक शक्तियों के भयंकर असंतुलन को इंगित करता है।

अभी भी समय है!

•

फिर भी इस सम्मेलन का आयोजन स्वयं यह प्रकट करता है कि अभी भी कुछ बचा है, जो वास्तव में सबसे अधिक गहन, क्रियात्मक एवं संसार की सबसे विवेकपूर्ण शक्ति है, जिसकी आन्तरिक

अभिलाषा एवं प्रेरणा लोगों के जीवन की स्थितियों को समुन्नत करना है। संसार में हृदय-विदारक घटनाओं के होते हुए भी हम लोग इस तथ्य से अपनी आँखों को नहीं बन्द कर सकते कि अभी भी संसार में विवेक की शक्ति एवं क्षमता काफी है, जो इस सम्मेलन की भावनाओं एवं उद्देश्यों के प्रति विश्वासों को शक्ति-प्रदान कर सके। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं ने जनसाधारण की भावनाओं को इस विचार एवं अभिलाषा के लिए काफी उत्प्रेरित किया है, जिससे सर्वत्र साधारण लोगों में शान्तिपूर्ण ढंग से रहने और प्रगति करने की इच्छा है। आज की इस पीढ़ी में एक वास्तविक भावना यह है कि वह भय, आतंक और संहार से ऊब चुकी है। फिर भी लोगों में एक उत्कट अभिलाषा है जो संसार की सबसे शक्तिशाली क्रियात्मक शक्ति है और जब तक यह इच्छा-शक्ति साधारण लोगों में कुछ भी विद्यमान है, संसार को निराश होने की कतई आवश्यकता नहीं है।

जो कुछ भी खामियाँ और असफलताएँ हैं, उनके अतिरिक्त भी वर्तमान राजनैतिक अग्रणी संगठन जो संवैधानिक सरकार के मानवीय प्रयत्नों को अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रयोग कर रहे हैं, इस आशा को उचित प्रकार से जन्म देती हैं ताकि इस ध्रुव विनाश के बीच से सहयोग का कोई मार्ग निकाला जा सके।

हम लोगों को केवल यह स्मरण रखना चाहिए कि इस नवीन अन्तरराष्ट्रीय समाज का निर्माण न तो उन निराशावादियों के द्वारा हो सकेगा, जो राज्यों के सम्बन्धों में शक्तियों के संतुलन के सिद्धान्त से परे जाने को सम्भव नहीं मानते और न वह उन्हीं अतिवादियों और सनकी लोगों के द्वारा सम्भव है, जो संसार का संगठन एक प्रकार के शासकीय अधिकार के बल पर करना चाहते हैं, जहाँ अन्यायों से आँखें मूँद ली जाती हैं और जो निरंकुश एवं अनुत्तरदायी शक्ति के संचालन के परिणाम-स्वरूप उद्भूत होता है और न तो वह उन आदर्शवादियों के द्वारा ही सम्भव है, जो विश्व समाज के संगठन का स्वप्न केवल विवेक और हृदय की साधारण भावनाओं के आधार पर देखते हैं। फिर भी इनमें से किसी का भी बहिष्कार केवल इसलिए नहीं किया जा सकता कि उनमें नास्तिकता या कायरता है। साथ ही साथ हम लोगों को इस भ्रान्ति-मोह का भी परित्याग करना चाहिए कि ऐतिहासिक विकास का जो नया स्तर प्रकाश में आ रहा है, वह इन सभी दुरूह समस्याओं से इतिहास को मुक्त कर सकेगा। मानव-इतिहास की चमत्कृत मृगमरीचिकाओं की सम्भावनाओं को भी हमें नहीं भूलना चाहिए।

वैचारिक युद्ध

●

आज सम्पूर्ण संसार में एक युद्ध जारी है, जो विचारों और वैचारिक सिद्धान्तों का युद्ध है, जिसमें जातियाँ और राष्ट्रीयताएँ अभी भी सामान्य पार्ट नहीं अदा करतीं। इस युद्ध को तभी जीता जा सकता है, अगर हमारे पास क्रियात्मक विचार हैं, केवल स्थूल विचार ही नहीं, बल्कि वैसे विचार जो वास्तविक अन्तरपुनर्निर्माण में सहायक हों तो हमें देखना होगा कि किस प्रकार परस्पर विरोधी-राष्ट्रीय या सांस्कृतिक विचारों का सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है? इस प्रयास में हम लोगों को मानसिक एवं सैद्धान्तिक, सभी विभेदों का परित्याग करना होगा, नहीं तो सम्भव यह है कि वे ही लोगों के ध्यान को मुख्य समस्याओं से अपनी ओर केन्द्रित कर लें और किसी विशेष

परिस्थितिवश किसी विशेष काल में उत्पन्न स्थितियों को बहुत विशाल रूप प्रदान कर कुछ स्थूल स्थिति उत्पन्न कर दें। इस सम्बन्ध में हमें ध्यान रखना चाहिए कि जाति या राष्ट्र का देवत्वरोपण जो आज संसार में प्रचलित है, एक खतरनाक एवं विध्वंसक मूर्ति-पूजक भावना है। अत्यन्त अस्थायी चीजों में चिरस्थायी गुणों की खोज निम्न बुद्धि की परिचायक है। यह भी स्मरण रखने की बात है कि मानवीय योग्यताओं एवं प्राप्तियों के विभेद में जातीयता की व्याख्या जान-बूझ कर क्रूर कपट-जाल है, जिसमें शिक्षा एवं उन्नति की भिन्नताओं एवं उसके प्रभावों का कारण पहले से विद्यमान जातीय व्यवस्था में मिलता बताया जाता है और इसके पीछे सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यों के व्यावहारिक क्षेत्रों में पूर्व निश्चित प्रभाव उत्पन्न करने का उद्देश्य होता है।

ऐसा कहा जाता है कि लीग ऑफ नेसन्स की तरह संयुक्त राष्ट्र-संघ शायद इस बात का भी प्रमाण हो कि संसार संगठित आधार पर निश्चित रूप से चले या नहीं, या बिलकुल ही नहीं चले। इसे विशेषकर पुराने विचारों और आचारों, पुराने नेतृत्वों तथा पुराने ही पूर्वकथनों पर आधारित अपरिक्व साधन की संज्ञा दी जाती है। इसे अधिक-से-अधिक द्रुतगति पर संपर्क, हल्के अवरोध या इस पर एक झीने आवरण का ही महत्त्व प्रदान किया जाता है।

इन आलोचनात्मक संज्ञाओं में निहित सत्यों को अस्वीकार करना वास्तव में कठिन है, खासकर जब हम देखते हैं कि किस प्रकार अभी भी विभिन्न राष्ट्रों का व्यवहार एक-दूसरे के साथ हो रहा है। चारों ओर देखने के बाद संसार के इस प्रत्यक्ष बिलगाव को देख कर एक व्यक्ति के लिए फिर भी आशावादी बने रहना वास्तव में कठिन है।

संसार अपने स्वरूप में अभी भी बुरी तरह छिन्न-विच्छिन्न है और नई एकता के मार्ग मे पहले से भी अधिक दूर प्रतीत होता है। राष्ट्रों मे भले ही युद्धों के प्रति घृणा-भाव हो और अपने-अपने अलग राष्ट्रीय दायरे में शान्ति की इच्छा भी रखते हों, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनी-अपनी शर्तों के अनुसार शान्ति की कामना रखते हैं।

स्पष्ट कारण

●

आज संसार में हमारी मुसीबतों के कारणों में से एक स्पष्ट कारण तो यह है कि हम लोगों की अन्तर की भावना को अनायास एक ऐसे नये संसार के अनुरूप एक-ब-एक ढालने को कहा जा रहा है, जो क्षणों में यान्त्रिकता की महान प्रगति के कारण विकसित हुआ है।

परन्तु पूर्ण रूप से यह शायद चरित्र का साधारण दण्ड नहीं है, जो इन संघर्षों को बनाये रखता है। यदि एक संगठन के मेरे सम्बन्धो को एक मानव के चित्र के साथ अभेद रूप से लगाया जा सके, जैसा कि काफी बुद्धिमानी एवं त्याग की शक्ति के द्वारा तथा उसे सामान्य कल्याण के लिए बिना भेद के लगाने में होता है, तो हमें प्रायः निराशा ही होगी।

इसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि ऐसा प्रतीत होता है कि आशावादिता के कारण मानव-स्वभाव का बहुत छिछला एवं साधारण दृष्टिकोण हम लोग बना सके हैं। यदि सभी आक्रामक एवं ईर्ष्यापूर्ण प्रवृत्तियों को समीकरण से दूर कर दिया जाय, तो संगठित या एक विश्व की भावना,

जिसकी कल्पना हम लोगों ने की है, एक साधारण बात है। हम लोग प्रकाशमय मृगमरीचिकाओं के बारे में भूल जाते हैं और जिसे हम वहाँ देखते हैं, वह मात्र अपनी स्वार्थी इच्छाओं के प्रतिबिम्ब हैं, जिस सत्य की खोज काफी लम्बी अवधि से की जाती रही है।

परन्तु शायद ये केवल अपने मानसिक गठन के साधारण परिणाम हैं। ऐसा हो सकता है कि मानव-तत्त्व में ही कुछ ऐसी बात है, जो इन सभी को अवश्यंभावी बनाता है।

मानवीय व्यक्तित्व प्रज्ञा-शक्तियों एवं जीव की जड़ शक्तियों का एक ऐसा चेतन सम्मिश्रण है कि बौद्धिक सूझ-बूझ एवं ज्ञान परिमित-मानव मस्तिष्क की सीमा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह वासनाओं एवं तथाकथित स्वार्थों के दायरों एवं खेलों तक भी विस्तृत है, जिसे मानवीय चेतना कर्तृत्वता प्रदान करती है। इस प्रकार सत्य का ज्ञान स्वार्थों के सैद्धान्तिक रंग में दृढ़तापूर्वक रंगा हुआ है, जो हम लोगों के सत्य-दर्शन को निश्चित रूप से 'सत्य' के ज्ञान से 'हमारे सत्य' की सीमा पर नीचे खींच लाता है।

एक ऐसे समय में, जब संसार में सर्वत्र मानव-शक्ति की अत्यंतिक वृद्धि हुई है, सभी लोग उससे तनिक भी आश्चर्यचकित नहीं प्रतीत होते। मानव-मस्तिष्क की परिमितता की अज्ञानता में बहुत बड़ा खतरा है, जो आज सारे विश्व के सामने हैं और विश्व-समाज की विशृंखलता के रोग के रूप में काम कर रहा है।

अपने ज्ञान की परिमितता की अस्वीकृति और उस परिमितता की प्राप्ति का कोई भी झूठा दावा कम-से-कम कुछ अंशों में अज्ञानता के कारण हो सकता है। हालाँकि बहुधा उस दावे का अर्थ हम लोगों के सत्य के ज्ञान की स्वार्थपूर्ण रूपरेखा से मुक्त करने का चेतन या अर्ध-चेतन प्रयास होता है।

'सत्य' एवं 'भ्रान्ति' का एक साधारण भेद भयानक एवं दयनीय मायाजाल का सुविधा-जनक हथियार है जो कि हम लोगों के सत्यविरोधी विश्वासों की असत्यता को दबाने और समाप्त करने के लिए निश्चित रूप से दबाव के शस्त्र का प्रयोग कर रहा है। यह विभेदयुद्ध सत्य में भी शेष त्रुटियों की सम्भावनाओं का खयाल छोड़ देता है और स्पष्ट भूलों में भी संशयात्मक सत्य को भूल जाता है।

आज अपने को जीवित रखने के लिए कम-से-कम जो आवश्यकता है, वह यह कि वर्तमान मानसिक स्थिति में शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तन किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के नेतागण राष्ट्रीय नियमों में आत्म-स्वार्थ एवं आत्म-पराजय पुरातन क्रम के राष्ट्रीय, राजनैतिक तथा आर्थिक इकाई के पुनः निर्माण एवं जीर्णोद्धार के रूप में उठते प्रतीत होते हैं। नहीं, यह उनका राष्ट्रीय स्वार्थ भी नहीं है, यह केवल हृदय की इच्छाओं का बाह्य सुन्दर एवं स्थूल रूप है।

सत्य यह है कि अभी तक विश्व-समाज का निर्माण नहीं हो सका है, उसके लिए केवल रुकावट एवं झिझकपूर्ण प्रारम्भ ही हुआ है। दुखद एवं खतरनाक तथ्य तो अभी भी यह है कि अणुबम के अनेक प्रदर्शनों के बाद भी ऐसा प्रतीत होता है कि बड़े राष्ट्रों के राष्ट्रनायक इस बात का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं कि एक विश्व-सभ्यता के विकास के लिये उन पर कौनसी जिम्मेदारियाँ हैं। विश्व-समुदाय में परस्पर निकटता की शक्ति का संचय अवश्य होना चाहिए, जो सामुदायिक भावना के विकास का एक रहस्य एवं आधार है।

यही वह स्थिति है, जहाँ धर्मों के एक विश्वव्यापी संगठन की जरूरत है। अब यह आपके लिए है कि विवेक पर आधारित "विश्वास के युग" का पुनर्निर्माण करें या यह देखें कि "विवेक-युग" का निर्माण उचित विश्वासों के आधार पर होता है।

दो शक्तियाँ

●

जब हम सोचते हैं कि मनुष्य मात्र के लिए धर्म क्या है और विज्ञान क्या है, तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भविष्य की रूपरेखा और भावी इतिहास वर्तमान पीढ़ी के निर्णयों पर अवलम्बित है पर वह इनका कैसा सम्बन्ध स्थिर करता है? हम लोगों के पास दो शक्तिशाली शक्तियाँ हैं, जो मनुष्य को प्रभावित करती हैं और आज वे एक-दूसरे के विरोध में संलग्न प्रतीत हो रही हैं। वे हैं :

(१) धार्मिक संस्थाओं की शक्तियाँ, और

(२) हमारे विचारों की शक्तियाँ, जो विवेकपूर्ण निर्णयों एवं अनुभवों को स्थिर करती हैं।

विज्ञान और धर्म में सदा एक संघर्ष चलता रहा है और दोनों सदा ही सतत विकास के पथ पर प्रगतिशील रहे हैं।

हम लोग भी तत्क्षण ऐसा समझ लेते हैं कि इसमें सच या झूठ का कुछ रहस्य अवश्य ही है। उनमें कोई मध्यममार्ग नहीं है। हालाँकि हम लोगों को यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि किसी कल्पना में कोई महत्त्वपूर्ण सत्य हो सकता है, फिर भी उसकी सीमा एवं एक विशेषण निश्चित रूप से होगा, जिसका अभी तक पता नहीं है। यह हमारे ज्ञान का एक सामान्य सुगम तथ्य है कि हम लोग सदा महत्त्वपूर्ण सत्यों से परिचित रहे हैं। फिर भी इन सत्यों का जो एकमात्र उपयोग हम लोग कर पाये हैं,उससे एक ऐसी सामान्य धारणा बन गयी है कि जिसमें परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है।

यह एक बुद्धिवादी युग है और कोई भी ऐसा सक्रिय स्वार्थ नहीं हो सकता है, जो सत्यों के मृदु सम्बन्धों की आशाओं को दूर कर दे। विभिन्नता को स्वीकार करना सत्य-निष्ठा एवं नैतिक स्वच्छता को नष्ट करना है। यह बुद्धि के स्व सम्मान की बात है कि विचारों के प्रत्येक उलझन को उसके सुझाव तक ले जाया जाय। यदि आप इस विचार को रोकते हैं, तो न कोई धर्म होगा और न कोई विज्ञान होगा, जिसमें जाग्रत एवं चेतन-बुद्धि का मनोयोग प्राप्त हो। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह होना चाहिए कि समस्या को हम किस रूप में सुलझाने जा रहे हैं।

परिवर्तन आवश्यक है

●

सिद्धांतों के विरोधों को विपत्ति नहीं मानना चाहिए, वास्तव में इस मौके का लाभ उठाने की जरूरत है।

साधारण सामान्य तर्क में विरोध पराजय का द्योतक है, परन्तु ज्ञान के वास्तविक विकास में विजय की ओर अग्रसर होने की यह पहली सीढ़ी और पहला कदम है। विभिन्न विचारों में परम सहिष्णुता के लिए यह एक महान विचार एवं विवेक है। यह एक जरूरी नैतिक स्रोत है, जिसकी आवश्यकता सत्य की खोज में होती है— यद्यपि इसके बाद भी विवाद का अन्त नहीं हो जाता है।

विज्ञान के क्षेत्र में जब डारविन या आइन्सटीन नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, जो हमारे विचारों को संशोधित करते हैं, तो इसे विज्ञान की विजय मानी जाती है। कोई यह नहीं कहता कि विज्ञान की एक पराजय फिर से हुई, क्योंकि इसके पुराने विचारों और सिद्धान्तों का परित्याग किया गया है। हम लोग यही अनुभव करते हैं कि विज्ञान में एक नयी प्रगति की प्राप्ति हुई है, नया विकास हुआ है।

धर्म भी इसी भावना से अपने अन्दर परिवर्तनों को स्वीकार करे, जैसा विज्ञान में किया जाता है। इसके सिद्धांत चिरयुगीन, चिरस्थायी एवं चिरंतन हो सकते हैं, परन्तु उन सिद्धान्तों की व्याख्या में सदा विकास की आवश्यकता होती है, अपने ही उचित विचारों में से अनुचित विचारों को छाँट कर निकालने की जरूरत होती है, जो इसमें मान्यताओं के आधार से विश्व के एक काल्पनिक चित्र के संबंध में अपनी व्याख्याओं के कारण घर कर गये हैं।

धर्म यदि सत्य की स्वस्थ व्याख्या है, तो इस संशोधन से सत्य उन बातों को उचित प्रकार से प्रकट करेगा, जो महत्त्व की है।

धर्म वास्तव में मनुष्य के आधारभूत अनुभवों को विचारों के रूप में प्रकट करता है, धार्मिक विचारों का विकास भावनाओं की अधिक-से-अधिक सही व्याख्या में होना चाहिए। ● ● ●

अहिंसा और विज्ञान

•

श्री खावेरी (ईरान के बहाई)

सर्वप्रथम मैं कहूँगा कि भारत और ईरान का सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत ही प्राचीन है और शताब्दियों से दोनों देशों के बीच एक जैसी रूहानी धारा चलती रही है। मैं इस बात के लिए इस सम्मेलन के प्रेरक एवं आयोजकों को धन्यवाद देता हूँ कि यहाँ इस सम्मेलन का यह अधिवेशन आयोजित किया गया है, जिसमें तमाम धर्मों के प्रतिनिधियों को एकत्रित किया गया है, जिससे कि मिलकर मनुष्य मात्र के कल्याण एवं भलाई के लिए विचार किया जा सके। दीन या धर्म प्राचीन काल से चला आ रहा है। यह उस समय से चला आ रहा है, जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। समय-समय पर ईश्वर की इच्छानुसार या समय की आवश्यकतानुसार कोई न कोई नबी, वली, ऋषि, पैगम्बर इस संसार में आते ही रहते हैं, जो भूले-भटकों को सीधे रास्ते पर लगाते रहते हैं। चूँकि सभी धर्मों की बुनियाद एक है, इसीलिए सभी की तालीम के अन्दर एक-दूसरे से परस्पर प्रेम और मुहब्बत करना धर्म का एक महान् लक्षण हो जाता है। जितने मजहब हैं, सभी के मकसद एक हैं। जरथुस्त्र धर्म में तीन चीजें हैं दीनदारनी, गुफ्तारनी, किरदारनी या मनस्क, गवस्न, और कुनस्न अर्थात् अच्छा सोचो, अच्छी बातें करो, अच्छा व्यवहार करो। धर्म की ये तीन बुनियादें हैं। इसीकी नई चेतना जाग्रत करने के लिए नबी, पैगम्बर आते रहे हैं। मनुष्य मात्र की जितनी भी बीमारियाँ हैं, उनका इलाज धर्म है जिससे आपका द्वेष, राग, वैर दूर किया जा सके। जमाने के गुजरने के साथ कई प्रकार की कुरीतियाँ या ऐसी बातें आ जाती हैं कि मनुष्य धर्म से परे हो जाता है और वह धर्म के असली तत्त्व एवं ध्येय को भूल जाता है, तो फिर से जमाने के तकाजे के अनुसार कोई ऐसी शक्ति या नूर मनुष्य के रूप में आता है, जो धर्म का पुनः प्रसार करता है। जाहिर है कि जिस जमाने में वह व्यक्ति आता है, उस जमाने के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन को परिणत कर ले। जमाने के साथ नहीं चलने पर वह पिछड़ जाता है। इसीलिए हर जमाने में पैगम्बर आते रहे हैं। प्रारम्भ से ही नबी, पैगम्बर खुदा की मर्जी से जमाने की जरूरत के मुताबिक आते रहे हैं।

इसमें शक नहीं कि पिछले गुजरे जमाने में विज्ञान ने प्रगति की है। रेडियो, टेलीविजन आदि बने हैं। उसके भी यही निर्देश हैं कि सभी परस्पर एक-दूसरे के अधिकाधिक निकट आयें। विज्ञान के कारण संसार बहुत छोटा हो गया है। आपस के झगड़े दूर हों, यही इन्सान की जरूरत है। ११६ साल पहले ईरान में बहाउल्ला इसी प्रकार पैदा हुए थे। यद्यपि वह एक वजीर के पुत्र थे और एक धनवान माँ-बाप के औलाद थे, फिर भी चालीस वर्षों तक जेल की सजा भुगती, यातनाएँ सहीं, मुसीबतों को झेला और आज उनकी तालीम तमाम दुनिया में फैली है। उनके अनुयायी योरप-अमेरिका में भी हैं। उन्होंने अपने मामूर होने का एलान अपनी कुर्बानियों से किया था। इसलिए श्रोतागण यदि पुस्तकों के पढ़ने का कष्ट करें, जिसका अनुवाद २५० भाषाओं में हो चुका है, तो पता चलेगा कि किस प्रकार उन्होंने लोगों को प्रेम, शान्ति और सुलह का सन्देश दिया और बताया कि कोई भी किसीका दिल न दुखाये, ऐसा कोई काम नहीं करे कि जिससे किसी को कष्ट हो। इसीसे आज इस बात की दावत देता हूँ कि आप उनके सन्देशों को पढ़ें। • • •

श्री अगरचन्द नाहटा

जैन धर्म में अहिंसा का स्थान और उसके सम्बन्ध में क्या विचारधारा है, वह संक्षेप में रख रहा हूँ। वैसे तो सभी धर्मों में अहिंसा को स्थान दिया गया है, पर जैन धर्म में उसका स्थान महत्त्वपूर्ण एवं विशेष है। जितनी सूक्ष्म विवेचना हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध में जैन तीर्थंकरों एवं आचार्यों ने की है, सम्भव है उतनी सूक्ष्मता में दूसरे लोग नहीं गये हैं। इसीसे जैन धर्म में अहिंसा का कितना महत्त्व है, यह थोड़े समय में बताना सम्भव नहीं है फिर भी प्रयत्न करूँगा, कि लोगों का ध्यान मुख्य-मुख्य बातों पर आ जाय।

सबसे पहली बात यह है कि मनुष्य का जीवन हिंसा एवं अहिंसा, दोनों से सम्बन्धित है। हम जो जीवन व्यतीत करते हैं, उसमें हिंसा भी एक अनिवार्य अंग बन जाती है। फिर भी चिन्तकों ने यह सोचा कि केवल हिंसा पर विश्व, समाज एवं देश का संचालन नहीं हो सकता है। इसके लिए अहिंसा अनिवार्य है।

यदि विश्व की व्यवस्था कायम रखनी है तो यह आवश्यक है, कि अहिंसा को जीवन में अपनाया जाय, क्योंकि हिंसा के द्वारा हम देखते हैं कि मनुष्य एक-दूसरे की घात करता है और यदि इसी प्रकार सभी एक-दूसरे की घात में संलग्न हो जायँ, तो संसार टिक नहीं सकता। इसीलिए विश्व में और जीवन में अहिंसा की परम आवश्यकता है। यदि मनुष्य को जीवित रहना है, विश्व को कायम रखना है, और दूसरे प्राणियों को जीवित रखना है तो अहिंसा और प्रेम के बिना वात्सल्य, सहिष्णुता एवं क्षमा के बिना जीवन निभ नहीं सकता। अहिंसा के साथ में यह भी देखना होगा कि इसका विकास किस प्रकार हुआ है?

हम जब जैन सूत्रों और भगवान् महावीर की वाणी की ओर जाते हैं तो हमें सूत्र मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है, जीना चाहता है और कोई भी व्यक्ति मृत्यु एवं दुख नहीं चाहता है। अहिंसा के सिद्धान्त की उत्पत्ति का मूल सूत्र यही है, जिससे यह पता चलता है कि जब प्रत्येक व्यक्ति सुख और जीना चाहता है. तो इस प्रकार की स्थिति में हमारा बर्ताव दूसरों के प्रति किस प्रकार का हो। हम भी यही चाहते हैं और दूसरे प्राणी भी यही चाहते हैं, तो हमारा बर्ताव दूसरे के प्रति किस प्रकार का हो जिससे दोनों की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इसी भावना से अहिंसा के सिद्धान्त का विकास हुआ कि स्वयं जीयें और दूसरों को जीने दें, क्योंकि जीवन के साथ हिंसा का संबंध जरूर है, पर जितने अंश में वह अहिंसा बन सके, प्रयत्न करे और सतर्क रहे।

जैन धर्म ने इसकी गहराई में जाकर हिंसा-अहिंसा को केवल मानव तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि जैन धर्म में सूक्ष्म जीवों की जितनी विवेचना है—पानी में, अग्नि में, पृथ्वी में, वनस्पति आदि

में-कि इस प्रकार सम्भवतः विश्व के किसी अन्य धर्म में जीवों की सूक्ष्म विवेचना इस प्रकार की नहीं है। इस स्थिति में जैनों की जो अहिंसा है, वह अन्यत्र नहीं। अतः किसीको ऐसी बात नहीं कहनी है, किसी से ऐसा व्यवहार नहीं करना है कि उसे दुख हो। तो पहली बात यह है कि हिंसा और अहिंसा को मनुष्य तक ही सीमित न रखकर सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों से अपना सम्बन्ध जोड़ना कि जैसी आत्मा मुझमें है, वैसी ही छोटी-छोटी प्राणियों में है।

दूसरी बात यह कि केवल शरीर से ही हिंसा का त्याग नहीं, बल्कि मन से भी बुरा चिंतन नहीं करना, वचन से भी नहीं करना और कराने तथा अनुमोदन करने तक की वहाँ रोक है ताकि मनुष्य केवल स्वयं हिंसा करे ही नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि दूसरों से भी नहीं कराये और अगर कोई करता हो, तो अनुमोदन भी नहीं करे। इस प्रकार जैन धर्म में अहिंसा का जो सूक्ष्म रूप लिया गया है, वह केवल सिद्धान्त की ही बात नहीं, बल्कि व्यवहार की भी बात है। ● ● ●

इसके बाद सभा के सामने पांच प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित किये गए

प्रस्ताव क्रमांक १

इस द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का यह अभिमत है कि सभी धर्मों का सार प्रेम, अहिंसा और परम सत्य या ईश्वर है। सभी धर्मों का मुख्य उद्देश्य प्राणीमात्र को प्रेमसूत्र में बाँधना है। जहाँ प्रेम है, वहाँ अहिंसा है और दोनों एक-दूसरे से अविच्छेद्य हैं। अहिंसा ही विश्व-शान्ति का एकमात्र आधार है, हो सकता है तथा निरस्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। सभी धर्म-संस्थाओं का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इस आदर्श का प्रचार कर विश्वबन्धुत्व को साकार करें।

प्रस्ताव क्रमांक २

इस द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का यह अभिमत है कि धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है, बल्कि एक-दूसरे का पूरक है। मानव सदा से अपने लिए शाश्वत सत्य का अन्वेषण भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों ही क्षेत्रों में करता रहा है। सत्य की इस खोज में वह कभी बाह्य जगत् में झाँकता है और कभी अन्तर जगत् में। अन्तर जगत् का क्षेत्र धर्म का क्षेत्र है और विज्ञान के अन्तर्गत भौतिक जगत् के सत्यों का प्रतिपादक होता है और वह धर्म के चरम सत्य को ही सिद्ध करता है।

प्रस्ताव क्रमांक ३

इस संसार में वास्तविक परिवर्तन लाने के लिए यह निश्चित है कि सभी को हिंसा पर आधारित वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बदलना होगा और दैनिक जीवन के लिए अहिंसा को अपना पथ-प्रदर्शक बनाना होगा। यह द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन इस बात पर संतोष व्यक्त करता है कि अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित सामाजिक न्याय का धीरे-धीरे निर्माण एवं विकास हो रहा है यद्यपि कुछ अपवाद हो सकते हैं। यह सम्मेलन वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं में अहिंसा के सिद्धान्तों के महत्त्व पर जोर देता है।

प्रस्ताव क्रमांक ४

इस द्वितीय विश्वधर्म-सम्मेलन का यह निश्चित मत है कि विश्व-बन्धुत्व के लिए धर्म बहुत ही आवश्यक है। इस प्रश्न के बाद भी कि कोई राज्य-चाहे धर्मप्रधान हो या धर्मनिरपेक्ष, पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि समाज के सभी घटकों को धर्म के शाश्वत तत्त्वों का पूर्ण रूप से शिक्षण प्रदान किया जाय।

प्रस्ताव क्रमांक ५

धर्म-निरपेक्ष राज्य का अर्थ धर्म-विरुद्ध राज्य नहीं होता है। यह आवश्यक है कि धर्म के मुख्य उद्देश्यों का उसके सही एवं शाश्वत रूप में शिक्षण प्रदान किया जाय। विश्व-धार्मिक एकता की स्थापना की सम्भावना तथा विश्व-बंधुत्व का विकास तभी सम्भव हो सकता है, जब धर्म की उक्त शिक्षाएँ सभी वर्गों के लोगों और मानव समाज के जीवन-व्यवहार में उतरती हैं।

प्रस्ताव क्रमांक १	:	प्रस्तावक – श्री एच० आर० मुल्ला
		समर्थक – डा० हीरालाल चोपड़ा
प्रस्ताव क्रमांक २	:	– अध्यक्ष द्वारा प्रस्तावित
प्रस्ताव क्रमांक ३	:	प्रस्तावक – श्री जे० एस० लोढा
		समर्थक – श्री जे० पी० शाह
प्रस्ताव क्रमांक ४	:	प्रस्तावक – श्री वान कादिर इस्माइल
		समर्थक – श्री भालचन्द्र शर्मा
प्रस्ताव क्रमांक ५	:	प्रस्तावक – श्री जे० पी० शाह
		समर्थक – श्री जे० एस० लोढा

उपरोक्त प्रस्तावों पर जो चर्चा हुई, वह यहाँ दी जा रही है।

प्रेम का शास्त्र

•

मुनीश्री जयन्तिलालजी महाराज

प्रेम शब्द सबसे बड़ा और विलक्षण शब्द है। यह बहुत सरल होने पर भी मनुष्य की बुद्धि को उलझन में डालता रहता है। इसलिए सर्वप्रथम प्रेम शब्द की दार्शनिक व्याख्या हो जानी चाहिए। अभी तक जितने भी दर्शनकारों ने जो भी विचार प्रस्तुत किये हैं, उन सभी की दो दो धाराएँ हो गयी हैं और वे दो-दो विभागों में बँटती गयी हैं। एक तो इस विचार में हम पहले वैदिक और सनातन को लेते हैं। उनमें जितने भी महात्मा हुए, उनमें एक धारा के लोग यह कह गये हैं कि इस संसार में किसी की सेवा करना, किसीसे हाथ मिलाना, प्रेम करना, सम्बन्ध जोड़ना आदि बन्धन हैं। इसलिए वे

लोग एकान्त-त्याग, उपासना, आत्मस्थिति, ईश्वर-प्रेम, आत्मप्रेम को अध्यात्ममूलक प्रेम कह देते हैं और वे संसार से निवृत्त होना चाहते हैं। पर दूसरे प्रकार के प्रेम की जो बात है, वह यह है कि सभी के साथ मिलना, सबको अपनाना, सभीसे प्रेम करना, किसीको दुःख हो, उसका दुःख मिटाना और उन सभीको सुख बाँटना, अपने निज की जात और व्यक्तित्व को भूल जाना और संसार के बीच रहना। इस प्रकार प्रेम की जो दार्शनिक व्याख्या है, उसे समझ लेना आवश्यक है। आप ठीक से सोचें, तो पता चलेगा कि इसकी दो धाराएं क्यों होती हैं ?

एक मत है कि प्रेम शब्द बहुत ही रागी शब्द या राग का द्योतक है। वह रागपरक भी निश्चित रूप से है। राग का अर्थ होता है प्रीति और प्रेम का जो दूसरा अर्थ है, वह भौतिक पदार्थों के प्रति स्नेह नहीं, बल्कि उस भावना को दूर करना या काटना है। उसके ऊपर जो विज्ञ तत्त्व है, उसके ऊपर अपनी रुचि जोड़ देना भी प्रेम की एक व्याख्या है। यदि प्रेम को हम स्थूल अर्थ में लेते हैं, तो वे सभी महात्मा ठीक हो जाते हैं कि प्रेम को फेंक दो और किसीसे सम्बन्ध जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर यदि हम प्रेम के दिव्य स्वरूप पर जाते हैं, तो वे महात्मा ठीक हो जाते हैं कि हम संसार में रहते हुए किसी से प्रीति नहीं करेंगे, बल्कि उसके ऊपर जो दिव्य शक्ति है उसीसे प्रीति जोड़ेंगे। इन सिद्धान्तों और विचारधाराओं को लेकर बौद्धों में हीनयान और महायान सम्प्रदाय बन गये, इधर शंकराचार्य में रामानुज सम्प्रदाय अलग हो गया तथा जैनों में श्वेताम्बर और दिगम्बर हो गये। ये दो धाराएँ हैं। जो सेवा, या प्रेम है, उसे ज्ञानी लोग राग कहते हैं। ऐसी विपरीत मान्यताओं में प्रेम शब्द की व्याख्या आवश्यक है और यह समझना होगा कि प्रेम से हम क्या अर्थ लेते हैं ?

ईश्वर को लेकर संसार में बहुत घोटाला हुआ है। कोई कहते कि हैं हम ईश्वर को नहीं मानते हैं, और बौद्ध-संस्कृति हमारे सामने है। वे अपने को अनीश्वरवादी कहते हैं। जैन को कुछ लोग थोड़ा समझ लेते हैं कि वे अनीश्वरवादी हैं, पर यह सत्य नहीं है। पहले जो न्यायशास्त्रज्ञ हुए हैं उनकी थोड़ी व्याख्या करूँगा। न्याय-शास्त्र का प्रारम्भ करते हुए नव्य न्याय पर दीनकरिकार की एक टीका है। वे विचार के बड़े धनी थे। उनकी व्याख्या आज रमणीक मान्य और अति संक्षिप्त मानी जाती है। दीनकरिकार ने भी कहा है कि ईश्वर क्या है ? पर यदि आप ईश्वर को भी ठीक नहीं समझेंगे तो उनको लेकर एक कहेंगे कि ईश्वर की ओर जाना है और दूसरे कहेंगे कि नहीं जाना है, तो ऐसा करके तो संगठन सम्भव नहीं हो सकेगा। आज प्रश्न यह है कि इन तत्त्वों पर तो झगड़े हैं और हम सभीको आपस में जरूरत मिलने की है। हम मिलना चाहते हैं, तो दार्शनिक दीवारें आकर सामने खड़ी हो जाती हैं और फिर साम्प्रदायिक दीवारें आ खड़ी होती हैं। तो मित्रो, अब पहले उस दार्शनिक दृष्टि से समन्वय लाना होगा। हम उस ईश्वर को लेकर कोई झगड़ा करें, जिसे वह स्वयं भी नहीं चाहता है तो पहले ईश्वर के बारे में भी विचार करें और ईश्वर क्या है, सोचें। जिसके अन्दर ऐश्वर्य है, वही ईश्वर है। जैन हों या बौद्ध वे किसी एक सत्ता को मानते हैं, ऐश्वर्य को मानते हैं और दूसरी वस्तु को निष्फल कहते हैं। तो ऐश्वर्यमान तत्त्व ईश्वर है, ऐसा मानकर और इसी प्रकार अणु-अणु को मानकर चलना होगा। देहधारी साकार कोई ईश्वर है या नहीं यह प्रश्न गोस्वामी तुलसीदासजी के भी सामने आ गया था। गोस्वामीजी तो बुद्धि और मानवता के पुजारी थे। उन्होंने कहा कि अहंकार और बुद्धिवाला मनुष्य कहीं ईश्वर को लेकर मारपीट, झगड़ा-फसाद न करे। तो उन्होंने जो दोहा कहा वह इस प्रकार है :

निर्गुण है पिता हमारो, सगुण है महतारी।
किसको बन्दूं, किसको निन्दूं, दोनों पलरा भारी ॥

मैं स्वयं पहले कट्टरवादी था। कोई ईश्वर का नाम लेता था, तो मेरे मन में उसके विरोध की बातें आ जाती थीं। मेरा विषय दार्शनिक रहा है और इसीसे मैं बहुत विरोध करता था। परन्तु गोस्वामीजी की कृपा है कि मेरी बुद्धि में समन्वय की भावना बहुत अच्छे ढंग से आयी। अब आप ही कहें कि बाप की निन्दा करके माँ को माना जाय या माँ की निन्दा करके बाप को!

इस प्रकार अब यदि प्रेम की व्याख्या ठीक ढंग से नहीं समझे, तो यह दार्शनिक झगड़ा नहीं मिटेगा और जब तक दार्शनिक झगड़ा नहीं मिटेगा, तब तक एक कहेगा कि प्रेम को मानते हैं और दूसरा कहेगा कि प्रेम छोड़ने लायक है और फिर यह जो सिनेमा के अन्दर प्रेम का रूप दिखाया जाता है वह तो प्रेम है ही नहीं, वह तो छोड़ने की वस्तु हो जायगी। अतः प्रेम का स्तर साफ होना चाहिए। यदि प्रेम का झगड़ा मिटाना है तो तमाम संसार में जो भौतिक पदार्थों का प्रेम है, उसे हटाकर दिव्य तत्त्वों पर प्रेम को स्थापित करना होगा और उस प्रेम को लेकर चलेंगे, तो सर्व-धर्म का संगठन निश्चय रूप से कर सकेंगे। इस प्रकार जो शाश्वत प्रेम है और फिर सगुण निर्गुण का भेद न करते हुए उस ईश्वर को मानकर चलेंगे, जिसमें ऐश्वर्य है और जिस ऐश्वर्य के द्वारा हम सभी को आगे बढ़ना है, उसे लेकर चलेंगे तो यह प्रथम प्रस्ताव सर्व दर्शन और सर्व संस्कृतियों को मान्य हो जायगा और उसके द्वारा हम सभी एक सूत्र में बँध सकेंगे, ऐसी हमारी मान्यता है। ● ● ●

मौलिक दृष्टि

डा० हीरालाल चोपड़ा

पहले प्रस्ताव का मूल तत्त्व प्रेम, अहिंसा, सत्य और ईश्वर है। यदि इस पर यह आक्षेप हो कि यह प्रस्ताव का रूप नहीं रखता है, तो कहेंगे कि आज की बीसवीं शताब्दि में हम गुजर रहे हैं, जहाँ ईश्वर, प्रेम, अहिंसा और धर्म के अस्तित्व पर भी शंका की जाती है। इसलिए आज प्रस्ताव के रूप में इसे रखने की सबसे बड़ी आवश्यकता है। धर्म, प्रेम और अहिंसा–ये सत्य की ओर आते हैं। तमाम धर्मों मे इनका एक ही रूप माना जाय ऐसी याचना, आराधना और प्रार्थना सभी धर्म वालों, सभी बुजुर्गों और सभी लोगों से की जाती है। साथ ही अपने-अपने धर्मों मे जो भी अनावश्यक चीजें हैं, जिनसे हम एक-दूसरे से छिन्न-विच्छिन्न होते हैं, उन्हें त्यागकर बुनियादी तत्त्वों को अपनाने की चेष्टा करें। इससे हमारे सामने धर्म का विस्तार खुल जायगा। यह समझने की भी जरूरत है कि हम धर्म किस चीज को कहते हैं? एक उर्दूवाले ने कहा है—

डा० चोपड़ा

यही है इबादत, यही है दीन और ईमान, कि काम आये दुनिया में इन्सान के इन्सान।

जब तक हमारे अन्दर अहंकार है, तब तक हमारे बीच कई दीवारें हैं, जिन्हें फाँदने की जरूरत है। प्रेम यह कहता है कि संसार में जितने प्राणी हैं और मनुष्य हैं, उन सभी के साथ हमारा एक अटूट सम्बन्ध है :

"यो मां पश्यन्ति सर्वत्रो, सर्वं यः मयि पश्यति।
पश्याहं न पश्यामि सच मे न प्रणश्यति।।"

गीता खुले आम कह रही है कि जो मुझे सर्वत्र और सभी चीजों में देखता है और मुझ में ही हर चीज को देखता है, वह न कभी मुझसे अलग है और न मैं भी उससे अलग होता हूँ। शिर से पाँव तक कहीं भी दृष्टि डालता हूँ, तो उसका ही स्वरूप नजर आता है, तो इसलिए मैं उससे अलग नहीं हूँ। वर्ड्स्वर्थ जिस समय फूल तोड़ते हुए अपनी बहन डोरीथी को देखता है, तो वह कह उठता है—फूल को मत छूओ, उसमें भी आत्मा है, उसकी आत्मा जख्मी हो जायगी। शेक्सपियर ने भी खुले आम कहा है—ग्रीष्म का यह समय, इसे जनसमुदाय से विद्धत होने से बचाओ, सभी वृक्षों, सभी झरनों में जवानी है, पत्थरों की भी कहानी है और सभी चीजों में अच्छाई है। हमें कल-कल करती हुई नदियों की सुनहरी गीतों में भगवान की स्तुति सुनाई पड़ती है, पत्थरों में उसका स्वरूप दिखाई पड़ता है। जब तक इस धारणा को नहीं रखा जायगा, कल्याण नहीं। हमें तो दृष्टिकोण को बदलना है।

हम इसे धर्म नहीं समझते कि यज्ञोपवीत नहीं पहना या धर्म का और कोई चिह्न नहीं रखा तो पतित हो गया, बल्कि कल जैसा मुनिजी महाराज ने कहा कि धर्म उस समय से चला आ रहा है जब से मनुष्य की पहली सृष्टि हुई और जब धर्म की कोई पुस्तक नहीं थी। अनादि काल से ही मनुष्य धर्म से बँधा चला आ रहा है। यह अलग बात है कि किसीने ईश्वर, किसीने अल्ला, किसीने गॉड या किसी अन्य नाम से पूजा की। उसके लिए तो कोई नाम की भी जरूरत नहीं है और जिस नाम से भी उसे याद किया जाय, बहुत अच्छा है। तमाम संसार भगवान का सृष्टि है और वह एक ही कुटुम्ब है जो भगवान का परिवार है। इसलिए जब छोटे-छोटे अपने अलग-अलग फिरके बना लेते हैं तो भेद नजर आते हैं। हजरत ख्वाजा महम्मद ने कहा है—हकीकत जरा होशमन्दी से देख, बराबर है सब घर बुलन्दी से देख

जरा ऊँचे उठकर देखें तो पता चलेगा कि हम एक-दूसरे के कितने करीब हैं। हम सभी छोटे-छोटे नालियों और रास्तों को लेकर झगड़ते हैं। यदि समुद्र से पूछा जाय कि चिनाब कहाँ है, झेलम और रावी का पानी कहाँ है या गंगा, जमुना या ब्रह्मपुत्र का पानी कहाँ है ? तो क्या उत्तर होगा। वहाँ तो सारी नदियाँ मिल जाती हैं और एक हो जाती हैं। तो हम लोग यदि अपनी-अपनी नदियों को अलग-अलग लेकर बैठे रहेंगे तो सागर कभी नहीं बन सकते। इस प्रकार जब तक अन्दर की भावना और धारणा को नहीं बदलेंगे और जब तक वास्तव मे जीवन धर्ममय नहीं हो जायगा, हम धर्म को नहीं समझ सकते।

इस प्रकार हमारे कहने का यही मतलब है कि जहाँ धर्म का प्रसार हो वहाँ अहिंसा भी हो। अहिंसा किस प्रकार की ? गांधीजी ने एक समय हिंसा की परन्तु अहिंसा के लिए। अहिंसा को बचाने के लिए की गयी हिंसा को वह हिंसा नहीं कहते थे। अपने-आप को कष्ट दिया जाय जिससे दूसरों को सुख हो। हम जब तक देते नहीं, ले नहीं सकते। जरूरत देने की है। कोई व्यक्ति कुछ कमाता है तो वह अपने बच्चों, भाइयों आदि को देता है और उसमें उसे आनन्द होता है। जब तक देते नहीं और केवल

अपने अन्दर ही रहने की वृत्ति है आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती है। "धर्म का अर्थ भी दूसरों को सुख, प्रेम और शान्ति बाँटने का ही है। इसीलिए यह प्रस्ताव है कि हम जितने फिर्के हैं सभी की बुनियाद एक है—सत्य, प्रेम और अहिंसा की। ऐसा कोई धर्म नहीं जिसमें यह नहीं है। ईद में मुसलमानों को कुर्बानी करनी पड़ती है। इसका यह मतलब है कि खुदा के रास्ते में जिहाद किया जाय, मिटाया जाय और तभी वह प्राप्त होता है। इसके लिए तलवार की धार पर चलने की जरूरत है।"

यह भगवान का शुक्र है कि इस पूर्वी जमीन में बहुत-से पथप्रदर्शक हुए पर किसीने भी किसी दूसरे के रास्ते को गलत नहीं कहा बल्कि उन्होंने यही कहा कि जो रास्ता तुम्हें मिलता है, उस पर ठीक से चलो। जहाँ कहीं से भी रोशनी मिलती है, उसे अख्तियार किया जाय जिससे रास्ते में रुकावट नहीं हो। अतः इस प्रस्ताव में उपस्थित धर्म के तत्त्वों को दूसरे सभी भाइयों को भी समझाने की जरूरत है जिसके लिए कोशिश करें। अब तक धर्म के नाम पर अनेक बुराइयाँ हुई पर वास्तव में वे धर्म नहीं अधर्म के नाम पर हुई। काश वे धर्म को समझे हुए होते तो कभी ऐसा नहीं होता। वे तो वास्तव में धर्म के तत्त्व से विमुख हो चुके थे। उस समय वे मनुष्य से जानवर हो चुके थे। धर्म के असली रूप से दूर हो चुके थे। यही कारण है कि धर्म के नाम से वह सब हुआ। ● ● ●

एक मंच का निर्माण

●

स्वामी आनन्द

कोई ऐसा मार्ग या सिद्धान्त खोज निकालना है जिससे सभी धर्म के सम्बन्धों में नवनीत निकल सके और जिससे संगठन का केन्द्रबिन्दु प्राप्त हो सके जहाँ पर सभी धर्मवाले मिल सकें। क्रिश्चियन मोक्ष प्राप्ति के लिए कभी क्रिश्चियानिटी या क्राइस्ट को नहीं छोड़ सकेंगे और उसी प्रकार एक मुसलमान कभी इस्लाम के खिलाफ नहीं जा सकता। इसी प्रकार अनेक धर्म हैं और प्रत्येक के बहुत सारे अनुयायी हैं जो अपने धर्मों का पालन अपने ढंग से करते हैं। उसके लिए निष्ठा, भक्ति, एकत्व, सदाचार हैं। यह सभी उन्हें अपने आचार्यों, गुरुओं, से प्राप्त होता है और उसीके अनुरूप उसका पालन करते हैं। ये विशेष धर्म कहे जाते हैं पर यह आध्यात्मिकता नहीं है। धर्म और आध्यात्म में बहुत अन्तर है। धर्म में कुछ प्रतिबन्ध हैं क्योंकि उनमें कुछ विशेष सिद्धान्त, नियम और साक्षात्कार के तरीके हैं। सभी बौद्ध लोग बुद्धं शरणं, धर्मम् शरणम् और संघम् शरणम् गच्छामि कहते हैं। वे रामम् शरणम् या कृष्णम् शरणम् गच्छामि कभी नहीं कहेंगे। इसलिए मैं अपने मित्रों को सावधान करना चाहता हूँ कि वे धर्म के मर्मस्थल को "छूनेवाली बातों को समझने की कोशिश करें। वैदिक या वेदान्तिक धर्म में प्रेम या उस प्रकार की कोई चीज नहीं है। यदि ऐसा कहा जाता है तो गलत है। मैं हिन्दू धर्म के बारे में बोलने का हक रखता हूँ और उसी प्रकार एक मौलाना अपने धर्म के बारे में बोलने का हक रखता है। इस प्रकार यदि एक मौलाना हिन्दू धर्म की बातें करता है तो मैं उसे बैठ जाने को कहूँगा। विनोबा भावे अपनी पदयात्रा और शांति के सन्देश के क्रम मे कहा करते थे—"ईश्वर अल्ला तेरा नाम" परन्तु कश्मीर के मुसलमानों ने उसका विरोध किया। इसलिए मैं कहूँगा कि धर्म के वैसे बिन्दुओं को नहीं छुआ जाय और हमलोगों को ऐसे बिन्दुओं को खोजना है जहाँ सभी मिल सकें।

सभी का अपना-अपना धर्म है तो हम किस प्रकार और कहाँ मिल सकते हैं। हम ईश्वर के रास्ते में मिल सकते हैं। राजनीति या धमकी से, जिसका वातावरण आज छाया है, हम नहीं मिल सकते हैं। हम सभी प्रेम, भक्ति और शांति से मिल सकते हैं। हम सभी पहले मिलकर विचार-विमर्श करें और तब प्रस्ताव लायें। यह विश्वधर्म संगम एक रजिस्टर्ड संस्था है। इस नाते इसके उद्देश्य, आदर्श और नियमावलि हैं। दिल्ली में जो सम्मेलन हुआ, उसमें भी कुछ प्रस्ताव पास हुए। वे प्रस्ताव क्या हैं? जिस उद्देश्य को लेकर विश्वधर्म संगम की स्थापना हुई, हमें तो उसीको सफल करना है। उसके लिए केवल मिलना-जुलना नहीं बल्कि कार्यक्रम होना चाहिए। उसके लिए सहिष्णुता की जरूरत है। मेरा अपना अलग धर्म और विश्वास है पर फिर मानव धर्म और विश्वधर्म भी है। सभी धर्मों के प्रतिनिधि पहले अपने-अपने बारे में कह लें तो फिर विचार हो।

जस्टिस रमाप्रसाद मुखर्जी (अध्यक्ष)

एक प्वाइन्ट ऑफ ऑर्डर उठाया गया है स्वामी आनन्दजी के द्वारा। यह प्रस्ताव है या नहीं? या यह एक घोषणा है। परन्तु यदि आप भाषा पर ध्यान दें और प्रस्ताव के प्रथम भाग को पढ़ें तो देखेंगे कि उसमें कहा गया है कि इस द्वितीय विश्वधर्म सम्मेलन का अभिमत है कि सभी धर्मों का सार प्रेम, अहिंसा और सत्य है। लोग इससे सहमत हों या नहीं पर ऐसा एक प्रस्ताव है जो सम्मेलन के समक्ष उपस्थित किया गया है। आगे के दो वाक्यों में उसकी व्याख्या, प्रस्तुत करते हुए अन्तिम वाक्य में कहा गया है कि सभी धर्मवालों का यह परम कर्तव्य है कि इस आदर्श का प्रचार करें जिससे विश्वबन्धुत्व की स्थापना सम्भव हो सके। यहाँ पर इसमें किसी भी धर्म विशेष के प्रति कोई भी विद्वेष की भावना नहीं है और न कोई बहस की ही गुंजाइश है जिससे कहा जाय कि अमुक धर्म या आदर्श ही ऊँचा है या मोक्ष प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम है। प्रस्ताव यह है कि प्रेम, अहिंसा और चरम सत्य सभी धर्मों के आधारभूत सिद्धांत हैं। यदि आप कहें कि कुछ और भी है तो उसे सुझाव और सुधार के रूप में आने दें, परन्तु यह प्रस्ताव पूर्ण रूप से सही है।

चण्डी प्रसाद केड़िया

इस प्रस्ताव में यह जोड़ा जाय कि—"परस्पर धर्मों में होनेवाले संघर्षों के कारणों की छानबीन करने के लिए एक समिति गठित की जाय जो यह भी विचार करे कि एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन करने का प्रयत्न ठीक नहीं है।"

इससे विभिन्न धर्मों में परस्पर व्याप्त कटुता को दूर करने के तरीकों का पता लगाया जा सकता है। दूसरी बात सभी प्रकार के धर्म-परिवर्तनों को बन्द किया जाय और धर्म के मामले में दखल डालना रोका जाय। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रस्ताव का उद्देश्य बहुत महान् है परन्तु केवल भावना से ही यथेष्ट लाभ नहीं हो पाता है। हमें देखना है कि प्रेम, अहिंसा और भ्रातृत्व के नारों का प्रचार किस प्रकार हो सकता है। इसके पहले कि इनका प्रचार किया जाय पहले विभिन्न धर्मों के आचार्यों को इसे अपनाना होगा। हमने विभिन्न धर्मों के इतिहास को पढ़कर देखा है कि उनके नाम पर बहुत संघर्ष, रक्तपात आदि होते रहे हैं। इसलिए जब तक विश्वधर्म संगम के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए कोई तात्कालिक कदम नहीं उठाते है, परस्पर सौहार्द्र आना संभव नहीं है। क्योंकि जब सभी धर्म अलग-अलग

बन्धुत्व और सौहार्द्र के लिए प्रचार कर रहे हैं तो वह क्यों नहीं होता ? इसलिए जब तक एक समिति का गठन नहीं होता और विभिन्न धर्मों के बारे में तथा संघर्षों के कारणों पर विचार नहीं किया जाता, हम लोग आशा नहीं कर सकते कि समस्या का समाधान हो सकेगा जिसे हम लोगों ने अपने हाथों में लिया है। दूसरी बात यह है कि आज बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन चलाया जा रहा है। दूसरों के धर्मों में दखल देकर अपना प्रचार किया जाता है। परिवर्तन के लिए प्रयत्न चल रहा है और धर्म के नाम पर इतने रक्तपात हो रहे हैं कि कहा जा सकता है कि सभी धर्म अधार्मिक हैं। करोड़ों रुपये धर्म परिवर्तन के लिए खर्च किये जा रहे हैं, जिसे विभिन्न धर्मों में परस्पर मित्रता की स्थापना के लिए खर्च किया जा सकता है। इसलिए मेरा सुझाव है कि विभिन्न धर्मों में एकत्व के अनेक उज्ज्वल केन्द्रबिन्दु हैं और सभी महान् हैं। अतः एक समिति कायम हो, जो परस्पर सौहार्द्र के तरीकों पर विचार करे और पंचशील के सिद्धांतों का प्रचार करे जो धर्म के लिए उतना ही लाभदायक है जितना कि राजनीति के लिए।

श्री जे० पी० शाह

प्रस्ताव की तीसरी पंक्ति में मैं दो शब्दों—'चरम' और 'ईश्वर' के हटाने का अनुरोध करता हूँ क्योंकि चरम शब्द निरर्थक है। सत्य का कोई कम सत्य या अधिक सत्य या पूर्ण सत्य इस तरह कोई विभाग नहीं होता। सत्य का प्रारम्भ और अन्त एक समान ही होता है और उसका खण्ड नहीं हो सकता है। इसलिए यह विशेषण—'चरम' अनावश्यक है। फिर यदि कोई अहिंसा, सत्य और प्रेम में विश्वास करता है तो यह कोई अर्थ नहीं रखता कि वह ईश्वर में विश्वास करता है या नहीं। क्योंकि हमलोग कहते हैं कि सत्य भगवान है, अहिंसा भगवान है और प्रेम भगवान है, तो फिर ईश्वर शब्द अलग से रखने की क्या जरूरत ? ये तीन शब्द धर्म के सार को पूर्ण रूप से प्रकट कर देते हैं।

श्री एडवर्ड एल० पेप (आस्ट्रेलिया)

मैं एक सुझाव अभी आपके सामने रखना चाहता हूँ जिसे मैं महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। वह यह है कि विभेदों और मतभेदों पर बहस करने से हमारे मुख्य लक्ष्य धर्म के माध्यम से विश्व-शान्ति की प्राप्ति करने में कोई लाभ नहीं प्राप्त होता। इसलिए मैं कहूँगा कि प्रस्ताव सरल हों और जब उन पर विचार किया जाय तो देखा जाय कि उनमें मतभेद न हों और वह अधिकतर लोगों को स्वीकार्य हो क्योंकि यह ध्यान देने की बात है कि हमें केवल यहाँ पर उपस्थित कुछ लोगों को ही नहीं समझाना है बल्कि करोड़ों करोड़ लोगों को भी समझाना आवश्यक है जो विभिन्न देशों में फैले हैं। इसलिए मैं आपसे कहूँगा कि वैसी बातों से दूर रहा जाय जिस पर बहस अधिक हो सकती है। हमलोगों को यह ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य सिद्धान्त वे हैं जो सर्वत्र समान हैं और सभी यह अनुभव करते हैं कि हम सभी भाई-भाई हैं। इनका प्रचार सारे संसार में हो सके और युद्ध सदा के लिए बन्द किये जा सकें।

श्री डी० एल० डी० समरसेकर (सिलोन)

सर्वप्रथम मैं कहना चाहूँगा कि मैं एक बौद्ध हूँ। अब बौद्ध विचार के अनुसार प्रस्ताव के आरम्भ में कुछ ऐसे शब्द हैं जो स्वीकार्य नहीं हैं। मुझे दुख है कि आपका ध्यान मैं 'ईश्वर' शब्द की ओर आक-

र्पित कर रहा हूँ, जिस पर अभी कुछ विचार प्रस्तुत किये जा चुके हैं। हम बौद्ध लोग नास्तिक नहीं हैं परन्तु न तो हम ईश्वर के अस्तित्व का विरोध करते हैं और न मानते ही हैं। इस सम्मेलन का एक प्राथमिक उद्देश्य यह है कि विभिन्न धर्मों के लोग एक-दूसरे के विभेदों का पता लगाने के लिए नहीं, बल्कि समताओं का पता लगाने के लिए जो विषमताओं से कहीं अधिक है एक मंच पर मिलें और एक-दूसरे के परस्पर निकट आ सकें। सभी के लिए स्वीकार्य हो सकें, मैं ऐसा पाकिस्तान-मलाया के बौद्ध भाइयों की सलाह से कह रहा हूँ, मैं यह संशोधन करता हूँ कि प्रस्ताव से 'ईश्वर' शब्द को हटा दिया जाय। वास्तव में जो ईश्वर में विश्वास करते हैं वे उन्हें सत्य के अवतार के रूप में मानते हैं। परन्तु हम बौद्ध वहाँ तक नहीं जाते। हमलोग बुद्ध के निर्णय पर विचार करें—चार चीजें हैं जिसे बुद्ध ने एक आख्यायिका के माध्यम से समझाया है। मान लिया कि हम एक मैदान में टहलते हैं और एक जहरीले बाण का आघात हम पर होता है जिससे शीघ्र ही मृत्यु होनेवाली है। इस पर यदि कोई इस बात का पता लगाने में लगता है कि बाण किसने छोड़ा, वह किस प्रकार का आदमी है, बाण किस ओर से आया, आदि तो जब तक उत्तर प्राप्त हो, विष से उसकी मृत्यु हो जायगी। इसी प्रकार इस संसार में जहाँ दुख और कष्ट का बादल छाया हुआ है, और बुद्धि पर इतना पर्दा पड़ा है, यह आवश्यक है कि पहले बाण को निकाला जाय अर्थात् माया के पर्दे को निकाला जाय अर्थात् माया के पर्दे को दूर किया जाय और अपने को शुद्ध करें बनिस्वत इसके कि हम ईश्वर या चरम सत्य के अवतार की प्राप्ति में लगें। इसलिए बुद्धिष्ट लोगों के विचारों का समावेश भी हो इस दृष्टि से 'ईश्वर' शब्द को प्रस्ताव से हटा दिया जाय।

भिक्षु विवेकानन्द (थाइलेण्ड)

मैं श्री समरसेकर के संशोधन का समर्थन करता हूँ और कहूँगा कि "ईश्वर" शब्द को प्रस्ताव से हटाया जाय क्योंकि इसका अर्थ बहुत विस्तृत है और सभी लोगों के लिए यह बहुत कठिन है कि इसकी व्याख्या कर सकें। इसका अर्थ शक्तिमान और स्रष्टा भी होता है। यदि ईश्वर का अर्थ कोई परोक्ष शक्ति से है या स्रष्टा से है तो मैं असहमत हूँ और यदि इसका अर्थ सत्य, अहिंसा और प्रेम है तो मैं सहमत हूँ। यदि सम्भव हो तो इस शब्द को हटा दिया जाय। यदि सम्भव नहीं हो तो 'चरम सत्य' रखा जाय।

श्री हरदत्तराय (संयोजक)

मैं कुछ उलझन में पड़ गया हूँ। मेरा खयाल था कि ऐसा कोई धर्म नहीं जो ईश्वर को नहीं मानता हो। यही मेरा अबतक का विश्वास था। अभी विद्वान् लोगों के भाषणों के बाद यह ज्ञात हुआ है कि ऐसे विचारक लोग भी हैं जो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं। मुझे बताया गया है कि बौद्ध धर्म न तो ईश्वर की सत्ता में विश्वास ही करता है और न अविश्वास ही करता है। इस बारे में वह तटस्थ या चुप है। इसलिए मैं बुद्धिज्म के बारे में जानने का दावा नहीं करता हूँ और वे जो कहते हैं उसे ही मुझे स्वीकार करना चाहिए। अतएव सम्मेलन का उद्देश्य विभिन्न विचारों और धर्मों के माननेवाले लोगों को एक-दूसरे के निकट लाने के उद्देश्य के कारण जिससे कि उनमें विभेद का कोई

कारण उपस्थित नहीं हो; मैं अध्यक्ष की अनुमति से संशोधन को स्वीकार करते हुए ईश्वर शब्द का हटाया जाना स्वीकार करता हूँ।

●

मुनिश्री सुशीलकुमारजी महाराज

हम किसी न किसी पर विश्वास करते हैं तो सभी बातों को मानते हैं। अहिंसा, सत्य और प्रेम को भी मान लेंगे क्योंकि परमात्मा को मानते हैं। आचारांग सूत्र में भगवान् ने कहा है कि पहले आत्म-वादी बनो और तब लोकवादी बनो, फिर कर्मवादी और क्रियावादी बनो। लेकिन प्रश्न यह है कि मैं कहूँ कि आत्मा को माने बिना कुछ नहीं कर सकेंगे। स्वामीजी कहेंगे कि परमात्मा को माने बिना कुछ नहीं हो सकता और बुद्ध भाई कहते हैं परमात्मा शब्द को यदि रखते है तो अनात्मवाद वहाँ है। किसी प्रकार की यहाँ कोई शंका की बात नहीं है। भगवान् बुद्ध का सिद्धान्त सबसे ऊँचा गिना जाता है—अनात्मवाद। जैसा कि हमारे यहाँ सबसे ऊँचा सिद्धान्त आत्मवाद माना जाता है। इससे आगे यदि हम बढ़ें कि सारे संसार का कर्ता कौन है तो मामला और भी टेढ़ा हो जायगा और बात बनने न पायगी। जैन धर्म कहेगा कि परमात्मा है पर कर्ता नहीं है। जिस प्रकार सगुण-निर्गुण का झगड़ा है वैसे ही जैन धर्म भी मानता है कि परमात्मा तो है, पर उसकी स्थिति कर्ता की नहीं है। जैसा कि वेद ने कहा है–अहम् ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि और सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म–यह सही है। पर जहाँ कर्ता का प्रश्न आ गया और हम व्यवहार की जमीन पर उतरेंगे तो मुश्किल बन जायगी।

एक छोटी सी बात। भगवान् बुद्ध का स्मरण कर लें कि—भगवान् बुद्ध से किसीने पूछा कि संसार का बनानेवाला कौन है तो वह चुप रहे। वह मानते थे कि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो अवक्तव्य हैं और उन पर मौन रहना चाहिए, बोलना नहीं चाहिए। बहुत पूछा गया तो प्रश्नकर्ता ने कहा कि यदि हम जानेंगे नहीं कि कौन बनानेवाला है तो हम समाधि, भक्ति और प्रेम किसका करेंगे? उन्होंने कहा कि तुम्हारी बातें सच्ची हैं। एक बात कहूँ कि तुम रास्ते में चले जा रहे हो और रास्ते में किसी चलने-वाले को मूर्छित पाते हो तो तुम उसके निकट पहुँचकर क्या करोगे? क्या तुम पूछोगे कि तुम्हारा पिता कौन है, जाति क्या है, आदि या सबसे पहले उसकी मूर्छा दूर करने की कोशिश करोगे और जब वह स्वस्थ हो जायगा तो स्वयं अपनी जाति आदि बता देगा। आज सारा जगत् मूर्छित है। आज हम इस भाषा के द्वारा नहीं कह सकते कि यह जगत् क्या है और इसका बनानेवाला कौन है, परमात्मा कौन है, मनुष्य ही स्वयं परमात्मास्वरूप है या कोई दूसरी सत्ता, आदि? यदि हम इन्हीं तत्त्वों पर बहस करते रहे जो प्रश्न लाखों वर्षों से हल नहीं हो सके और हम सब के बाद भी हल होने को नहीं हैं तो यही श्रेय है कि मूर्छा दूर करने के लिए पहले प्रेम से जुट जायं।

भगवान् महावीर से जब पूछा गया कि सत्य क्या है, उन्होंने कहा–तं सच्चं खलु भयवं अर्थात् सत्य ही भगवान् है, अहिंसा ही भगवती है। वेद, जैन, इस्लाम और बुद्ध सभी धर्म मानेंगे कि सत्य परमे-

श्वर है, भले परमेश्वर सत्य है में विरोध हो और धर्म संकट उत्पन्न हो जाय। हमें धर्मसंकट लाना अभीष्ट नहीं है। हमारा अभीष्ट परस्पर प्रेम उत्पन्न करना है। मस्जिद, मन्दिर या गिरजा में खुदा मिलता है तो ठीक है हमें तो दिल में ही मिलता है। जो अक्षर जिसे पसन्द हो ले लें—बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण, मुहम्मद। जिस शब्द से प्रेम, सत्य प्यारा लगता हो मान लीजिये। उसे प्रेम कीजिये और सभी उसीके सहारे एकत्र हो जायं और एक सूत्र में बंध जांय।

स्वामी सत्यानन्द (मलाया)

मैं विचारों के आदान-प्रदान को बहुत गौर से सुन रहा था जो प्रथम प्रस्ताव के सम्बन्ध में चल रहा था। मैं विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का विद्यार्थी होने के नाते नम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि एक बहुत ही सूक्ष्म भेद पर प्रहार हुआ है। बुद्ध धर्म का विद्यार्थी होने के नाते-हीनयान और महायान सिद्धान्तों के अध्ययन के नाते मैं जानता हूँ कि बुद्ध हमेशा अपने को तथागत कहा करते थे जिसका अर्थ होता है कि जिसने सत्य को पा लिया है। हमलोग उपनिषद् और गीता में पाते हैं ब्रह्मको तत् कहा गया है या चरम सत्य। इसलिए मैं स्वयं अनुभव करता हूँ और जिन्होंने धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया है—बुद्ध और हिन्दू धर्मों और दर्शनों का, वे इस तथ्य पर आते हैं कि जहाँ तक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रश्न है उनमें कोई भेद नहीं है। इसलिए प्रस्ताव में 'चरम सत्य या ईश्वर' रखा जाय बनिस्बत कि जैसा अभी प्रस्ताव में है (चरम सत्य-ईश्वर)।

श्री रमाप्रसाद मुखर्जी (अध्यक्ष)

बहुत देर तक आलोचनाएँ हुईं। यह आज का नहीं, बल्कि धर्म का जो यह फर्क है उसीको लेकर यदि हम बहस करते रहे तो विश्वधर्म सम्मेलन के बदले यहाँ एक धर्म की ही बातें प्रारम्भ हो जायगी। ऐसे तो स्वामीजी ने कहा है कि संतरा को खोलने से भीतर पृथकत्व नजर आ जाता है। भीतर की विभिन्नता तो बहुत है। इसीसे जो प्रस्ताव हुआ है उसमें तीन संशोधन आये हैं—(१) चरम, सत्य और ईश्वर दोनों शब्दों को निकाल दिया जाय, (२) ईश्वर को निकाल दें और (३) चरम, सत्य या ईश्वर रखें—जिस धर्म से जो आ जाय उसको वे अपना मान लेंगे। इस पर मतगणना हुई है और जो इसके बाद का रूप है वह यह है कि सत्य के बाद ईश्वर का योग हुआ है प्रथम संशोधन स्वीकार नहीं हुआ।

चतुर्थ प्रस्ताव

श्री वान कादिर इस्माइल(मलाया)

प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि जैसा हम लोगों ने स्वीकार किया है कि धर्मों के मूलभूत सिद्धान्त विश्व-बन्धुत्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इसलिए उसीको क्रियान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि धर्मों के मूलभूत सिद्धान्तों और उपदेशों की शिक्षा विश्व के सभी राज्यों में सभी लोगों को अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। मुझे विश्वास है कि प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत होगा।

श्री स्वानन्द स्वामी (गंगोत्री)

हम लोग सभी भाई-भाई हैं। कभी भाई-भाई में भी झगड़ा हो जाता है। इससे यह प्रस्ताव बहुत ही सुन्दर है कि उनमें कभी झगड़ा हो ही नहीं। वेद में कहा है, अहिंसा, प्रेम और ब्रह्मचर्य को कर्मकाण्ड में प्रथम स्थान दिया जाय। मतलब कि इन्सान जैसा कर्म करेगा वैसा ही भोगेगा।

पहले मातृ भव, पितृ भव तब देवो भव। ईश्वर सारे संसार के पिता और सभी लोग परस्पर भाई-भाई हैं। उपासना में रख दिया कि परमात्मा पिता है। सभी उपासक भाई-भाई हैं। मतभेद के ऊपर वेद के ज्ञान काण्ड में कहा गया है कि आत्मा एक है। पर जिस प्रकार दाँत से कभी जिह्वा कट जाती है तो कोई दाँत को तोड़ नहीं डालता क्योंकि जिसका दाँत है उसीकी जिह्वा भी है। इसी प्रकार जब वेद ने एकात्मवाद रखा तो जिसका हिन्दू, उसीका मुसलमान, क्रिश्चियन आदि सभी हैं। जहाँ सार्वभौम आत्मा की सत्ता को माना जाता है वहाँ कोई भेद नहीं है।

प्रस्ताव सर्व सम्मति से निर्विरोध स्वीकृत हुआ।

तृतीय प्रस्ताव

श्री जशवन्त सिंह लोढ़ा :

भारतीय संस्कृति में अनादि काल में अहिंसा और प्रेम सन्निहित है। यहाँ के लोगों के लिए कोई नई चीज नहीं है। हमारे देश ने अहिंसा का मार्ग केवल वैयक्तिक, सामाजिक या पारिवारिक व्यवस्था में ही नही प्रतिपादित किया है बल्कि उसके द्वारा यहाँ राजनैतिक स्वतन्त्रता की भी प्राप्ति हुई है। इसलिए मैं चाहूँगा कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो।

श्री भालचन्द्र शर्मा :

मैं एक संशोधन रखना चाहता हूँ : इस प्रस्ताव में यह जोड़ दिया जाय कि "अहिंसा, बन्धुत्व और प्रेम के सिद्धान्तों के सहारे ही हम ईश्वर के साम्राज्य में पहुँच सकते है। महात्मा गांधी के जीवन से यह सिद्ध होता है कि अहिंसा के सिद्धान्त को भली प्रकार दैनिक जीवन में अपनाया जा सकता है वह चाहे व्यक्ति हो या अन्य सम्बन्धों से सम्बन्धित हो। भारत में अहिंसा की बहुत शोध हुई है और भविष्य में भी होगी। विगत ३० वर्षों में हमारे महात्मा गांधी ने अपने जीवन दर्शन से यह सिद्ध कर दिया है कि हम जीवन में अहिंसा को पूरे तौर से उतार सकते हैं।" हम लोगों ने जो नया सन्देश भारत को ही नहीं, बल्कि सारे संसार को दिया है वह संसार के लिए एक बड़ी चीज है। सारे पाश्चात्य देशों में महात्मा गांधी की अहिंसा की बहुत तारीफ हुई है। आज तक का इतिहास है कि हिंसा के बिना कहीं भी स्वराज्य हासिल नहीं किया जा सका लेकिन भारत ही है कि जहाँ अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त हुआ। विश्व के इतिहास में इतना महान् कार्य नहीं हुआ। आज भी उसे देखने के लिए विदेशों से लोग यहाँ आते हैं। यद्यपि लोग कहते हैं कि धर्म और राजनीति अलग है और राजनीति में धर्म का स्थान नहीं है, महात्मा गांधी ने यह सिद्ध कर दिया है, राजनीति में अहिंसा का बहुत बड़ा स्थान है और उससे राजनीति को बहुत ऊँचा उठाया जा सकता है।

श्री भूपराज जैन :

जो शर्माजी ने संशोधन उपस्थित किया है मैं उसका समर्थन करता हूँ क्योंकि ऐसा करने से हमारा काम सुचारु रूप से चल सकता है। महात्मा गांधी के जीवन का एक उदाहरण होगा। ऐसे महा-पुरुषों की बातें अच्छी लगती हैं। जो काम भगवान कृष्ण नहीं कर सके और पाण्डवों को पाँच गाँव नहीं दिला सके वह महात्म गांधी कर सके।

डा० हीरालाल चोपड़ा :

यह प्रस्ताव बहुत अच्छा है। इसमें संशोधन को जोड़ना प्रस्ताव को संकुचित करने के समान होगा। हमने किसी भी प्रस्ताव में किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं दिया है और यहाँ तक कि भगवान शब्द में भी आपत्ति हो रही थी। चूँकि यह सम्मेलन भारत में हो रहा है, इसलिए महात्मा गांधी का नाम लाना चाहते हैं। हम उन्हें राष्ट्रपिता और ज्योति का मुनारा भी मानते हैं और उनके जीवन से सबक भी लेना चाहते हे पर यह जरूरी नहीं कि हम उनका नाम यहाँ पर रखें। उनके नाम के बिना ही हम उनके नाम को और ऊँचा कर सकते है। यह जरूरी नहीं कि उनके नाम का लेबल, मोहर या छाप लग जाय। मैं भी उनका अनन्य भक्त हूँ और उनके जीवन से बहुत कुछ सीखा है परन्तु संसार के लोगों पर यह क्यों थोपा जाय। भगवान महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य का नाम नहीं लिया और ईश्वर शब्द भी डरते-डरते 'या' करके लिया अतः किसी भी व्यक्ति का नाम इसके भीतर न लायें और व्यक्तियों को अलग रखकर उसे व्यावहारिक रूप मे स्वीकृत कीजिये।

श्री भालचन्द्र शर्मा ने अपना संशोधन वापस ले लिया और प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

पांचवां प्रस्ताव

श्री जे० पी० शाह :

धर्म निरपेक्ष राज्य का माने धर्म विरोधी राज्य नहीं होता है। मानवजीवन के मूलभूत मूल्यांकन एवं उसकी आवश्यकता के लिए यह जरूरी है कि शिक्षा में धर्म के सिद्धान्तों को स्थान मिले।

श्री जशवन्त सिंह लोढ़ा :

अभी हाल मे अनेक विश्वविद्यालय के कुलपतियों की एक बैठक मे उन लोगों ने यह विचार प्रकट किया और यह अनुभव किया कि स्कूलों और कॉलेजों में धर्म की शिक्षा आवश्यक है। एक दूसरी समिति का भी गठन हुआ है जिसके अध्यक्ष श्री श्रीप्रकाश हैं। उन लोगों ने भी यह अनुभव किया है कि धर्म की शिक्षा आवश्यक है और उसे लागू करना चाहिए। इसलिए यह प्रस्ताव बहुत जरूरी है। लोगों को यह समझना चाहिए कि उन्हे धर्म की जानकारी और आचरण मे तदनुरूप व्यवहार होना चाहिए। इससे विश्व के सारे लोगों में बन्धुत्व की भावना का विकास होगा। इसलिए कृपया इस प्रस्ताव को स्वीकृत करें।

डा० मधुसूदन :

मैं इस प्रस्ताव की द्वितीय पंक्ति का विरोध करता हूँ। आप कृपया बतायें कि ऐसा कौन-सा धर्म है जो राज्य के विरोध की शिक्षा प्रदान करता है? आप सार्वभौम धर्मसिद्धान्तों या धर्म के मूल

ग्रन्थों को देखें। उदाहरण के लिए उपनिषद् गीता आदि में समस्त मानव जाति के लिए कुछ महानतम शिक्षायें हैं और समस्त मानव मात्र को प्रेम और बन्धुत्व में बाँधने की शिक्षायें भी हैं। तो फिर प्रस्ताव में इस पंक्ति की क्या आवश्यकता कि उसमें यह शब्द रहे कि यह आवश्यक है कि धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का, धर्म का और अधिक शुद्ध और उन्नत रूप क्या हो सकता है?

स्वामी सहजानन्द (केरल)

अभी जो कुछ भी हिन्दू धर्म, इस्लाम, क्रिश्चियन धर्म के बारे में कहा गया है वह ठीक नहीं है। वह सार्वभौम नहीं है। अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए हम लोग सभी मिल सकते हैं और ईश्वर की इच्छा की पूर्ति कर सकते हैं। साथ ही कृष्ण की शिक्षा को कि सभी जीव समान है, ईसा का प्रेम, बुद्ध की दया, जैन धर्म की मानवता की सेवा आदि को सभी धर्म के लोग आदर से मान सकते हैं और जीवन में उनका पालन कर सकते हैं और साथ ही अपने धर्मों पर भी टिके रह सकते हैं। इसलिए संशोधन को वापस लेना चाहिये।

संशोधन का कोई समर्थन नहीं हुआ और मूल प्रस्ताव जिस रूप में उपस्थित हुआ उसी रूप में स्वीकृत हुआ।

●

खुला • अधिवेशन •

७ फरवरी '६०

द्वितीय विश्वधर्म सम्मेलन का खुला अधिवेशन ७ फरवरी को रंजी स्टेडियम, कलकत्ता में आरंभ हुआ। कलकत्ता उच्चन्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्रीरमाप्रसाद मुखर्जी इस अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे थे। पावन प्रभात का कण-कण मुखरित हो रहा था। गुलाबी वातावरण और सूरज की सुनहली किरणों के बीच अधिवेशन आरम्भ हुआ।

स्वागत है!

•

मोहनलाल जालान

मोहनलाल जालान

आज द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन की कार्यवाही का छठा दिवस है, विगत पांच दिनोंमें सत्य, धर्म, वैराग्य, परमार्थ, अहिंसा, शांति, तप, त्याग आदि अनेक तथ्यपूर्ण विषयों पर विचार विनिमय हुआ और हमें अनेक विद्वानों एवं महापुरुषों के भाषण सुनने का सौभाग्य मिला, हमने कुछ सीखने का प्रयत्न भी किया है और भारतीयता के नाम पर कुछ देने की चेष्टा भी की है, आज का खुला अधिवेशन उन्ही महान धर्माचार्यों की वाणी को जन-समुदाय और जन-साधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया है, जिन तत्वों एवं सिद्धातों पर एक सीमित समुदाय में विवेचन हुआ था और जिस निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया गया था उसी को सूत्र रूप मे बृहद् समुदाय के सामने आज रखने का प्रयत्न किया जायेगा।

विचार में अपार शक्ति होती है, विचार से अधिक ठोस चीज ब्रह्माण्ड में नही है, वस्तुतः विचार ही वे साधन हैं जो सभ्यता को उठाते हैं, वे क्रान्तियाँ पैदा करते है, बहुत से बमों की अपेक्षा एक विचार में अधिक डाइनामाइट है, विश्व-धर्म-सम्मेलन का कुछ दिवसीय कार्यक्रम सद्विचार के विवेचन से हमारी भ्रांति दूर कर सकने में सहायक होगा; ऐसा हमारा विश्वास है। जैसा मैंने पिछली बार कहा था, ये धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जानेवाले विभिन्न मार्ग है, यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि हमारा लक्ष्य सुन्दर है, श्रेष्ठ है, किन्तु मार्ग की श्रेष्ठता रखने के लिए हमें मूल तत्वों और तथ्यों का विवेचन करना होगा, विवेक की कुँजी विद्या नहीं वरन् विवेचन शक्ति है, ज्ञान का प्रसार इस शक्ति

के द्वारा होता है और इसीके बल पर मानव में सद्-असद् का सम्यक् ज्ञान होता है, उपनिषदों में कहा गया है कि "उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान लो।" इसी ज्ञान की प्राप्ति के लिए हम लोग यहाँ एकत्रित हुए हैं।

अज्ञान से भेद भाव उत्पन्न होता है। वर्ण भेद, वर्ग भेद और मत भेद ही संघर्ष और हिंसा के प्रमुख कारण हैं। हम अपना मत एक-दूसरे के सामने प्रकट करने के स्थान पर जब लादने अथवा थोपने का प्रयास करते हैं तभी संघर्ष और उसके फलस्वरूप विध्वंस और विनाश होता है। आज हम अपने मत को एक-दूसरे के सामने रखकर समझने और सुलझाने का प्रयत्न करना चाहते हैं, विरोध के स्थान पर बन्धुत्व और संग्राम के बदले शांति की कामना करते हैं, आज के युग में जहाँ आयुधों की होड़ लगी है, मनुष्य की हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ जाग उठी हैं, हमें विनाश एवं विध्वंस से केवल आध्यात्मिक शक्तियाँ ही बचा सकती हैं। मेरा आपसे अनुरोध है कि सम्मेलन की कार्यवाही में जिस निष्कर्ष पर हम पहुँचे हैं उसे कार्यान्वित करने की हम सब प्रतिज्ञा करें जिससे आगामी सम्मेलन तक इसका कुछ साकार रूप हमें दिखाई देने लगे।

मैं स्वागत-समिति की ओर से उन सभी महानुभावों का आभारी हूँ, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस सम्मेलन को सफल बनाने में सहायक हुए हैं, हम उन विदेशी महापुरुषों के भी कृतज्ञ हैं, जिन्होंने यातायात और अन्य असुविधाओं को झेलते हुए भी हमारे बीच पधारने का कष्ट किया है, इस सम्मेलन के प्रेरक के रूप में हम मुनिवर श्री सुशील कुमारजी के भी चिर ऋणी हैं। मैं कलकत्ते के समस्त नागरिकों का भी उनके उत्साह और सहयोग के लिए आभारी हूँ।

●

सन्त कृपाल सिंहजी महाराज

यह सम्मेलन किसी एक समाज के प्रतिनिधित्व का नहीं है। खुशकिस्मती से मुझे एक ऐसे व्यक्ति मिले जो जाहिर तौर पर तो जैन समाज का लेबल लगाये हैं पर विचार, भाव आदि में वे सभी समाजों के हैं। आपको पता है कि इन्सान सबसे पुराना है और समाजें पीछे से बनीं। जब-जब महापुरुष आये तो समाजें बनीं। उसका उद्देश्य था आत्मतत्त्व की पहचान और जीवन आधार का पता पाना। ५०० वर्ष पहले सिक्ख नहीं थे, वे गुरु नानक से शुरू हुए, १३-१४ सौ साल पहले मुसलमानों का राज्य नहीं था, २ हजार वर्षों के पहले ईसा के अनुयायियों का पता नहीं था और इसी प्रकार ५-६ हजार वर्ष पहले जैन मत और बुद्ध मत नहीं था। जब-जब महापुरुष आये उन्होंने बाहरी और भीतरी लिहाज से मनुष्य के दो पहलू पेश किये। बाहरी पहलू से मजहब बनाने का जो आदर्श है वह यह कि इन्सान का जीवन बड़े भाग्य से मिला है, तो यह जीवन-यात्रा सुख से बीते और यह सार्थक हो तथा इन्सान के काम आए। दूसरा अन्तर का पहलू है जिससे वह अपने अन्तर को जान सके कि जिससे यह पुतला चल रहा है। अन्तर हृदय सभी आदमियों का एक है, वह

चेतन स्वरूप आत्मा है। परमात्मा की ओर से उन्होंने कहा कि सभी आत्मा एक है यद्यपि बाहरी लिहाज से वे अलग-अलग बने हैं। सभी के एक जैसे कान, नाक, हाथ, पाँव आदि बाहरी बनावट है और परमात्मा ने सभी को एक जैसे उसूल दिये। इसलिए प्रेम पेश किया। जहाँ प्रेम है, वहाँ अहिंसा है। दोनों एक-दूसरे से अविच्छिन्न हैं। सभी महापुरुषों ने एक ही उसूल पेश किया कि प्रेम करो, उससे परमात्मा मिलेगा। परमात्मा भी चेतन स्वरूप है। अपने-आप का विश्लेषण करो। आत्मा और परमात्मा को भी प्रेम स्वरूप कहा गया। उन तक पहुँचने के लिए कहा गया—"सांच कहूँ सुन लियो सबै, जिन प्रेम कियो, तिनहीं सब पायो।" ईशा ने कहा कि जो अपने भाइयों से प्रेम करते हैं, ईश्वर से वहाँ प्रेम करते हैं और जो भाइयों से घृणा करते हैं, वे सभी झूठे हैं। तो प्रेम या अहिंसा जो कहो एक ही के दो पहलू हैं। उसके बिना सुख से जीना मुश्किल है। सभी धर्म वालों ने उस धर्म के लिहाज से उसी पहलू को पेश किया।

अंतर ज्ञान

●

महापुरुष सभी समाजों मे आये। यदि यह कहा जाय कि महापुरुष किसी एक ही विशेष समाज में आए तो गलत होगा। जब-जब जहाँ भी महापुरुष आए अपने अन्तर को जानने का सन्देश दिया। इसलिए अपने को जानना बहुत जरूरी है। इस शरीर में जो चेतन स्वरूप आत्मा है उसको जानना है कि उसकी जाति क्या है। मजहब के लिहाज से हम मुख्तलिफ मजहबों के लेबुल लगाये हैं। मुबारक है, चाहे जिस किसी समाज में रहो पर इतने ऊँचे चढ़ जाओ कि सारे मनुष्य की एक ही जाति है। अपने-अपने मुख्तलिफ मजहबों के उदाहरण और उद्धरण पेश करके लोगों ने इसी सत्य को सिद्ध किया है।

दूसरा पहलू यह है कि यह जो चेतन स्वरूप आत्मा है, उसकी जाति के लिहाज से आप सभी एक हैं। उसका कोई नाम नहीं है। महात्माओं ने मुख्तलिफ नाम रखे हैं। हम नामों पर कुर्बान हैं। किसी ने कहा सत्य ईश्वर है, सत्य केवल एक है और महात्माओं ने उसे विभिन्न प्रकार से कहा है। उसे किसीने अल्ला, किसीने राम या और नामों से कहा। परन्तु हम सभी उसीके पुजारी हैं जिस चरम सत्य और वास्तविकता को मुख्तलिफ महात्माओं ने अलग-अलग नामों से पेश किया। उसीको पाने के लिए हम मुख्तलिफ समाजों में दाखिल हुए हैं। उसीको पाने के लिए ये विभिन्न समाजे स्कूल या कॉलेज हैं जिनमें इसलिए दाखिल हुए कि जीवन-यात्रा सुख से बीते और हम जीवनाधार को पा सकें। इस शरीर से जुदा होने पर कौन-सी जात रह जाती है? महापुरुषों ने बयान किया है कि एक ही हकी जलवागर सभी में है। अपने-अपने निजी खयाल पेश करने पर भेद इसलिए कि उचित ज्ञान का अभाव होता है। मैं किसी एक समाज की हैसियत से नहीं पेश कर रहा हूँ। सभी समाजों के सामने स्वयं और प्रभु को जानने का आदर्श है तथा यह जीवन सुख से बीते। पर आज की क्या दशा है? यदि वे महापुरुष फिर से आ जायें तो देखकर वे यही कहेंगे कि मेरे ही अनुयायी मेरे उपदेशों पर नहीं चल रहे हैं। सभी ने यही कहा कि ऐ इन्सान प्रेम और अहिंसा से काम करो। अहिंसा सबकी जान है। आज जमाना बदल रहा है, उसका कारण क्या है?

●

जो अपरा विद्या की प्रारम्भिक बातें हैं उनके उद्देश्य बहुत अच्छे हैं। पोथियों आदि को पढ़ने की महापुरुषों ने क्यों तालीम दी? हमने क्या किया? केवल तोते के रटने से काम नहीं चलेगा। उससे नहीं पढ़ना ही अच्छा है। जरूरत है कि तालीम को समझो और उसे जीवन का हिस्सा बनाओ। पोथियों को पढ़ने आदि से यही पता चलता है कि महापुरुषों ने क्या रास्ता बताया है। रस्म-रिवाजों का भी उद्देश्य एक यही था जो विभिन्न स्थान आदि के भेदों से विभिन्न समाजों में बदल गये। उदाहरण के लिए सिक्खों के बीच जाँय तो शिर ढंककर गुरुद्वारे में जाने की प्रथा, गिरिजा में जायं तो क्रिश्चियनों के यहाँ शिर खोलकर जाने की प्रथा। पर यदि उद्देश्य की ओर ध्यान दें तो सभी में एक है। अरब में पानी की कमी है तो वजू कर लो, जहाँ पानी और भी कम हो, तो मिट्टी से सफाई करने की प्रथा और जहाँ पानी अधिक है तो बिना स्नान के पूजा नहीं। मतलब सभी का एक ही है कि चैतन्य होकर बैठो। अन्तर तो एक है, वहाँ भेद कहाँ है?

हर व्यक्ति ने जिस्म का एक पुतला पाया है पर १०, २०, ३० या उससे अधिक उम्र हो जाने पर भी यह पता नहीं कि यह जिस्म क्या है? उसके सँवारने और ठीक रखने के बारे में बहुत जाना पर यह नहीं जाना कि उसका बनानेवाला कौन है और वह कौन-सी शक्ति है जो इसमें कैद है और ९ दरवाजों के रहने पर भी नहीं निकलती या निकलती तो पता नहीं किस रास्ते से निकल जाती है? उसे चरम सत्य या वास्तविकता कहते हैं। उसे महापुरुषों ने अपने-अपने तरीके से किसी ने परमात्मा कहा, किसीने अल्ला कहा या और कुछ कहा। यह जो प्रारम्भिक तरीके बनाये गये थे उनके उद्देश्य बहुत ऊँचे थे। परन्तु हम सिर्फ लकीर के फकीर बन गये—प्रजा हो गयी पर यह पता नहीं कि किसकी प्रजा हुई? आज जमाना बदल रहा है और लोग पूछते हैं कि इनसे क्या लाभ है? पर प्रारम्भिक कदमों की भी जरूरत है और अगर नहीं है तो बस केवल खाओ, पीओ और मौज करो। ठीक तो यह है कि किसी समाज में रहो, उसके उद्देश्यों को जानो, अपने-आपको जानो, अपने जीवन आधार को जानो, चाहे जिस नाम से भी जानो। जिस नाम से भी उसकी याद करोगे, वह दर्शन देगा। विचारने की जरूरत है कि हम कहाँ बैठे हैं, क्या सोच रहे हैं, क्या हो रहा है? आदि मुनिजी ने सोचा और यह सम्मेलन का रूप प्रस्तुत हुआ। जरूरत इस बात की है, इस हकीकत को पेश करने के लिए विश्लेषण करने की जरूरत है और उसे आपको जानना है। अमेरिका में मुझसे पूछा गया कि आपने सत्य को बहुत ही सरल तरीके से पेश किया है तो यह इतना कठिन क्यों बना है। मैंने उत्तर दिया कि जिन्हें सत्य का दर्शन नहीं हुआ है वे इधर-उधर निरर्थक भटकते और डन्डे पीटते रहे हैं और उनकी व्याख्याएँ समझने में बहुत ही कठिन हैं। समझने की तो जरूरत यह है कि मनुष्य की जात एक है। हरएक समाज मुबारक परन्तु उचित ज्ञान की जरूरत है। पर जो लेबल से ऊपर नहीं उठा वह क्या पेश कर सकेगा। वे महापुरुष जिन्हें रोशनी मिली है, हमेशा कहते रहे हैं। इतिहास है कि पहले भी महापुरुष आपस में मिला करते थे। यह सम्मेलन कोई नई चीज नहीं है। यहाँ वेदव्यास के जरथुस्त्र से मिलने की बात बतायी जाती है, तुलसीदास के बारे में भी बाहर जाने की बात कही जाती है। वैज्ञानिकों, डाक्टरों आदि की तरह आत्मवेत्ताओं के भी सम्मेलन होते रहे हैं पर आज हम एक-दूसरे से मिलना और एक-दूसरे को समझने की कोशिश करना भूल गये। हम केवल अपने-आप को ही सबसे ऊँचा समझने लगे। वास्तव में ऊँचे सभी

है परन्तु हम लकीर के फकीर बनकर संकुचित हो गये हैं नहीं तो हम सभी तो एक ही हकीकत के पुजारी है। सभी इन्सान एक हैं। सभी प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भी अपनी-अपनी धर्म पुस्तकों से इसी सत्य को पेश किया है।

सब धर्म एक हैं

•

डा० रमाप्रसाद मुखर्जी (अध्यक्ष)

हम सभी इस विश्वधर्म-सम्मेलन के आयोजकों के प्रति और विशेषकर उसके प्रेरक मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज के बहुत ही कृतज्ञ हैं कि उन्होंने निकट एवं दूर के विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों को एक मंच पर मिलने का अवसर प्रदान किया है।

डॉ० मुखर्जी

सभी दृष्टियों से दिल्ली का सम्मेलन बहुत ही सफल रहा। इसने सभी वर्गों के लोगों में धर्म, सहिष्णुता, प्रेम एवं सत्य के आदर्शों को प्रसारित करने की भावना को जगाया। यह बहुत ही सुन्दर सुयोग है कि इसका द्वितीय अधिवेशन बंगाल में हो रहा है, जो श्री चैतन्यदेव, श्री रामकृष्ण परमहंस और श्री अरविन्द की जन्मभूमि है। फिर यह स्मरण दिलाने की मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता कि बंगाल के अन्य दो महान पुत्रों—स्वामी विवेकानन्द और राजा राममोहन राय का जीवन के नैतिक मूल्यों के विकास में क्या योगदान रहा है!

इस अधिवेशन के लिए निर्धारित विचारणीय विषय हैं—निरस्त्रीकरण एवं विश्व-शान्ति के लिए आधार के रूप में अहिंसा, विश्वबन्धुत्व के लिए धर्म की आवश्यकता तथा धर्म और विज्ञान! मैं संक्षेप में इन्हीं विषयों से सम्बन्धित कुछ आधारभूत तथ्यों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा।

इस संसार में मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। मनुष्य की तीन प्रमुख आवश्यकताएँ हैं—शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। राज-नेता एवं सामाजिक नेता उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लेखकों की कृतियाँ—साहित्यिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक सुविधाएँ बहुत हद तक मनुष्य की मानसिक एवं भौतिक भोजन की पूर्ति करते हैं। आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति केवल बहिर्दृष्टि की तुलना में मन की अन्तर दृष्टि से ही हो सकती है।

भौतिक प्यास

जब मनुष्य स्वार्थपरक विचारों से प्रभावित होता है, तो वह सदा अच्छा भोजन, सुखद निवास, अधिकाधिक शक्ति, पद एवं धन के संचय की संभावनाओं की खोज करता है और उसे अपनी जाति के लिए चिरस्थायी बनाने का प्रयास करता है। परन्तु इन भौतिक आवश्यकताओं एवं सुखों के परे एक रहस्यात्मक क्षेत्र है, जो भौतिक विषयों की दासता को स्वीकार नहीं करता है। उसे क्षेत्र के चारों ओर जो रहस्य का आवरण है, वह अनेक प्रश्नों और समस्याओं को जन्म देता रहा है और जो उन साधु, सन्त और महात्माओं को भी चकमे में डालता रहा है, जो शास्वत सत्य और आध्यात्मिक सत्य की खोज में लगे रहते आये हैं।

धर्म अनुभव की वस्तु है। यह निद्रा से जाग्रतावस्था की प्राप्ति नहीं है, बल्कि अपने स्व का विकास एवं परिवर्तन है। यह बुद्धि के विकास-क्रम में एक नयी कड़ी नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक धरातल पर अपने व्यक्तित्व का उत्कर्ष है। यह ब्रह्मदर्शन है, जिससे सत्य का दर्शन और विश्व तत्वों का साक्षात् ज्ञान होता है। हम लोग उसकी आराधना नहीं करते हैं, जिसे समझ सकते हैं; बल्कि उसकी आराधना करते हैं, जिसे समझ नहीं सकते। वह सत्य का अनजाना भण्डार है, जहाँ बुद्धि नहीं पहुँच सकती। सभी धर्मों में एक रहस्यात्मकता है, जिसकी व्याख्या व्याकरण या तर्क के द्वारा सम्भव नहीं है। वास्तविक धार्मिक अनुभव को स्पष्टता, सरलता, शुद्धता एवं आनन्द की संज्ञा देते हैं। इसमें वास्तविकता की शक्ति एवं दबाव का अनुभव होता है। यह एक आध्यात्मिक खोज है, निर्माण नहीं। जिसे अनुभव होता है वह ईश्वर की उपस्थिति और सत्ता का अनुभव करता है। आनन्द के प्रकाश-पुंज के पारावार में उसके सत्ता सम्बन्धी क्षुद्र विचार डूब जाते हैं।

वीभत्स धर्म

दूसरी ओर मनुष्य जब रूढ़ियों और सत्ता निजी एवं भौतिक सुखों की प्यास से ग्रसित हो जाता है, तो उसमें आर्थिक, राजनीतिक स्थिति का उद्भव होता है। इस परिस्थिति में वह स्वार्थी और उत्पीड़क बन जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि धर्म के नाम पर अनेक काण्ड हुए हैं, जिसके बारे में कोई बहस नहीं की जा सकती। क्या हम लोग नहीं जानते कि धर्म के नाम पर युद्ध लड़े गये, जिनमें निरीह निर्दोष लोगों का खून बहाया गया? इस प्रकार मनुष्य मनुष्य का शत्रु बन जाता है। हम लोग इसे किस प्रकार भूल सकते हैं कि जेरुसलम में ईसा की मजार पर खून की नदियाँ बहीं? एक मजार की रक्षा के लिए अनेक कब्रों का निर्माण किया गया। क्या यह धार्मिक आदर्शों की विडम्बना नहीं है? हत्याएँ, बलात्कार आदि काण्ड एक ऐसे महापुरुष के नाम पर किया गया, जो स्वयं शांति-पुत्र था और जिसने आजीवन इस बात का उपदेश दिया कि यदि कोई एक गाल पर चपत लगाये तो उस ओर दूसरा गाल कर दो, परन्तु प्रतिशोध की भावना मत लाओ। क्या अरब के मुसलमानों ने पवित्र कुरान में स्पष्ट शब्दों में इस उपदेश के बाद भी कि–'धर्म में कोई जोर, दबाव और हिंसा नहीं होनी चाहिए', गैरमुस्लिम जगत् में भयंकर ताण्डव नहीं मचाया, जुल्म नहीं

ढाये और वह सभी अपने विशिष्ट धर्म एवं विश्वासों के प्रचार के धार्मिक पागलपन एवं उन्माद में आकर क्या हम लोग बार-बार की उन घटनाओं से भिज्ञ नहीं हैं, जिसमें कि पवित्र मन्दिरों, पूजा-स्थलों का विनाश किया गया ? क्य हम यह नहीं जानते हैं कि केवल किसी दूसरे धर्म को वहाँ पर प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से और एक धर्म को बलपूर्वक हटाकर लोगों पर दूसरा धर्म लादा गया ?

भारत-विभाजन के समय में क्या धर्म को एकदम निम्न स्तर पर नहीं घसीटा गया ? धार्मिक आदर्शों के प्रचार के नाम पर हम लोगों ने खून की होली खेली। मकानों, ग्रामों और शहरों को अग्नि की लपेट में जलते तथा शान्तिपूर्ण नागरिकों की लूट तथा अपने सतीत्व की रक्षा में नारियों को स्वेच्छा से जीवन का उत्सर्ग करते हुए देखा है। स्त्रियों और बच्चों की निर्मम हत्याएँ की गयीं और लोगों पर वर्णनातीत कहर ढाये गये, अनगिनत लोगों को उनकी बपौती, घर-द्वार छोड़कर दूसरे स्थलों में शरण ग्रहण करने के लिए खदेड़ा गया।

ये सभी घटनाएँ इस कारण से घटीं कि जो अधिक शक्तिशाली एवं सत्ता में था, उसने अपने ही धर्म को सर्वोत्तम एवं सच्चा माना और अन्य सभी धर्मों को झूठा एवं मन की कोरी कल्पना समझा। इस प्रकार के दृष्टिकोण समाज में अशान्ति, शंका, द्वेष, दुर्भावना, वर्ग-विद्वेष आदि को जन्म देकर जीवन को नितान्त असहनीय बना डालते हैं। क्या यह उन सन्त महात्माओं के उपदेशों की विडम्बना नहीं है, जिन्हें ये आततायी स्वयं शिर पर चढ़ाते हैं ? इस प्रकार धर्म जो जीवन की प्रताड़नाओं से व्यथित लोगों को शान्ति प्रदान करने के लिए था, उनकी यन्त्रणाओं, निराशाओं एवं क्लेष का साधन बन गया।

इसमें आश्चर्य नहीं कि इस प्रकार की घटनाओं से धर्म के महत्त्व एवं आशाओं के प्रति लोगों के विश्वासों को ठेस लगती है। इस प्रकार की घटनाएँ धर्म एवं सच्चाई के मार्ग को अवरुद्ध करती हैं। हालांकि इससे यह भी सिद्ध नहीं होता है कि धर्म असफल रहा है और मनुष्य सत्य एवं प्रेम पर विश्वास नहीं कर सकता है।

ऐसा क्यों ?

●

प्रथम विश्वयुद्ध से प्रताड़ित विश्व ने अर्थनीति एवं राजनीति की आधार-शिला पर राष्ट्र-परिषद् को जन्म दिया, परन्तु थोड़े ही समय में इस परिषद् की आधार-शिला के उद्देश्य अस्थिर एवं कमजोर सिद्ध हुए। पर ऐसा क्यों हुआ ? इसका कारण यह था कि इसके पीछे कोई मानवीयता या धर्म का समन्वयात्मक बन्धन नहीं था। सफलता के मद में उन्मत्त, जो भौतिक उत्कर्ष पर आधारित था, राष्ट्रों ने अपने पड़ोसी राज्यों पर हुकूमत करना चाहा और इसमें धर्म एवं सहिष्णुता की भावना का अभाव था। अपनी सीमाओं के विस्तार पर कटिबद्ध लोगों के नेतृत्ववाले देशों ने अपने से कमजोर पड़ोसी देशों पर आक्रमण किया और अपने कार्यों के औचित्य को मनोनुकूल धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों का प्रसंग उपस्थित कर सिद्ध करने का प्रयास किया। द्वितीय विश्वयुद्ध ने उन देशों को आबद्ध कर लिया, जो अपने को सुसंस्कृत एवं सभ्य होने का दावा करते थे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के नाम पर संहार एवं विनाश का साम्राज्य सारी पृथ्वी पर छा गया। इस युद्ध की समाप्ति पर संयुक्त

राष्ट्र-संघ का जन्म हुआ। इसके बाद भी कोरिया, हिन्दचीन, मिश्र, हंगरी और तिब्बत की घटनाएँ आँखों की पट्टी को खोलनेवाली हैं। अब इसे स्वीकार किया जाता है कि एक मानव-परिवार एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना के विकास के लिए, किसी संस्था को जीवित रखने के लिए केवल राजनीतिक उसूल ही काफी नहीं हैं। इस विचार के कारण यूनेस्को तथा तत्प्रकार की अन्य संस्थाओं का जन्म कम विकसित, पिछड़े या कम प्रगतिशील देशों और लोगों की सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों की उन्नति के लिए हुआ।

समन्वय-मंच

●

यदि सभी लोगों को एक विशाल परिवार के सदस्य की तरह रहना है, तो वह एक समन्वयात्मक मंच से ही सम्भव है और यह मंच प्रभावी एवं सफल तभी होगा, जब वह एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक मंच होगा। हम लोग विभिन्न देशों और उनके लोगों की संस्कृतियों एवं धर्मों की विविधताओं से आँखें नहीं मूँद लेते हैं। पर ये भिन्नताएँ विश्वबन्धुत्व की भावना के विकास में किसी प्रकार से बाधक नहीं होंगी। विशाल भारत उपमहादेश के लम्बे इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालने से मालूम होगा कि यहाँ किस प्रकार समन्वय का विकास हुआ। अतीत काल से ऋषि एवं दार्शनिक विपरीत मार्गों, मान्यताओं, विश्वासों के बाद भी एकता की स्थापना में सक्षम एवं सफल रहे हैं।

मैं धार्मिक रूढ़ियों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ और न धर्म के कर्मकाण्डीय विभिन्नताओं की, जैसा कि विभिन्न देशों के विभिन्न कोटि के लोगों में दृष्टिगोचर होता है, बल्कि मैं उन सर्वतोभद्र सिद्धान्तों की चर्चा करता हूँ, जो सभी संस्कृतियों एवं धर्मों में विद्यमान हैं। अविकसित देशों के लोगों को निस्सन्देह रूप से एक ऊंचे जीवन-स्तर पर लाना है, जिससे सभी एक परिवार के सदस्य बन सकें। परन्तु इसे साकार करने के लिए और लोगों में विश्वबन्धुत्व की एक भावना को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि वे सभी एक ऐसे समन्वयात्मक धर्मसूत्र में आबद्ध हों, जो सभी धर्मों में समान हो।

सरोजिनी नायडू ने एक बार कहा था—"यह धर्म-संसद की बैठक विभिन्न धर्मों, मान्यताओं और विश्वासों के विभेदों की खोज के लिए नहीं हो रही है, बल्कि यह उनको एक सूत्र में आबद्ध करने के लिए उस समन्वयात्मक सूत्र के छोर को खोजने के लिए हुई है। मूल उद्गम, पृथ्वी की गहराई से जलस्रोत फूटता है, पर वह अनेक धाराओं, अनेक नदियों एवं उसकी सहायिकाओं से होकर बहता है। पृथ्वी के गर्भ से वे बीज, जो अनेक अन्य बीजों को जन्म देते हैं, एक छोटे पौधे के रूप में उगते हैं, और उसमें अनेक शाखाएं लगती हैं। इनमें कुछ नीचे को झुक जाती हैं, कुछ सीधे आकाश की ओर जाती हैं, कुछ टेढ़ी-मेढी होती हैं, कुछ सीधी होती हैं। वे सभी शाखाओं को, जो नीचे की ओर जाकर थके पथिकों को छाया प्रदान करती हैं या जो ऊपर की ओर जाती हैं, उनको भी भोजन एक ही मूल से प्राप्त होता है। क्या कोई शाखा अपने को भिन्न होने की बात कह सकती है? सभी में फूल समान लगते हैं, सभी में रसप्रवाह भी एक ही होता है और वसन्त ऋतु किसी भी शाखा के प्रति भिन्न आचरण नहीं करती। वह सीधी शाखाओं को यह नहीं कहती कि देखो, मैं सारा

सौन्दर्य तुम्हें ही दे रही हूँ और अन्य शाखाओं को नहीं दे रही हूँ। इसी प्रकार हम लोग कहते हैं कि सभी मत, विश्वास, धर्म के उद्गम एक हैं और वह मानवता की भावना है।"

मैं यह नहीं कहता कि वह ईश्वर से प्राप्त होता है। मैं यह भी नहीं कहता कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया। मैं यह कहता हूँ कि मनुष्य अपनी उत्कट आवश्यकताओं में ईश्वर की सृष्टि प्रतिदिन करता है। आखिर हमारी वैयक्तिक चेतना के सिवाय ईश्वर है क्या? सौन्दर्य, सत्य, प्रेम, साहस एवं बुद्धि की अपनी आवश्यकताओं के मूर्त रूप के सिवाय ईश्वर क्या है?

विस्मृति

•

धर्मों के बीच इस प्रकार की आधारभूत एकता को लोग भूल गये हैं। उन्हीं एकमात्र उपायों को जिससे मनुष्य अपनी आत्मा को स्वतंत्र कर सकता है, आज भूल गया है। ऐसी स्थिति में उन बन्धनों को तोड़ना दुष्कर हो जाता है। विस्मृतिवश जो बन्धन आध्यात्मिक रूप धारण कर लेते हैं, वे कारागार बन जाते हैं, जिनमें मनुष्य की आत्मा अपने निजी भ्रम के वशीभूत होकर कैद हो जाती है।

प्रत्येक बच्चा अपनी माँ को ही सर्वश्रेष्ठ समझता है, परन्तु वह भी दूसरे बच्चों को इसके लिए बाध्य नहीं करता कि उसीकी माँ को सभी अपनी माँ स्वीकार करें। इतनी बुद्धि बच्चों में भी होती है। यदि यही बुद्धिमत्ता विभिन्न धर्मों के अनुयायी भी दिखाये और दूसरों को अपने धर्मों का परित्याग कर किसी एक विशेष धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं करें, तो सभी संघर्ष दूर हो जायँ।

मेरा उद्देश्य समस्त मानवों के लिए एक ही सर्वसम्मत मन्दिर, मस्जिद या गिरिजाघर की स्थापना के पक्ष का समर्थन करना नहीं है और न पूजा, वन्दन, इबादत का कोई एक ही सार्वभौम प्रकार उपस्थित किया जाय। धर्म काव्य की तरह केवल एक विचार ही नहीं है, यह एक अभिव्यक्ति है। ईश्वर की अभिव्यक्ति सृष्टि की विविधताओं में विद्यमान है और उस असीम के प्रति हमारी धारणाओं की अभिव्यक्ति भी व्यक्तित्व की अनन्त विविधता से युक्त होगी। मैं जिस बात को उपस्थापित करना चाहता हूँ, वह उस उपेक्षित सत्य की जीवित स्वीकारोक्ति की है कि धर्म का आधार मनुष्य के स्वभाव की सत्यता तथा उसकी विश्वव्यापी आवश्यकता में है, इसलिए इसकी परीक्षा सदैव होते रहना आवश्यक है।

कबीर ने इस विचार को बड़ी ही सरल एवं सारगर्भित भाषा में अभिव्यक्त किया है—

"रत्न कीचड़ में खो गया है और सभी इसकी खोज कर रहे हैं। कोई पूर्व में उसे ढूँढ़ता है और कोई पश्चिम में। कोई जल में खोजता है और कोई पत्थर में, परन्तु दास कबीर ने इन सही मूल्यों को पहचाना है और बहुत सावधानी से छिपा कर इसे अपने हृदय के अन्तर में रख छोड़ा है।"

सर्वसम्मत धार्मिक आदर्शों एवं सिद्धान्तों पर आधारित विश्व-बन्धुत्व तभी सम्भव हो सकता है, जब हम कबीर के इस दृष्टिकोण का विकास अपने में करते हैं।

जीवन-निर्माण

श्री जपजी साहब (३८) में इस विचार को इन शब्दों में उपस्थित किया गया है :—

"आत्मदमन को लक्ष्य बना कर धैर्य को स्वर्णकार बनाओ, बुद्धि और विवेक को घन और जिस पर सोने को पीटा जाता है, उस तरह का बनाओ और ज्ञान के हथियार से जीवन-रूपी स्वर्णाभूषण का निर्माण करो। ईश्वर का भय तुम्हारा हथौड़ा हो और तपस्या की अग्नि हो, श्रद्धा की धौंकनी हो और उसमें भगवान् के नाम का तरल अमृत हो। इस ईश्वरी मुद्रा-निर्माण के कारखाने में सत्य नाम का सिक्का तैयार करो। यह उन्हींके लिए सम्भव हो सकता है, जिन पर ईश्वर की कृपा होती है। श्री नानक! वे भाग्यवान् हैं और शांति में निवास करते हैं।"

जिन नियमों के द्वारा इस सृष्टि का संचालन हो रहा है उन्हें वे सभी लोग स्वीकार करते हैं, जिन्होंने भी इस पर विचारा है यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति विभिन्न भाषाओं में हुई है।

ऋग्वेद में इसे 'ऋत' कहते हैं, भगवद्गीता में इसे 'नीति' एवं 'परिवर्तित चक्र' कहते हैं। बुद्ध धर्म में इसे 'धर्म-चक्र' कहते हैं, जिनमें कर्म-नियम, उतुनियम, बीजनीयम, चित्तनियम एवं धर्म-नियम सन्निहित हैं। ईसा से १००० वर्ष पूर्व चीन के दार्शनिकों ने सृष्टि के नियमों को 'यॉंग और यिन' कहा तथा उसके ७०० वर्ष बाद एक दूसरे चीनी दार्शनिक ने 'ची' कहा, जिसका अर्थ स्वर्ग की प्रमुख शक्ति है। ईरान के लोग इसे 'असाह' या अर्ता कहते हैं। रोमनों में 'रतुम' या 'रेसियो' तथा अगस्टाइन के 'पेक्स' का यही अर्थ है।

ताओ (जापान एवं चीन का धर्म) के अनुसार इसे ताओ का मार्ग कहते हैं। यही नागार्जुन का धर्मकार्य और अश्वघोष का भूततत्त्व है।

प्लेटो ने इसे 'यूनिवर्सल्स' कहा और पश्चिम के स्टोइक दार्शनिकों ने इसे 'लोगोस' कहा। हेब्रू ने इसे 'इन्टलेक्ट ऑफ गॉड' (ईश्वर का ज्ञान) और स्पीनोजा ने 'नैचुरा नयुरा' कहा तथा शेली ने इसे क्रियात्मक शक्ति और बर्गसन ने 'एलान वायटल' कहा। ब्रैडले कहता है कि सृष्टि की इन विभिन्नताओं मे हमने पूर्ण शान्ति एवं व्यवस्था का विरोधी सारे संसार में कुछ नहीं पाया। हम लोगों को कहीं भी विरोधी तत्त्व का कोई चिह्न नहीं मिलता है।

धर्म और विज्ञान

बहुत लोगों की ऐसी धारणा है कि धर्म और विज्ञान परस्पर एक-दूसरे के विरोधी हैं, परन्तु यह पूर्ण रूप से असत्य है। वैज्ञानिक खोज धार्मिक या दार्शनिक तथ्यों की विरोधी नहीं हैं, बल्कि वे दोनों अभिन्न रूप से एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। संसार के कुछ महान वैज्ञानिकों ने धर्म की आवश्यकता एवं महत्त्व पर जोर दिया है। मैं कुछ महान वैज्ञानिकों के विचारों को उन्हींके शब्दों में उपस्थित करता हूँ :

फ्रायड कहता है—"मेरे लिए यह आश्चर्य प्रतीत होता है कि हम लोगों की वर्तमान शिक्षा-पद्धति ईश्वर की कृतियों की शिक्षा के अध्ययन के बदले मानवीय कृतियों के अध्ययन पर आधारित है।"

सर आइजक न्यूटन ने कहा--"मैं यह नहीं जानता कि संसार के लोगों को मैं कैसा प्रतीत होता हूँ, परन्तु जहाँ तक मैं अपने को समझता हूँ, मेरी स्थिति केवल समुद्र-तट पर खेलते हुए एक बच्चे के समान है। मैं कभी किसी साधारण पत्थर के टुकड़े से अधिक चिकने और सुन्दर टुकड़े की खोज में अपने को उलझाय रहा, जहाँ मेरी आँखों के सामने सत्य का विशाल महासागर अछूता पड़ा है।"

थौमसन, जो अर्वाचीन भूत विज्ञानवेत्ताओं में महान माना जाता है, ने अपने विचारों को इन शब्दों में प्रकट किया है---"जैसे-जैसे एक चोटी के बाद दूसरी चोटी का हम पता लगाते जाते हैं, हम लोगों को लगता है कि अभी भी रहस्य और सौन्दर्य से पूर्ण एक विशाल क्षेत्र सामने पड़ा है, परन्तु हम लोग अपने लक्ष्य या क्षितिज को नहीं देख पाते हैं। हम लोगों को ऐसा ही प्रतीत होता है कि अभी-अभी इससे भी ऊँची चोटियाँ हैं, जिनमें और भी अधिक ज्ञान एवं सम्भावनाएँ भरी हैं। ये सभी उस भावना को बल देती हैं, जिसकी सत्यता विज्ञान की प्रत्येक प्रगति से सिद्ध होती है कि ईश्वर की कृतियाँ महान हैं।"

मैं इस विषय को सर जेम्स जीन्स के उद्धारण से समाप्त करता हूँ, जो एक महान ज्योतिषी हैं, जिन्होंने इस प्रश्न का विश्लेषण निम्न प्रकार किया है।

आधुनिक भूत-वैज्ञानिक का दृष्टिकोण विश्व के समस्त भूत तत्त्वों को तरंगों के रूप में देखने का है, जो (बौटल्ड वेव्स) बन्द तरंग हैं, वे पदार्थ कहे जाते है और जो खुले हैं उन्हे, गति या प्रकाश कहा जाता है। ऐसा कहना कम-से-कम सुरक्षित है कि गत कुछ वर्षों में ज्ञान-स्रोत के प्रवाह में काफी तीक्ष्ण मोड़ आये हैं। तीस वर्ष पूर्व हम लोगों की धारणा थी कि हम लोग यान्त्रिक प्रकार की चरम सत्यता की प्राप्ति की ओर द्रुत गति से अग्रसर हो रहे हैं, जिसमें ऐसा प्रतीत होता था कि अनन्त मिश्रित-अणुपरमाणु भरे पड़े हैं और एक समय निरर्थक परिणाम-निरुद्देश्य अंध शक्तियों के आधीन होकर उत्पन्न कर सकते हैं और अन्त में मृत संसार के निर्माण के लिए शांत हो सकते हैं। इस पूर्णतया यान्त्रिक संसार में उसी अंध शक्ति के जीवन-चक्र का व्यतिक्रम हो गया है। एक छोटा-सा कण या अनेक छोटे कण इस विशाल अणु-संसार में से एक काल में चेतन होने की संभावना रखता है। परन्तु पुनः उसका अन्त अवश्यम्भावी है और वह भी फिर उसी अंध शक्ति के आधीन शीतल होकर मृत संसार के निर्माण में पैदा होने को है।

यंत्रवाद

●

आज इस बात में काफी सहमति है कि ज्ञान का प्रवाह अयान्त्रिक वास्तविकता को स्वीकार करने की ओर अग्रसर हो रहा है, जो विज्ञान के भौतिक पक्ष में भी करीब-करीब सहमति रखता है। यह विश्व एक विशाल यन्त्र की तुलना में एक महान दर्शन या विचार के रूप में अधिक सत्य प्रतीत होने लगा है। मस्तिष्क अब भूत जगत् में अनायास आनेवाला अजनबी की तरह नहीं प्रतीत होता। हम लोग अब सन्देह करने लगे हैं कि हमें इसे स्रष्टा एवं नियन्ता के रूप में भूत जगत् में स्वीकार करना चाहिए। उस मस्तिष्क के रूप में जो एक विचारयन्त्रिका है और जिसमें अणु-पुंज भरा है, जिनसे वैयक्तिक मस्तिष्क का विकास हुआ है, न कि हमारी अलग-अलग व्यक्तिगत मानसों का।

यह नवीन ज्ञान हमें हमारे प्रथम अनुभव को परिवर्तित करने के लिए बाध्य करता है कि हम लोग एक ऐसे संसार में खो गये थे, जिसे जीवन से कोई प्रयोजन नहीं था या जीवन के प्रति बहुत ही उग्र था। मस्तिष्क एवं भूत-तत्त्व का पुराना द्वन्द्ववाद, जो खासकर काल्पनिक उग्रता के लिए दोषी था, अब ओझल होता प्रतीत हो रहा है, पर यह किसी भी प्रकार भूत-तत्त्व के पहले की अपेक्षा किसी प्रकार गौण होने या भूत-तत्त्व की क्रियाओं एवं कार्यों में मस्तिष्क के सम्मिश्रण के कारण नहीं हो रहा है, बल्कि यह भूत-तत्त्व के स्वयं में सृष्टि या प्रतीक में घुलमिल जाने के कारण हो रहा है। हम लोगों की खोज है कि यह विश्व एक नियन्त्रक शक्ति की सत्ता को सिद्ध करता है, जिसमें हम लोगों की वैयक्तिक मस्तिष्कों से कुछ समता है। हम लोग अब बाहरी वास्तविकता या चरम सत्य को यन्त्र के रूप में नहीं सोचते हैं। इसका विशद कार्यक्रम भले ही यान्त्रिक हो; परन्तु इसका सार विचारों की वास्तविकता होगी।

उस चरम सत्ता या वास्तविकता का वर्णन शब्दों की भाषा या तर्क की धारणाओं के द्वारा सम्भव नहीं है। यह एक ऐसी वस्तु है, जो सभी वर्णनों को चकमा दे जाता है। इस विश्व की शक्ति बुद्धिमत्ता से विचार कर सकती है और इसी विचार को कुछ लोग 'ईश्वर' की संज्ञा देते हैं। विभिन्न देशों एवं इतिहास के विभिन्न युगों में लोगों ने और धर्मों ने इस सत्ता का विभिन्न नामकरण किया। वेदों और उपनिषदों में इसे ब्रह्म या ॐ कहा गया। भगवद् गीता में इसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और हिन्दू धर्म-शास्त्रों में इसे 'परमेश्वर' कहा गया।

मिस्र के प्राचीन लोग इसे 'ऐटोम' और जरथुस्त्री लोग इसे 'ओरमज्द' कहते हैं। बुद्ध के अनुसार यह अजन्मा अज्ञात है। चाग थी के अनुसार यह वास्तविकता या महान आत्मा है तथा ताओ को माननेवाले इसे 'ताओ महान' कहते हैं। हेब्रू लोग इसे 'हौआ' कहते और बेबीलोन में इसे 'मरडुक' कहा जाता है। क्रिश्चियन 'गॉड' कहते, मुसलमान 'अल्ला' कहते तथा शिन्तो-धर्म में 'इजानागी' और 'इजानामी' कहा जाता है। अरस्तु के अनुसार यह स्थिर संचालक, परम चलायमान है तथा प्लेटो के अनुसार अदृश्य परम सत्य है। हेगेल का चरम आदर्श, फिचे का 'डिवाइन' या 'ऐब्सल्यूट इगो' है, जो अनेक अंशों में इस प्रकार विभक्त है, जिस प्रकार एक प्रकाश-पुंज अनेक रंगों की अनेक किरणों में विभक्त है। यह स्चौपेनहौवर का 'ऐब्सोल्यूट विल', नीत्से की 'इच्छा-शक्ति' तथा स्पेन्सर का 'अज्ञेय' है तथा पूर्व एवं पश्चिम के अनेक दार्शनिकों के मत में 'आदिकारण' है।

आरोह-अवरोह

●

ओटो स्पेन्गलर ने भूत एवं वर्तमान की सभ्यताओं की समीक्षा में यह उपस्थापित करने का प्रयत्न किया है कि सभी सभ्यताएं एक चक्रानुक्रम में चलती रहती हैं। उसके अनुसार एक वसंत ऋतु का काल होता है, जब कुछ खास प्रकार की सभ्यताओं का अंकुर प्रस्फुटित होता है और जड़ पकड़ता है, जिसके बाद ग्रीष्म ऋतु का पदार्पण होता है, जब इसका पूर्ण विकास होता है। इसके बाद हेमन्त ऋतु में लावण्य, शक्ति एवं चर्मोत्कर्ष का काल होता है और इसकी परिसमाप्ति सर्दी में होती है, जो ह्रास एवं विनाश का काल होता है। वह कहता है कि ग्रीको-

रोमन या उत्तर भूमध्यसागरीय सभ्यता के बीज का पता डोरिक लोगों की अमानुषिक आक्रमणों के समय में देखा जा सकता है, जिसने पुरातन क्रेटन और मायसीनियन सभ्यता के ग्रीस पर आधिपत्य कायम किया। इस होमर के काव्यों, धर्मयुद्धों तथा धीरे-धीरे हेलेनिक धर्म ऐन्थ्रोपोमौरफिक देवी-देवताओं का वर्णन है, एक युग के बाद इसमें भी ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ, जब ग्रीक लोगों के नगर राज्यों का विकास हुआ, नागरिक जीवन, साहित्य एवं कला का विकास हुआ तथा ग्रीकों ने पारसी लोगों के राज्य-विस्तार के आक्रमणों में भी अपने को स्थिर रखा। हेमन्त ऋतु बाह्य रूप-रंग का काल है, जब वास्तव में कोई प्रगति नहीं होती है, विवेक एवं वैज्ञानिक खोजों तथा मैसीडोनियन एवं रोमन प्रभुसत्ता से प्रारम्भ हुआ। बर्बर आक्रमणों के साथ लम्बा शीतकाल का प्रारम्भ हुआ और साम्राज्यों का पतन हुआ तथा मध्ययुगीन अन्धकार का साम्राज्य फैला। यह पर्दा केवल तब उठा, जब ये बर्बर लोग धार्मिक उद्दण्डता (क्रूजेड) के उत्साह में पूर्वी संसार के सम्पर्क में आये और उनकी सभ्यता, संस्कृति के मुख्य तत्वों को अपनी सभ्यता के विकास के लिए आत्मसात किया। स्पेंगलर का विश्वास है कि हेमन्त ऋतु का आगमन हो चुका है। वह इसका लक्षण धर्मों के ह्रास तथा एक वैचारिकता के अतिवाद तथा अपने को नई शक्तियों के बीच सक्षम बनाने में सामाजिक शक्तियों की अयोग्यता में पाते हैं। वह भविष्य में निरंकुशता की आशा करते हैं।

परन्तु मेरे विचार से अपने इस विश्लेषण के अन्तिम भाग में वह सही नहीं हैं। भविष्य अन्धकारपूर्ण नहीं, बल्कि आलोकपूर्ण है; क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण की वाणी में यह प्रकट है कि

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ॥

हाल के कुछ दशाब्दियों के घटनाक्रमों से यह निष्कर्ष निकलता है संसार का पासा पलट रहा है। हम लोग पुनः अपने विचार एवं दृष्टिबिन्दु को सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम् से परिपूर्ण जीवन के उस महान अज्ञात क्षेत्र की ओर ले जा रहे हैं।

धर्म-निरपेक्षता

●

इस सम्बन्ध में हम लोगों का विचार वर्तमान धर्मनिरपेक्ष एवं धर्म के आधार पर शासित राज्यों की ओर जाता है, जिनका जन्म हाल में हुआ है। जो धर्म-शासित राज्य हैं, वहाँ राज्य धर्म रूप में एक धर्म-विशेष का प्रचार किया जाता है। इस प्रकार के कुछ राज्यों में उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता है, जो दूसरे धर्मों को मानते हैं, परन्तु अन्य वैसे राज्यों में वे या तो खुले आम सताये जाते हैं या उनके विरुद्ध ऐसी कार्यवाही की जाती है, उनका जीवन दुखद और असह्य हो जाता है, जो उस राज्य के राज्यधर्म को नहीं मानते हैं। वैसे राज्यों के राज्याधिकारियों के वे असहिष्णु व्यवहार एवं दृष्टिकोण न केवल अत्यन्त ही निन्दनीय एवं विरोध के काबिल हैं, बल्कि वे अहिंसा एवं शान्ति एवं एकता के विरोधी हैं।

अधिकतर राष्ट्र व्यवहार में या कम-से-कम सिद्धान्त में धर्मनिरपेक्ष हैं। अधिकतर देश धर्म में समानता के सिद्धान्त को बहुत हद तक स्वीकार करते हैं। धर्मनिरपेक्ष राज्य का यह अर्थ या दृष्टि-

कोष नहीं है कि कोई धर्म नहीं हो। अत्यधिक प्रगतिवादी धर्म-निरपेक्ष राज्यों में से बहुतेरों ने अपने संविधानों में स्पष्ट रूप से इसे स्वीकार किया है कि यद्यपि किसी धर्म-विशेष का पक्ष नहीं लिया जाता है, फिर भी विभिन्न धर्मों के पालन में पूरी स्वतन्त्रता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस स्वतन्त्रता की सीमा सर्वत्र समान नहीं है। मैं इसके कुछ उदाहरणों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अमेरिकन संविधान के अनुसार संयुक्त राज्य में किसी पद के लिए किसी धार्मिक योजना की जाँच की कतई कोई आवश्यकता नहीं है। १४ वीं संशोधन के ड्यू प्रोसेस क्लौज के अन्तर्गत धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार दिया गया है। अमेरिकन संविधान के प्रथम संशोधन में यह स्वीकार किया गया है कि कांग्रेस किसी भी धर्म की स्थापना या किसी धर्म के पालन के अधिकार को संकुचित करने का कोई कानून नहीं बना सकती।

रूस के संविधान (धारा १२४) के द्वारा चर्च को राज्य से तथा स्कूल को चर्च से अलग किया गया है। वहाँ धार्मिक पूजा, पाठ, अनुष्ठान तथा धर्म-विरोधी प्रचार की स्वतन्त्रता सभी नागरिकों के लिए है। इस प्रकार आप देखेंगे कि संविधान के द्वारा धर्म-विरोधी प्रचार को संरक्षण प्राप्त है; पर धार्मिक प्रचार को उसमें स्थान नहीं दिया गया है। केवल धार्मिक पूजा को संरक्षण प्राप्त है।

चीन के संविधान की धारा ९३ के अनुसार लोगों को धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं की स्वतन्त्रता है।

स्वीट्ज़रलैण्ड संविधान की धारा ४९ में धारणा, विचार, मत की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। पर किसी भी व्यक्ति को किसी धार्मिक संस्था का सदस्य होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है और न किसी धार्मिक क्रिया-काण्ड के करने, किसी धार्मिक उपदेश में भाग लेने या धर्म के प्रति किसी विशेष विचारों के कारण दण्ड स्वीकार करने को बाध्य किया जा सकता है। नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों को किसी धार्मिक आवश्यकता या शर्त आदि के कारण सीमित नहीं किया जा सकता है।

भारतीय विधान

भारतीय संविधान की धारा २५ से ३० के अन्तर्गत धर्म के आचरण, व्यवहार, प्रचार एवं विचारों की स्वतन्त्रता दी गयी है।

पर मैं आपका ध्यान धारा २५ और २८ (१) में जो इस अधिकार को सीमित किया गया है, उसकी ओर आकर्षित करूँगा।

"२५--जनव्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य एवं संविधान के इस भाग की अन्य शर्तों के बाद सभी व्यक्ति को समान रूप से धर्म को मानने, आचरण में उतारने और प्रचार करने का अधिकार प्राप्त है।"

"२८ (१)-राज्य-कोष से पूर्ण रूप से संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्था में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी।

(२) क्लौज [१] की कोई बात किसी भी वैसी शैक्षणिक संस्था पर लागू नहीं होगी, जिसकी व्यवस्था राज्य के द्वारा होती है, पर जिसकी स्थापना किसी भी वक्फ या धर्मादाय के अनुसार हुई है और उसकी शर्त है कि वहाँ धार्मिक शिक्षा दी जायगी।

(३) कोई भी व्यक्ति जो किसी ऐसी शैक्षणिक संस्था का सदस्य है, जो राज्य के द्वारा स्वीकृत है या राज्य-कोष से सहायता प्राप्त करता है, उस संस्था या हफ्ते में होनेवाले धार्मिक उपदेशों या धार्मिक पूजा आदि समारोहों में भाग नहीं ले सकता, जब तक कि वह व्यक्ति या उसका अभिभावक उससे सहमत नहीं है।"

आप देखेंगे कि किस प्रकार और कहाँ तक कुछ देशों में बन्धन डाले गये हैं। मेरे लिए यह आवश्यक नहीं है कि इन विभिन्न संविधानों की धाराओं की व्याख्या करूँ। वे स्वतः स्पष्ट हैं। परन्तु यह बता देना आवश्यक है कि उपरोक्त संविधान की दो धाराओं के कारण क्या कठिनाइयाँ आ गयी हैं। मेरे विनम्र विचारों में ये बन्धन इस सम्मेलन के कार्यक्रम के मार्ग में बाधक होंगे। यह सम्भव नहीं है कि किशोरों और युवकों में नैतिकता के मूल्यों की शिक्षा दी जाय और जब तक बचपन एवं युवावस्था में घरों एवं शैक्षणिक संस्थाओं में आधारभूत धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा तथा उस परम सत्ता के प्रति आदर का भाव भरने का अवसर नहीं मिलता, वह सम्भव नहीं है।

यह एक शुभ लक्षण है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित एक समिति ने हाल में इसे केवल स्वीकार ही नहीं किया है, बल्कि इस बात पर जोर भी दिया है कि देश के युवकों में वर्तमान असंतोष, अनुशासनहीनता, निरुत्साह आदि धार्मिक शिक्षा एवं आधार के अभाव के ही कारण हैं, जो आज देश की सभी जन-शिक्षा-संस्थाओं में पायी जाती है। एक बार यदि यह हम लोग स्वीकार कर लेते हैं, तो इससे संविधान में संशोधन की आवश्यकता होगी, जिससे इस देश के लोगों के लिए यह खुला हो सके कि जब वे स्कूल या कॉलेज में जायँ तो उन्हें धार्मिक विचार-विमर्शों को सुनने और उसमें भाग लेने के अवसर प्राप्त हों और इस प्रकार भावी भारतीय नागरिकों को शान्ति, संतोष, सहिष्णुता एवं समृद्धि के केन्द्र-बिन्दु के रूप में निर्मित करने का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।

विभिन्न आधार

मैं प्रसंगवश इस सम्बन्ध में इस बात का सरसरी तौर से उल्लेख करना चाहता हूँ कि अमेरिका में यद्यपि ऐसा संवैधानिक तथ्य है कि राज्य के द्वारा किसी धर्म-विशेष का प्रचार नहीं किया जायगा, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने यह घोषित किया है कि संविधान चन्दा, दान या सरकारी सहायता पर संचालित शैक्षणिक संस्थाओं पर धार्मिक शिक्षा प्रदान करने से किसी प्रकार प्रतिबन्ध नहीं डालता है। अमेरिका के बहुत ही हाल के प्रशासन में यह देखा गया है कि गत कुछ दशाब्दियों में विद्यार्थियों के अभिभावकों की ओर से यह माँग और पकड़ती जा रही है कि उनके बच्चों और शिक्षार्थियों को धार्मिक और सांस्कृतिक आधार से शिक्षित किया जाय और अमेरिका के भावी नागरिक केवल ईश्वरहीन ही नहीं, बल्कि धर्महीन भी न हो जायँ, इसके लिए सभी सम्भव उपायों को करना है।

भारत को, जो शत कोट्याब्दियों से धर्मों की क्रीडास्थली रही है, इसमें पीछे नहीं पड़ना चाहिए। यदि हमें भविष्य की ओर देखना है तो हमें उचित कदम उठाना होगा, जिससे भारत के युवकों को उचित आधार पर शिक्षा का अवसर प्राप्त हो। रूस में जहाँ ३० वर्ष पूर्व नये शासन के आने के बाद कुछ काल तक धार्मिक संस्थाओं पर प्रतिबन्ध रहा। परन्तु अब शिक्षार्थियों एवं अभिभावकों में यह माँग प्रतिदिन बढ़ती जा रही है कि विद्यार्थियों को धार्मिक पृष्ठाधार पर शिक्षित किया जाय। चर्च का बहिष्कार किया गया है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि शैक्षणिक संस्थाओं से धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा का बहिष्कार किया जाय।

यह नितान्त आवश्यक है कि यदि इस सम्मेलन के कार्यक्रम को यशस्वी बनाना और कार्य-रूप में परिणत करना है, तो यह आवश्यक है कि धर्म की रूढ़ियों को नहीं, पर धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों की शिक्षा की व्यवस्था की जाय। धार्मिक रूढ़ियों की शिक्षा बच्चों और युवकों को दी जाय, इसका मैं समर्थन नहीं करता, जिससे कि वे कट्टरपन्थी बने परन्तु मेरी मन्शा केवल उनके जीवन को सही धर्म पर आधारित करने की है। धर्म के बिना यह सम्भव नहीं है कि भावी भारत के सही एवं योग्य नागरिक तैयार किये जा सकें।

संस्कृति का महत्त्व

●

यह एक प्रसन्नता का विषय है कि वर्तमान काल में संस्कृति को राजनीति से अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। हम लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया है कि केवल संस्कृति के माध्यम से ही समस्त मानव जाति को एक भ्रातृत्व के सूत्र में बाँधा जा सकता है, जिसमें सभी भौगोलिक, राजकीय, जातीय, आर्थिक आदि सीमाओं को पार करने की क्षमता है। सांस्कृतिक बन्धन राजनैतिक सम्बन्धों से बहुत ही अधिक मजबूत होता है। सांस्कृतिक विकास का एक व्यवस्थित क्रम का सतत विकास हो रहा है, विभिन्न क्षेत्रों में। विश्व-बन्धुत्व की भावना के माध्यम से जीवन में शांति के विस्तार के लिए प्राचीनतम काल के इतिहास में उन सांस्कृतिक एकता के चिह्नों का पता लगाने के लिए गोते लगाये जा रहे हैं, जो संसार के विभिन्न लोगों में उन दिनों विद्यमान था। इसके लिए अनुसंधान हो रहे हैं, जिसकी दृष्टि ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दोनों क्षेत्रों की ओर है। ऐसा पाया जाता है कि प्राचीन सभी सभ्यताओं की संस्कृतियां और कुछ अर्वाचीन देशों की प्रवृत्तियों में धर्म का आधार रहा है।

मानव-परिवार

●

विश्वधर्म के आधार के बिना एक विश्व-राज्य का विचार स्वप्नवत् ही होगा। भौतिक एवं राजनैतिक सुख, सत्ता की प्राप्ति की आसक्ति एवं युद्ध का भय अधिकाधिक फैलता जा रहा है। इस परिस्थिति में एक विश्व-राज्य का ढाँचा खड़ा नहीं किया जा सकता है। एक विश्व-राज्य का आदर्श साकार तभी हो सकता है, जब उसे एक विश्व-धर्म का सहयोग प्राप्त हो। धर्म सम्मेलन का उद्देश्य न तो किसी राजनैतिक उद्देश्य के लिए कोई मंच तैयार करना है और न सस्ती

जनप्रियता को प्राप्त करना है, बल्कि एक विश्व राज्य के लिए योग्य वातावरण का निर्माण करना है, जिससे समस्त मानव एक विशाल मानव परिवार के रूप में संगठित हो जाय।

धर्म के सही प्रकार की व्याख्या उपस्थित करते हुए मुनिजी ने ठीक ही कहा, सारे संसार के लिए धर्म एक ही है, अनेक नहीं। परन्तु भाषा एवं विचारने की पद्धति की भिन्नताओं के कारण हमारे सामने उसके इतने ढाँचे प्रतीत हो रहे हैं। सत्य एक है, पर सन्त महात्मा भिन्न-भिन्न प्रकार से उसका वर्णन करते हैं, जिसे उपनिषद् में "एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" के रूप में कहा गया है, जो आज भी उतना ही सत्य है जितना कि तब था।

लोग शांति की बातें करते हैं, परन्तु तैयारी वे युद्ध की कर रहे हैं। लोग बातें प्रेम की करते हैं, परन्तु उनका हृदय घृणा, सन्देह आदि दुर्भावनाओं से भरा है। आज संसार में जो कमी है वह, सच्चाई और ईमानदारी की है। आपका विचार और आपकी वाणी में सामंजस्य होना चाहिए, जो आपके कार्यों में प्रकट होता हो। तभी आप लोगों पर शासन कर सकते हैं और वे भी आपकी आज्ञाओं के अनुवर्ती बनेंगे। तब आपका समादर होगा और आपकी वाणी में अतिमानवीय शक्ति होगी। इसीकी शिक्षा ईसा प्रभु ने दी और महात्मा गांधी ने दी और आज भी वे हमारे हृदयों में विद्यमान हैं। स्मरण रहे कि ईश्वर सत्य है और सत्य ईश्वर है।

प्रेम से बढ़कर इस संसार में कोई शक्ति नहीं है। प्रेम ईश्वरीय है। प्रेम अपने को मनुष्य के आचरणों में निस्वार्थ सेवा, त्याग एवं सभी जीवों के प्रति करुणा के रूप में प्रकट करता है, जिसके प्रभाव के कारण लोगों में समस्त जीवों के कल्याण एवं उन्नति की भावना का स्रोत निरन्तर प्रवाहित एवं कार्यों में प्रस्फुटित होता रहता है। प्रेम का कोई शत्रु नहीं होता। वह सभी भावनाओं पर छाकर मनुष्य के हृदय में परिवर्तन लाता है। योग-शास्त्र के महान स्रष्टा श्री पातंजलि ने यह आश्वासन दिया है कि जिस मनुष्य की भावना एवं आचरण अहिंसा से ओत-प्रोत है, उसकी उपस्थिति में प्रकृतिवशात् जो शत्रु हैं, वे भी अपनी शत्रुता का त्याग कर देते हैं। इसलिए इस विस्तृत प्रेम को जीवन में लाओ। वह एक ईश्वरीय जीवन है। प्रेम और करुणा का जीवन ईश्वरीय जीवन है।

मैं विश्वास करता हूँ कि यह विश्वधर्म-सम्मेलन केवल प्रस्तावों को पारित करके ही समाप्त नहीं हो जायगा, बल्कि जो लोग विभिन्न देशों तथा इस देश के विभिन्न अंचलों से यहाँ एकत्र हुए हैं, उन्हें मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज के महात्मीय सन्देशों पर विचार करना है और सम्मेलन के अगले अधिवेशन के पहले-पहले उसे मूर्त्त रूप प्रदान करना है। हम उस समय इस स्थिति में होंगे कि सम्मेलन के समक्ष जिन आदर्शों को उपस्थित किया गया, उनको व्यावहारिकता प्रदान करने में हम कितनी प्रगति कर पाये हैं और आध्यात्मिक दृष्टिकोण, भ्रातृत्व-भाव, सत्य, अहिंसा एवं प्रेम का कितना विस्तार कर पाये हैं, इसका लेखा-जोखा ले सकें।

●

प्रस्तावों पर बहस

सभी प्रस्तावों को खुले अधिवेशन में स्वीकृत कराना था। अतः एक-एक प्रस्ताव पर विभिन्न वक्ताओं ने विस्तार से चर्चा की।

श्री जशवन्त सिंह लोढ़ा ने प्रस्ताव उपस्थित किया।

पहला प्रस्ताव

पहले ही प्रस्ताव में यह संशोधन रखा गया कि "ईश्वर के स्थान पर सर्वशक्तिमान सत्ता रखा जाय।"

श्री डी० एल० डी० समरसेकर (सिलोन) :

इस आधार पर कि हम बौद्ध लोग 'ईश्वर' को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि हम लोग न तो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं और न उसका विरोध करते हैं, बल्कि हम लोग एक तटस्थ दृष्टिकोण रखते हैं। हम लोग इतना ज्ञान रखने का दावा नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं है। केवल सिलोन के बौद्धों की ओर से ही नहीं, बल्कि पाकिस्तान, वियतनाम, कमबोडियन आदि देशों के बौद्ध-प्रतिनिधियों की ओर से इस बात को कह रहा हूँ। इस प्रकार के सम्मेलनों का उद्देश्य सर्वसम्मति से किसी चीज की स्वीकृति होता है। प्रस्ताव यहाँ इस प्रकार से पास होना चाहिए कि वह सभी के लिए स्वीकार्य हो। ईश्वर की सत्ता के बारे में काफी विचार प्रस्तुत किये जा चुके हैं। कुछ विद्वानों ने तो बहुत ही विद्वत्ता-पूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके तर्क बहुत ही प्रभावी रहे हैं, परन्तु हम लोग बौद्ध इस स्थिति को इसलिए स्वीकार नहीं करते कि वह मन को ठीक या गलत जँचता है, बल्कि बुद्ध ने अपने सन्देश में कहा है कि किसी चीज को इसीलिए स्वीकार करना जरूरी नहीं है कि वह किसी विद्वान के द्वारा कही गयी है या पीढ़ियों से आ रही है या वह पुस्तको मे लिखी है, आदि। आपका विचार आपके मन के लिए ग्राह्य हो सकता है। ईश्वर के सम्बन्ध की धारणा सभी को स्वीकार्य हो सकती है, परन्तु दुर्भाग्यवश हम बौद्ध लोग, जो न तो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं और न अस्वीकार ही करते हैं, इस उद्देश्य से कि प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हो 'ईश्वर' शब्द के हटाये जाने का संशोधन प्रस्तावित करते हैं।

डा० हीरालाल चोपड़ा :

प्रस्ताव के सम्बन्ध में स्थिति को स्पष्ट करते हुए बताया कि इस प्रस्ताव में सत्य, प्रेम और अहिंसा के साथ ईश्वर को रखा गया है। अगर आप समझते है कि 'ईश्वर शब्द नहीं रहना चाहिए', तो आपकी मर्जी पर प्रस्ताव में यह गुंजाइश है कि जो ईश्वर को नहीं मानते हैं, पर सत्य, प्रेम और अहिंसा को मानते हैं, तो उनका मन्तव्य आ जाता है लेकिन जो ईश्वर को मानते हैं, उनको भी यह स्वीकार हो तो किस प्रकार ईश्वर को निकाल सकते हैं। सर्वसम्मत से ईश्वर शब्द को रखा गया है। विरोध में तीन से अधिक हाथ नहीं दिखाई पड़े।

दूसरा प्रस्ताव

डा० हीरालाल चोपड़ा ने द्वितीय प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि विषय-समिति में यह प्रस्ताव अध्यक्ष की ओर से उपस्थित किया गया था।

धर्म का जमाना

•

मुनिश्री जयन्तिलालजी

मैं इस बात का विरोध करता हूँ कि आप किसी बात को उत्तेजना से सोचें। आप शान्ति से विचार करें। विज्ञान और धर्म का प्रश्न संसार के लिये बहुत ही महत्त्व का है। शिक्षित लोगों में आजकल यह आम धारणा फैल गयी है कि धर्म असत्य पर आधारित है। अर्थात् लोगों को मालूम नहीं था कि संसार क्या है और जैसे जिसे आया, बना लिया और मन-गढंत सिद्धांतों के रूप में धर्म पैदा हुआ। पर जब विज्ञान हमारे सामने आया और संसार का संशोधन शुरू किया, तो बहुत-सी धर्म की बातें गलत निकल आयीं। विज्ञान इस प्रकार सत्य का संशोधन कर रहा है, ऐसी बहुतों की धारणा हो गयी है। इस धारणा को लेकर बहुतेरे लोग मानते हैं कि विज्ञान और धर्म कतई साथ-साथ नहीं चल सकते हैं और विज्ञान ही श्रेष्ठ एवं सत्य का संशोधक है तथा विज्ञान के आधार पर विश्व की रचना फिर से होगी। वे मानते हैं कि धर्म गलत सिद्ध हो जायगा।

इस तरह की जो धारणा बहुतों की है, वह कितनी गलत, भ्रान्तिपूर्ण, बुद्धिहीन और अपूर्ण है, इसके बारे में कहकर मैं प्रस्ताव का समर्थन करूँगा।

मुझे एक बार भागलपुर कॉलेज में एक प्रोफेसर ने पूछा कि आप कौन हैं? मैंने उत्तर दिया कि जो आप देख रहे हैं। उन्होंने पूछा कि आप कहाँ से आये हैं? हमने उत्तर दिया कि जहाँ से सभी आते हैं। हमने इस प्रकार से उत्तर दिया, क्योंकि उन्होंने अहंकार से पूछा था। जब उन्होंने पूछा कि आप क्या करते हैं, तो हमने बताया कि धर्म का काम करते हैं, उपदेश देते हैं और उसीके लिए आज आपके कॉलेज में आये हैं। इस पर उन्होंने हँसकर दिल्लगी उड़ाते हुए कहा कि महाराज धर्म को भूल जाइये, अब धर्म का जमाना चला गया, विज्ञान ने उसे गलत सिद्ध कर दिया है और आज इस विज्ञान के युग में उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। उत्तर में मैंने कहा कि आपने तो धर्म की हँसी की पर मैं इस प्रकार एकाएक विज्ञान की हँसी नहीं उड़ाता हूँ, क्योंकि विज्ञान भी महत्त्वपूर्ण है। आप धर्म को तथ्यहीन, अपूर्ण और महत्त्वहीन समझ रहे हैं, पर मैं न विज्ञान को तुच्छ समझता हूँ और न धर्म को और दस मिनट बाद लेक्चर में आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा।

धर्म की जरूरत

•

वहाँ के प्रवचन में मेरा विषय था कि विज्ञान के युग में धर्म की जरूरत है या नहीं? मैंने कहा कि मैं नहीं कहता कि विज्ञान को धर्म का समर्थक या उसके अनुकूल बनाना है। आज के विज्ञान

की बातों को सुनकर बहुतों यहाँ तक कि श्रद्धालुओं की श्रद्धा हिल गयी और उनके मन में अस्थिरता आ गयी है। आज के इस संसार में विज्ञान ने इतना कब्जा कर लिया है, तो धर्म की क्या दशा है और उसकी क्या आवश्यकता है ? इन दोनों को किस प्रकार एक साथ मिला कर रखना है, हमने बताया कि विज्ञान ने हमें रोशनी में लालटेन के स्थान पर बल्ब दिया तो इससे कोई नई चीज तो मिली नहीं। पहले प्रकाश थोड़ा कम होता था, तो उसे थोड़ा अधिक कर दिया। पहले धीरे चलते थे, विज्ञान ने बैलगाड़ी की जगह वायुयान दिया और गति में तेजी लाई पर गति तो कोई नई चीज नहीं मिली। विज्ञान ने भोगोपभोग, विलासिता के नये नये साधन तो दिये, पर मनुष्य के कल्याण के लिए क्या दिया ? विज्ञान ने मानव-कल्याण के लिए कुछ साधन दिए हैं पर इनसे उनकी सारी समस्याओं का समाधान नहीं होता। विज्ञान की इतनी प्रगति होने पर भी मनुष्य आज भी इतना दरिद्र क्यों है ? सभी आज रोटी के टुकड़े के लिए मर रहे हैं। इसी समस्या को सोचना होगा। आज विज्ञान ने तो इतना साधन दिया है फिर भी कलकत्ता के कितने दरिद्र लोग किस प्रकार जीवन गुजर कर रहे हैं। विज्ञान ने उनके कल्याण के लिए क्या किया ? विज्ञान ने कल्याण के कुछ साधन दिये तो उनका शोषण भी किया। इसलिए मैंने कहा कि विज्ञान आवश्यक है, पर उससे समस्याओं का हल सम्भव नहीं है। वैज्ञानिकों से इंजिन आदि बनाने की जानकारी प्राप्त कर सकते है, पर यदि दो भाइयों में वैर या झगड़ा हो गया हो, तो उनके झगड़े को दूर करने का साधन वैज्ञानिक प्रस्तुत नहीं कर सकते। इसके लिए उनके पास न कोई दवा है और न कोई सिद्धान्त। कोई भी वैज्ञानिक इस चैलेंज को स्वीकार नहीं कर सकता। पर यदि दो भाइयों में मनमुटाव है और वे धर्माचार्य या धर्मगुरु के पास जाते हैं, तो वे उन्हें भक्त तुलसीदासजी की रामायण, राम और लक्ष्मण आदि के धर्म की बातें कहकर बहुत सम्भव है कि उनके मनमुटाव को दूर कर सकते हैं और उनमें प्रेम की भावना को जाग्रत कर सकते हैं। इसी प्रकार एक पिता का यदि युवा पुत्र मर जाता है तो उसकी उद्विग्नता, व्याकुलता और दुख या जलन को विज्ञान शान्त करने में समर्थ नहीं है। वैज्ञानिकों के पास 'एयर कन्डीसनिंग' के साधन हैं, पर उससे क्या उन्हें शान्ति मिल सकती है, उनका दुःख दूर हो सकता है ? कदापि नहीं। इससे आप सोच सकते हैं कि धर्म की आवश्यकता क्या है ? वही पिता यदि एक धर्माचार्य के पास पहुँचता है तो वह उसे धर्म-कर्म के सिद्धान्तों को बताकर यह बताता है कि पिता कौन है, पुत्र कौन है, उनका धार्मिक सम्बन्ध और विश्लेषण क्या है ? संसार किस प्रकार अनित्य है आदि और बहुत सम्भव है कि वह अपने दुख को यदि पूरी तरह से नहीं भूल पाये, तो बहुत कुछ हलका अनुभव करेगा। इस प्रकार विज्ञान के युग में भी विज्ञान की यह शक्ति नहीं कि वह इसकी पूर्ति कर सके। विज्ञान के साथ धर्म की भी जरूरत है और आप कहेंगे कि धर्म के साथ विज्ञान की जरूरत है तो वह भी ठीक है। परन्तु यदि विज्ञान धर्म के साथ नहीं चलेगा, तो विज्ञान मनुष्य के लिए कल्याणकारी होने के बदले अकल्याणकारी हो जायगा। अतः हम सभी इस प्रस्ताव का समर्थन करें। यदि दोनो साथ-साथ नहीं चलेंगे, तो संसार का विनाशक, विज्ञान बन जायगा। वह अकेला चलेगा तो धर्म का भी विकास नहीं हो सकेगा और हिंसा, भोग, विलासिता, वैर आदि का विकास होगा। जिस प्रकार दो भाइयों के झगड़े मे हानि दोनों को होती है, उसी प्रकार धर्म और विज्ञान के झगड़े में और पृथकत्व में दोनों की हानि है। इस प्रस्ताव में दोनों के मिलाप की बात कही गयी है, जिसका मैं समर्थन करता हूँ। दोनो को एकसाथ मिलकर संसार के कल्याण के लिए कटिबद्ध होकर संसार की सेवा करनी चाहिए। ● ● ●

श्री भालचन्द्र शर्मा ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा कि दोनों में साम्य किस प्रकार हो सकता है जब कि एक-दूसरे पर विजय पाने की होड़ में एक-दूसरे पर बाजी लगा रहे हैं। एक ओर संहार की बड़ी-बड़ी योजनाएँ और शस्त्रास्त्र बना रहे हैं और दूसरी तरफ हम विश्वधर्म सम्मेलन में बैठ कर कहें कि विज्ञान और धर्म में साम्य है, एक-दूसरे का मुकाबला करता है। वर्तमान में जिस ढंग का विज्ञान चल रहा है, जो विध्वंसक एवं संहारक विज्ञान हमारे सामने है, तो उसके जो वेत्ता हैं, उनसे नम्र निवेदन यही करना है कि वर्तमान विज्ञान से मानव-जीवन और शान्ति खतरे में है। धर्म के लिहाज से हम आज के विज्ञान का विरोध करते हैं। आज कौन ऐसा व्यक्ति है, जो विभिन्न धर्मों का समर्थन करेगा, जिसके द्वारा एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों पर स्वामित्व स्थापित करना चाहेंगे। इसलिए मैं निवेदन करूँगा कि इस प्रस्ताव में यह जोड़ा जाय कि यह सम्मेलन उस विज्ञान का जिनसे विध्वंस होता है और जिनसे संसार को क्षति पहुँचाने वाले हथियार ईजाद हो रहे हैं, का विरोध करता है और यह अपील करता है कि विज्ञान निर्माण के काम आये।

डा० करीम :

शर्माजी ने वास्तव में प्रस्ताव का विरोध नहीं, बल्कि समर्थन किया है। जहाँ तक उसका कल्याणकारी पहलू है, वह उससे सहमत हैं और विरोध तो उसके अहितकर पहलू का एवं प्रयोग का करते हैं। ऐसा कहा गया है कि शराब अक्लमन्दों के साथ में पड़कर उन्हें बदनाम करती है, परन्तु मूर्खों के साथ में पड़कर वह स्वयं को बदनाम करती है। विज्ञान उसी प्रकार मनुष्य के घातकों के संग में आकर स्वयं को बदनाम करता है, न कि घातकों को बदनाम करता है। उनका सुझाव इस प्रस्ताव में आ जाता है। हम विज्ञान को उसकी हद तक मानते हैं, जहाँ तक वह कल्याणकारी है। यदि उससे दस वर्षों का काम दस दिन में हो सके, तो हम उसकी निर्माणात्मक शक्ति को मानने के लिए तैयार हैं, न कि संहारात्मक शक्तियों को। हकीकत में शर्माजी ने प्रस्ताव का समर्थन किया है, न कि विरोध और वह उसके भाव से सहमत हैं। धर्म के अभाव में विज्ञान संहारक हो गया है। यदि विज्ञान धर्म के साथ रहेगा, तो दोनों पलड़े बराबर रहेंगे। आज धर्म अलग है। इसीसे विज्ञान हानिकर हो रहा है, अन्यथा नहीं होता।

मुनिश्री सुशील कुमारजी :

शर्माजी के कहने का, उनके सुझाव का उद्देश्य अच्छा और इतना सच्चा है कि वह जरूर आना चाहिए। मानव-जाति के संहार के लिए, जो शस्त्रास्त्रों के तमाम अनुसन्धान और उत्पादन हो रहे हैं और वे जिन आधारों पर हो रहे हैं, उस प्रकार के अनुसन्धानों व शस्त्रास्त्रों को बन्द करने के लिए हम वैज्ञानिकों से अनुरोध करते हैं। यह मानव-जाति के हित की बात है। यदि वे उसे बन्द नहीं करते, तो आज जिसे वैज्ञानिक बनायेंगे, कल वह उनके बस में नहीं रह सकेगा और उसे नियन्त्रित रखना उनके हाथ के बाहर की बात हो जायगी। परिणामस्वरूप यदि कोई पागल व्यक्ति या राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर हमला कर बैठा तो सारी मानव जाति नष्ट हो जायगी। इसलिए इस प्रस्ताव में यह जरूर जोड़ा जाय कि तमाम हिंसक शस्त्रास्त्रों का निर्माण बन्द करना चाहिए।

●

सतीश कुमार

विज्ञान और धर्म की बात आजकल बहुत चलती है। विज्ञान पर धर्म का रंग चढ़ाने की बात भी सुनी जाती है और ऐसा कहा जाता है कि आज का विज्ञान असंयत है तथा भोग-वाद को प्रश्रय देने-वाला है। किन्तु सच्चाई यह है कि अभी तक हम लोग विज्ञान को समझ भी नहीं सके हैं। बिना समझे-बूझे ही विज्ञान को कोसने लगे हैं।

सतीश कुमार

विज्ञान ने अमेरिका और हिन्दुस्तान को कितना नजदीक ला दिया है। मनुष्य को मनुष्य से, राष्ट्र को राष्ट्र से और सारी दुनिया की संस्कृतियों को एक-दूसरे के साथ जोड़ने में कमाल किया है। परन्तु धर्म ने सदा ही मनुष्य को मनुष्य से अलग करने का काम किया है। छोटे-छोटे परकोटे बनाये गये, सम्प्रदाय खड़े किये गये। और धर्म के नाम पर मानवता को अथवा समाज को खण्डित किया गया। सारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि धर्म के कारण रक्त-पात हुआ, देश के टुकड़े हुए और दिमागी कटघरे बनाये गये।

सच तो यह है कि आज धर्म कहीं है ही नहीं। जो कुछ दीख पड़ता है, वह ढोंग है। यदि इसी ढोंग को धर्म मान लेंगे, तो यह मानवता के साथ सबसे बड़ा अन्याय होगा। इसलिए इस प्रस्ताव के साथ यह जोड़ दिया जाना चाहिए कि आज का धर्म अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और जड़-ताओं से ढँक गया है। इन आवरणों को बुद्धिवाद के माध्यम से और विज्ञान की सहायता से दूर करना हमारा उद्देश्य है।

इतना अंश जोड़ देने से प्रस्ताव की भावना और उसका मकसद अच्छी तरह से प्रगट हो सकेगा। जब हम बुद्धिवाद का सहारा लेंगे, तो विज्ञान अपने-आप आयेगा और जब विज्ञान आयेगा, तब धर्म के ढोंग टिक नहीं सकेंगे। आज धर्म की चिनगारी एक बहुत बड़े राख के ढेर में छिपी हुई है। विज्ञान की प्रचण्ड हवा इस ढेरी को उड़ा देगी और उसमें से जो चिनगारी प्रगट होगी, वह अपने प्रकाश से जीवन को आलोकित कर देगी।

कोई भी संशोधन स्वीकार न होने से प्रस्ताव पास हुआ

तीसरा प्रस्ताव

●

श्री भँवरमल सिंघी

इस मंच पर खड़ा होकर बोलने में मुझे कठिनाई हो रही है; क्योंकि जहाँ एक नहीं बल्कि अनेक धर्मों के प्रतिनिधि अपनी-अपनी भाषा, लिबास में अपने-अपने प्रतीकों के साथ अपने

ढंग से उपस्थित हैं और मानवता एवं सामाजिकता का प्रश्न हल करना चाहते हैं, तो उनके समक्ष मेरे जैसा व्यक्ति, जो इनमें से या इनसे बाहर के किसी भी धर्म से जुड़ा नहीं है, मेरे कपड़ों या मुझ में आपको कोई भी ऐसा प्रतीक नहीं मालूम हो सकता, न मेरे पास एक विशेष प्रकार की मुँह पट्टी, लाठी या झोला है क्या बोलेगा? परन्तु जहाँ निखालिस धर्म की चर्चा है जो इन मुँह-पट्टियों, लाठियों, वस्त्रों आदि से बाहर है तथा असली मानवता का धर्म है और जहाँ उस पर चर्चा होती हो, वहाँ हर आदमी कुछ कह सकता है। मैं तो मानता हूँ कि जो धर्म इन बाहरी उपकरणों के अतिरिक्त बच गया वही वास्तविक धर्म है और वह हमारी भावना का धर्म है। इसमें भाषा, प्रदेश, वर्ग, वर्ण का कोई अन्तर या भेद नहीं होता है।

इसमें कोई शक नहीं कि आज धर्म बहुत बड़े खतरे में पड़ गया है। जो अपने आपको धर्म के संचालक या धर्मगुरु कहते हैं, वे इस खतरे का अनुभव करते हैं। वे ही नहीं, डा० राधाकृष्णन् जैसा दार्शनिक भी कहता है देश एवं विदेशों में कि धर्म को यदि बचना है तो उसे अपनी भूमि को साफ करना होगा। आज जिस भूमि पर धर्म खड़ा है, उसके नीचे से अवश्य ही विस्फोट होनेवाला है और एक क्या बीस बीस भी विश्वधर्म सम्मेलन उसे रोक नहीं सकते यदि उसके नीचे की भूमि को साफ नहीं करते। आपलोग ऐसी चर्चा से चिढ़ सकते हैं। दुर्भाग्य से ऐसी चर्चाओं में मेरी एक स्थिति है। चिन्तन-धारा में नास्तिक-आस्तिक बहुत-से भेद और बहुत-सी परम्पराएँ आती हैं। मैं न नास्तिकता को समझता हूँ और न आस्तिकता को। मैं अपने जीवन की समस्याओं को समझता हूं और वही विस्तृत रूप में सारे समाज की समस्या है, क्योंकि मैं समाज के भीतर रहता हूँ।

मुझे खुशी है कि मैं जिस प्रस्ताव के प्रसंग में खड़ा हुआ हूँ, उसकी पहली पंक्ति सचमुच में एक बड़ी चीज है, जिसमें कहा गया है कि दुनिया में यदि असली तरक्की करनी है तो हम सबको सामाजिक व्यवस्थाएँ बदलना नहीं, बल्कि अन्तर से परिवर्तन करना है। यदि यह सही है तो इसकी 'ट्रान्सफार्मेशन' शब्द से यही ध्वनि आती है—स्वागत है। क्योंकि आज जिस समाज-व्यवस्था में हम और आप बैठे हैं, उसके रहते कोई भी धर्म की चर्चा निरर्थक और वितण्डावाद है। यदि वह समाज-व्यवस्था नहीं बदलती तो ये उपदेश, नारे, मन्त्र चाहे धर्म के मंच से हों, व्यर्थ हैं। इस बात का संकेत आवश्यक है कि हम परिवर्तन करने को कितना तैयार हैं। मैं समझता हूँ कि यह स्वीकारोक्ति एक अच्छी भूमिका है, जिस पर से इस प्रश्न की समस्या समझी जा सकती है।

मनुष्य केवल नारों, मन्त्रों, स्तुतियों, स्तवनों आदि से नहीं चलता और न उन पर निर्भर करता है। उसके जीवन की जो समस्याएँ हैं, उन्हें उसे हल करना है। ये समस्याएँ जो समाज-व्यवस्था की है। हमें मानकर चलना होगा कि कोई ऐसी शक्ति या संस्था नहीं जो कायम रहती हो। कोई भी उसे कायम नहीं रख सकता है। उसका रूप बदलता है और उनकी विचारधाराएं बदलती हैं। जहाँ विज्ञान और धर्म की चर्चा होती है कि विज्ञान मनुष्य के बाह्य को बदलता है और अन्तर को नहीं बदलता पर यह गलत है, क्योंकि हम देखें कि जब बाह्य बदलता है तो अन्तर की प्रवृत्ति भी निश्चित रूप से बदलती है। बाह्य और भीतर का अन्तर इस प्रकार नहीं किया जा सकता। आज समाज की बाह्य व्यवस्था विज्ञान की सहायता से बदल रही है, निर्मित हो रही है।

एक जमाना था, जब धर्म ने कहा होगा की रोटी की समस्या हमारी नहीं है, हमारी समस्या तो आत्मा की है—अध्यात्म। आज इस प्रकार का भेद नहीं चल सकता। भूखे लोगों को आप मन्त्र सुनायें, सूक्तियाँ सुनायें, अमुक मुनि या आचार्य के उपदेश सुनायें, तो उससे तो काम नहीं चलता। उनकी समस्याओं को हल करना है, जो समाज की स्थिति से उत्पन्न हुई हैं। आज समाज नयी करवटें ले रहा है। किसी भी विज्ञान के आधार से उसकी समस्याओं का हल हो। यहाँ बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। जहाँ धर्म और विज्ञान की बातें हैं, व्यापक परिसीमाएँ हैं। यह बात यहाँ पर जो गुरु, महात्मा आदि बैठे हैं, उनसे नम्र निवेदन पूर्वक कहना चाहूँगा। एक ऐसे दृष्टिकोण से जिसका न किसीसे समर्थन है और न विरोध। मैं अपनी चिन्तना से बातें करता हूँ और उस बड़े व्यापक समाज के अंग के रूप में जैसा समझता हूँ और जिन समस्याओं की बातें हम रात-दिन करते रहते हैं। आज तो एक और फैशन हो गया है मानवता, विश्व-शांति, विश्व-विनाश की बातों के करने का, जिन्हें सामने रखकर हम अपनी बातें करते हैं। जिन्होंने इन समस्याओं को पैदा किया है, धर्म की जिन परम्पराओं, अपरिवर्तन की परिपाटियों ने ही इन समस्याओं को पैदा किया है पर वे आज इन समस्याओं का हल भी करने जा रहे है तो उसी अपरिवर्तनशीलता से। इस प्रकार जितने भी इकट्ठे होकर कहना चाहें, कहें; प्रगति रुक नहीं सकती।

धर्म : निखालिस निष्ठा

●

कहना यह है कि धर्म को निखालिस निष्ठा के रूप में रखिये। जब खुश्चेव जैसा साम्यवादी भी आज कहता है कि शस्त्रास्त्रों को हटाओ और विश्व-शांति कायम करो तो क्या वे धर्म की बातें नहीं है? मत कहिये, लेकिन यह मानवताकी बात तो है। कितनी उसके मन में सच्चाई है, उसे कौन जाने? परन्तु बात तो कही जाती है। आज जितने भी धर्म के संगठनों के भेद हैं, सभी का विघटन कीजिये। पहला कदम यही हो। चूँकि सभी को रखकर यह सम्भव नहीं है। जितने धर्म के प्रतीक हैं, इन सारे धर्म के प्रतीकों और संगठनों को जिन्होंने धर्म पर आवरण ला दिया है तथा शुद्ध मानव निष्ठा, श्रद्धा, और मानवता के आधार पर जो भेद-भाव का लदाव और आवरण है, उन्हें दूर कीजिये। इस मंच से मेरा नम्र निवेदन है कि जब हम ऐसा कर सकेंगे तभी शुद्ध मानव की दृष्टि से देख सकेंगे।

मैं सुन रहा था—एक ने कहा, भगवान और दूसरे ने कहा सत्य, तो मैं सोचता रहा कि क्या हो रहा है। किसीने कहा भगवान् डूब रहा है, किसीने कहा कि भगवान् को बचाओ नहीं, तो मैं डूब जाऊँगा। यदि डूबना था, तो वह तो डूब चुका और यदि जीवित है, तो इन सारी बहसो के बाद भी जीवित है।

आयोजन को इस बात के लिए धन्यवाद है कि मुझे बोलने का मौका प्रदान किया। मैंने अपना व्यक्तिगत विचार-दर्शन सारे समाज की ओर से रखा है। मेरा नम्र निवेदन है कि समस्या का समाधान तभी सम्भव है जब मूल समस्या पर विचार किया जाय और जब आप सभी मिलकर शुद्ध दृष्टि से इस पर विचार करेंगे। मुझे यह प्रस्ताव पसन्द आया, क्योंकि इसमें कहा गया है कि तब तक प्रगति नहीं हो सकती, जब तक समाज-व्यवस्था का आमूलचूल परिवर्तन नहीं कर देते। सही बात है—प्रेम

और अहिंसा के आधार पर परिवर्तन हो। यदि संघर्ष के आधार पर होता है, तो गलत हो जाता है क्योंकि उसके दूरगामी परिणाम गलत होंगे। पर अहिंसा केवल दिल से ही नहीं होती। उसे सामाजिक रूप देना होगा। वह शास्त्र या वाणी की चीज नहीं, बल्कि हमारे-आपके जीवन-का बहता हुआ प्रवाह होना चाहिए। घर में नौकर प्रातः से देर रात्रि तक खटता रहता है तो हमारी अहिंसा सूख जाती है। मुझे चिन्ता नहीं होती कि उसका क्या होता है, पर अहिंसा का व्याख्यान दे देते हैं और सुन लेते हैं। जीवन में अहिंसा प्रवाह के रूप में आनी चाहिए। सेठ को मुनीम की कोई चिन्ता नहीं।

मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज ने यह प्रसंग रखा, उनका धन्यवाद गान करता हूँ। पर इस प्रकार की अहिंसा से समाज बदल सकता है क्या? बुद्ध ने कहा, महावीर ने कहा, ईसा ने कहा, गांधी ने अभी सामाजिक प्रयोग किया, पर रोना पड़ता है और कहना पड़ता है कि कहाँ है वह सामाजिक व्यवस्था, जिसका आधार अहिंसा या प्रेम है। ऐसा इसलिए है कि हम गलत मूल्यों को महत्त्व दे रहे हैं। हम समाज में मूल्य उनका समझते हैं जिनकी धन से पूजा होती है। अहिंसा के मूल्यों को हम महत्त्व देंगे तो हमारी दृष्टि सुलझ जायगी। मेरी दृष्टि तो वहाँ जाती है, जहाँ पूजा होती है। हम साधारण मानव हैं। वित्त की पूजा होती है, तो वित्त बढ़ेगा, पूजा हिंसा की है तो हिंसा बढ़ेगी और पूजा धोखे की है, तो धोखा बढ़ेगा। इसलिए अहिंसा के आधार पर यदि परिवर्तन लाना है तो सबसे अधिक जरूरत समाज-व्यवस्था को बदलने की है—यदि सचमुच में अहिंसा को जीवित बनाना है। अहिंसा को मुर्दों का नहीं बल्कि प्रतिकार का शस्त्र बनाना है। अन्याय है, तो लड़ना होगा। सभी कहेंगे कि यह तो संघर्ष हो गया तो वह संघर्ष स्वीकार है, जिससे अहिंसा को बचाया जा सके। इस आधार पर यदि समाज-व्यवस्था का हम निर्माण करें तो हम समझते हैं कि प्रस्ताव में जो रखा गया है, उससे समाज की विषमता दूर हो जायगी। प्रस्ताव के सन्देश को इस प्रकार से सोचना होगा।

भोगवाद नहीं !

•

श्री चण्डी प्रसाद केड़िया

•

संसार में हर समय दो प्रकार के पहलू काम करते हैं। एक इन्सान का इन्सान से संबंध और दूसरा अपने आप, और अपने सारे बाह्य संसार से संबंध। एक जिसे हम राजनीति या पॉलिटिक्स कहते हैं, वह इन्सान का इन्सान से रिश्ता है और दूसरा जिसे धर्म कहते हैं, वह इन्सान का अपने आप या स्वयं से और सारे ब्रह्माण्ड से रिश्ता कायम करता है। इस प्रकार आज जो यह तजवीज रखी गयी है कि समाज का निर्माण अहिंसा के आधार पर होना चाहिए तथा भ्रातृत्व एवं बन्धुत्व के आधार पर होना चाहिए तो इस सम्बन्ध में इन्सान के अन्दर अनेक परीक्षण हुए हैं तथा बहुतेरी जातियों और सम्प्रदायों ने इन सिद्धान्तों को अपनाने और अमल में लाने की कोशिश की है। यह अलग बात है कि ये तजवीजें पूरी सफल नहीं हुई। आज भी जो तजवीज अमल में लायी जा रही है, वह पूरी सफल नहीं हो रही है। इसका यह माने नहीं कि धर्म

सम्प्रदायों ने जिन तजवीजों को अमल में लाने की कोशिशें की वे सारी गलत थीं। आज इस समाजवाद या साम्यवाद के अन्दर जिन तजवीजों को अमल में लाने की कोशिशें हुई हैं वे भी गलत नहीं हैं। इससे यह कह देना कि सारे सम्प्रदायों, उनके महन्तों-आचार्यों की चेष्टाएँ गलत हैं, बेकाम हैं, यह कोई अर्थ नहीं रखता है। धर्म ने अपने तरीके से अपने-अपने जमाने में समाज की समस्याओं को हल करने की पूरी कोशिश की है और अभी भी उसके परीक्षण चालू हैं। समाज को बदलने की बात ठीक है, पर किस तरह से और उसकी रूपरेखा क्या होगी? इस प्रश्न को हमारे पूर्व वक्ता ने साफ नहीं किया। हिटलर भी अपने ढंग से समाज-व्यवस्था कायम करना चाहता था, स्टालिन ने भी अपने ढंग से समाज-व्यवस्था कायम करने की कोशिशें कीं और ख्रुश्चेव भी अपने ढंग से प्रयास कर रहे हैं। सभी के अपने ढंग अलग-अलग हैं।

यदि नई समाज-व्यवस्था कायम करना चाहते हैं और पुरानी बदलना चाहते हैं, तो उसकी रूपरेखा स्पष्ट कर सकेंगे? अलग-अलग समय अलग-अलग परीक्षण होते रहे हैं, पर उससे धर्म के उन सत्यों को जिन पर समाज का सारा ढाँचा प्रारम्भ से चला आ रहा है, उस पर कोई फर्क नहीं पड़ता। सत्य, अहिंसा और प्रेम के जिन सिद्धान्तों को हम मानते हैं, जिन्हें सभी धर्मों के सम्प्रदाय मानते आये है, उनका आज तक कभी विरोध नहीं किया गया। जब हम सामाजिक न्याय की बात करते हैं, तो धर्म के इन्हीं मूल सिद्धान्तों पर सामाजिक सिद्धान्त भी आधारित होते हैं। परन्तु जिस समाज को हम बदलने की सोच रहे हैं, क्या वह भोगवाद नहीं है? क्या जिस समाज परिवर्तन का यह खाका हम खींच रहे हैं, वह रोटी पर जाकर नहीं टिक जाता है? आज अमेरिका में सभी को रोटी, कपड़ा और मकान की सुविधा है, पर क्या उसकी समस्याएँ हल हो गयी हैं? बड़े-बड़े धनपति हैं, पर क्या रोटी की समस्या हल हो जाने से उनकी समस्याएँ हल हो गयी हैं? इनका उत्तर होगा, नहीं। समाज को इनसे भी ऊँची आवश्यकताएँ होती हैं। केवल एक समय में एक रोटी के प्रश्न को देखकर संतोष नहीं करना पड़ता है। समाज के हजारों वर्षों के इतिहास से अपनी तजवीज करना तथा उसी के अनुरूप आगे बढ़कर काम करना पड़ता है। जिस भोगवाद की जमीन पर आज हम दौड़ रहे है और जिसकी बातें करते हैं, उसके साथ यदि अहिंसा की बातें करते हैं तो अहिंसा शब्द स्वयं गन्दा हो जाता है। बड़ी-बड़ी समस्याओं का हल करना आवश्यक है और भोगवाद से उसके अन्दर की समस्याएँ बढ़ती ही जायेंगी। जीवन-स्तर को उस माध्यम से जितना ऊँचा करना चाहेंगे, उसका कभी अन्त नहीं होगा तथा मृगमरीचिका में घूमते ही रह जायेंगे। इसलिए भोगवाद को छोड़कर आध्यात्मवाद की ओर बढ़ने की आवश्यकता है और उसीके अनुरूप समाज का निर्माण करना होगा।

अहिंसा से कल्याण

●

श्री वान कादिर
(मलाया)

मैं इस प्रस्ताव का, जो प्रेम और अहिंसा के सिद्धान्तों की मानव-जीवन में शिक्षा से सम्बन्ध रखता है, समर्थन करता हूँ। आज के हम लोगों के इस संसार में हम लोगों ने राजनीतिक प्रगतियों

और वैज्ञानिक अनुसन्धानों को देखा है। उनका उपयोग मानव-कल्याण के लिए तभी सम्भव हो सकता है, जब हम अपने जीवन में अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्तों को अपनाते हैं; क्योंकि अहिंसा का सिद्धान्त विश्व-शान्ति और सुख को लाने में समर्थ है। आज के संसार में अनेक आविष्कार हुए हैं। इस वर्तमान भयावह परिस्थिति से संसार को अहिंसा का ही सिद्धान्त मनुष्य की मानवता को जगाकर बचा सकता है। इसलिए हमारे इस सम्मेलन के लिए इस प्रस्ताव को स्वीकृत करना बहुत ही आवश्यक है तथा यह आवश्यक है कि सारे संसार में इस बात का प्रचार किया जाय कि केवल अहिंसा ही संसार में लोगों को आनन्द, शान्ति और सुरक्षा प्रदान कर सकती है। यह केवल धर्म का आधार ही नहीं है, जो हम इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं, बल्कि मानवतावादी आधार पर भी इसका समर्थन करते हैं। मलाया के एक प्रतिनिधि के रूप में मैं इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन करता हूँ और आशा करता हूँ, आप सभी प्रतिनिधि और उपस्थित जनसमूह इस प्रस्ताव का एक स्वर से समर्थन करेंगे, क्योंकि तृतीय विश्व-युद्ध के खतरे से संसार को केवल अहिंसा और प्रेम ही बचा सकता है।

पावित्र्य का सिद्धान्त

●

ब्रह्मकुमारी प्रकाशमणि

यहाँ सभी इस सम्मेलन में विश्व-शान्ति के लिए इकट्ठे हुए हैं और विभिन्न विचार सुनने को मिल रहे हैं। कोई समर्थन करता है और कोई विरोध करता है। परन्तु मैं कहती हूँ कि यहाँ कोई अनुरोध या विरोध की बात नहीं है, बल्कि आवश्यकता उसे जीवन में उतारने की है, क्योंकि जीवन में जो बातें दिन भर चलती हैं, उन्हें तो सभी मानते हैं।

आप सोचें कि अहिंसा का क्या अर्थ है? यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप से पूछे कि उसके जीवन में वह कितना हिंसक है और कितना अहिंसक? क्योंकि अहिंसा का अर्थ है--किसीकी हिंसा मत करो, किसीको धोखा मत दो, किसीका शोषण मत करो, आदि। इसके लिए सर्वप्रथम पवित्र होने की जरूरत है। अहिंसा का मतलब ही पवित्रता है। क्रोधवश यदि कोई किसीका खण्डन करता है, उसके दिल को दुखाता है तो वह हिंसा है। काम के वश जो बुरा कर्म होता है, वह भी हिंसा है। इस-लिए मेरा यही निवेदन है कि मनुष्य अपनी आत्मा और अपने परम परमात्मा को पहचानकर क्रोध, लोभ, मोह रूपी शत्रुओं, जिनके वश में होकर मानव मात्र अपने को दुखी, पापी और दीन बना रहे हैं, से अपना निवारण करने की कोशिश करनी चाहिए। बाकी विश्व-शान्ति के लिए इस कार्य को तो परमात्मा पर छोड़ना चाहिए, क्योंकि विश्व की भावी उसीके हाथों में है। यह सत्य है कि विश्व में हम हैं और हम में विश्व है। यदि व्यक्ति व्यक्ति में शान्ति आती है, तो विश्व-शान्ति भी अवश्य आ जायगी। यदि हम अपने में पवित्रता धारण कर लें, अपने विकारों को नष्ट कर लें, अपने में अहिंसा, प्रेम, सत्य जो भी कहिये, शब्दों का भेद है, पर व्यक्तिगत रूप से उसके अर्थ को सोच और समझकर यदि मनुष्य उन्हें जीवन में उतारे तो विश्व के अन्दर शान्ति की स्थापना दूर नहीं, वह आज ही आ जाये। विश्व-शान्ति आवश्यक है और वह होनी ही है क्योंकि इस पुरानी, पापी, तमोगुणी दुनिया का अन्त जरूरी है। परमात्मा ने कहा है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब अधर्मों का नाश

करके एक सत्य धर्म की स्थापना के लिए मुझे आना ही होता है। अभी इस अधर्मी पापी दुनिया में यह जरूरी है कि विनाश हो और उसके बाद सत्य धर्म की स्थापना हो। इसके लिए हम सभी अपने व्यक्तिगत जीवन को शुद्ध करें। सत्यता, शुद्धता, पवित्रता और शान्ति में मेरा पूरा सहयोग है और मैं प्रस्ताव का समर्थन करती हूँ।

सामर्थ्य का अभाव

●

डा० नागेन्द्र

प्रस्ताव में एक शब्द आया है, जिसका अर्थ होता है कि आज की सामाजिक व्यवस्था हिंसा की नींव पर आधारित है। मैं कहना चाहता हूं कि हिंसा जीवन का एक नियम ही है, क्योंकि श्वास लेने में भी अनेक कीटाणुओं की हिंसा होती है और 'जीव-जीवों का भोजन' यह सिद्धान्त सतत चलता रहता है। इसलिए हमें अहिंसा के सही अर्थ को समझना होगा, क्योंकि पूर्ण रूप से अहिंसा जीवन में सम्भव नहीं है। आज का समाज और पहले भी समाज अहिंसा पर रहा है। जो जीवन के लक्ष्य को नहीं पहचानता। जो परम आनन्द ब्रह्म है, उसीकी प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य है, उसके लिए हम अपनी अलग-अलग डफली बजायेंगे, तो क्या होगा?

प्रस्ताव में कहा गया है कि अहिंसा, सत्य को जीवन का मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाना है, पर हमारे ऋषि मुनियों ने तो सदा से ही जीवन के नियम बनाये है। क्या इसके बाद भी लोग उस पर चल सके? नहीं, क्योंकि हमें वह मानसिक शक्ति या कौशल नहीं मिली है, जिसके साधन से हम अपने मन में अटल सत्य पर और अहिंसा पर हर प्रलोभनों में डटे रह सकें। आज आवश्यक है कि सत्य और अहिंसा की बाते मीठे-मीठे शब्दों में नहीं रहें, बल्कि हम वह समाधान प्रस्तुत करें कि जिस पर चलकर विश्व को हम सही मार्ग पर ले जा सकें।

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

चतुर्थ प्रस्ताव

धर्म का परिष्कार

●

स्वामी सर्वानन्दजी महाराज

वेदों में प्रार्थना की जाती थी कि जो विद्वान है, उन्हें मित्र बनाओ, और उनके हम मित्र बनें। जो देश की रक्षा के लिए सिपाही बनकर देश की रक्षा करते हैं, उनसे मित्रता का सम्बन्ध रखो, जो

वैश्य हैं, और धन की रक्षा करते हैं, उन्हें भी मित्र बनाओ और जो सेवा में लगे रहते हैं, उन्हें भी मित्र बनाओ। इस प्रकार सारे विश्व की मित्रता और बन्धुत्व की प्रार्थना वेदों में की जाती थी। आज बन्धुत्व की भावना के अभाव में मानव हिंसा और प्रतिहिंसा पर तुला है। इस प्रस्ताव के पास होने से देश, समाज और व्यक्ति में अहिंसा और सत्य के आधार पर बन्धुत्व का विकास होगा और बन्धुत्व के विकास से अहिंसा और सत्य के सिद्धान्त भी स्वतः पुष्ट होंगे। इसलिए जब सारे विश्व में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना पैदा होती है तो हिंसा की भावना नहीं होती, क्योंकि सभी को मित्रवत् समझते हैं। हिंसा की भावना तो सामाजिकता, प्रान्तीयता, राष्ट्रीयता आदि से जगती है, इनके कारण आज देखते हैं। उदाहरण के लिए चीन को लीजिये जो बुद्ध धर्म पर टिका है वह भारत पर भी आक्रमण को तुला है। हमारा देश सबसे बन्धुत्व की भावना की बातें करता है। भारत के प्रधान मन्त्री भी बन्धुत्व एवं मित्रता को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। जहाँ मित्रता होती है, वहाँ द्वेष नहीं होता है। इसलिए बन्धुत्व की भावना अहिंसा के सिद्धान्त को दृढ़ करनेवाली है। इसलिए इस प्रस्ताव को हम व्यावहारिक एवं क्रियात्मक रूप दें। पहले तो हम कुटुम्ब में बन्धुत्व की भावना को पैदा करें। आज यह भी नहीं है। पिता-पुत्र में, भाई-भाई और समाज समाज में विद्वेष है। कुटुम्ब से समाज, प्रान्त, देश और विश्व में बन्धुत्व की भावना का विकास करें। केवल प्रस्ताव पास कर शान्त हो जाने से यह नहीं होगा। यदि हम इसे व्यावहारिक एवं क्रियात्मक रूप देते हैं और अपने देश में बन्धुत्व का विकास कर लेते हैं, तो बाहर के देशों में भी उसका विकास करना बहुत ही सरल हो जायगा।

हमारे देश में अनेक वाद हैं। लोग कहते हैं कि साम्प्रदायिक और धार्मिक लोगों ने वाद-विवाद पैदा किये, पर इस समय देश में जो झगड़े हो रहे हैं वे भिन्न-भिन्न वादों, संघों, दलों आदि के कारण हैं न कि धार्मिक सम्प्रदायों के कारण। इसलिए सभी वेद की प्रार्थना पर चलें और देश में बन्धुत्व पैदा करें। 'संगच्छध्वम् संवदध्वम् सं वो मनांसि जायताम्' के अनुसार यदि सभी इकट्ठे होकर चलें, और एक ही ध्येय के लिए एक ही मार्ग पर चलें, तो देश में बन्धुत्व की भावना आयेगी और विश्व-बन्धुत्व का विकास होगा। दार्शनिक सिद्धान्त आता है— 'सर्वम् वासुदेवाः' अर्थात् सभी भगवान के स्वरूप हैं, 'सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म, एकम् अद्वितीयम्' तो भेद मिट जायगा, जिसके कारण ईर्ष्या द्वेष होता है वर्ण, वर्ग, जाति आदि को लेकर। जब ये भेद मिट जायेंगे, तो सभी भारतीय बन्धु हो जायेंगे और फिर विश्व-बन्धुत्व की भावना आयेगी, यह मेरी परमेश्वर से प्रार्थना है और सभी से आशा करता हूँ कि सभीके हृदय में ऐसी भावना पैदा हो कि ईर्ष्या, राग, द्वेष से ऊपर उठकर ऐसी भावना पैदा करें कि सारा विश्व मित्र सम है। इस प्रस्ताव से विश्व-बन्धुत्व की भावना का प्रसार होगा।

पण्डित मिट्ठीलाल शर्मा :

अब तक हम सोचते रहे कि आपस में एक-दूसरे में प्रेम और बन्धुत्व हो तथा एक-दूसरे को भाई समझें। परन्तु निर्णय करना है कि वास्तव में हमारा पिता एक है या नहीं। यदि यह पता लग जाय कि हमारा पिता एक है तो बन्धुत्व होने में देर नहीं लगेगी। इस सम्बन्ध में एक कहानी है। एक समय एक विद्वान पण्डित के चार लड़के जहाज में यात्रा कर रहे थे। वे युवक थे। जहाज डूब गया और वे अलग-अलग तख्ते पर बहने लगे, एक चीन पहुँचा और वहाँ वह बुद्ध धर्म में शामिल हो गया, दूसरा अमेरिका पहुँचा तो ईसा को मानने लगा, एक हिन्दुओं के बीच आ गया

और एक मुसलमानों के बीच चला गया और इस्लाम को मानने लगा। इस प्रकार चारों अलग-अलग होकर अपना-अपना काम करने लगे और उन्हें एक-दूसरे का पता नहीं। प्रत्येक अपने को जीवित और दूसरों को मृत समझता था। चारों खूब विद्वान निकले और खूब संग्रह किया। आज जैसे एक सम्मेलन में अकस्मात् वे सभी एकत्र हुए। सभी अपने-अपने धर्म को ही सच्चा और श्रेष्ठ बताने लगे और आपस में एक-दूसरे की आलोचना करने लगे। फिर जब वहाँ सभी की सूची बनी, जिसमें उनके पिता के नाम भी थे तो उन्हें पता चला कि वे सभी एक ही पिता के पुत्र हैं और आपस में भाई-भाई हैं और वे प्रेम से मिल गये, आपस के विरोधों को भूल गये। हमें भी यह निश्चित करना है कि हमारा पिता कौन है--एक या दो? एक हो जाने पर यह गुंजाइश नहीं रह जाती कि हम किसी पर हिंसा, अत्याचार, शोषण आदि करें। धर्म सभी का एक है, सम्प्रदाय भले अलग हो सकता है।

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ

पंचम प्रस्ताव

श्री हरिश्चन्द्र मिश्र 'मिथिलेन्दु' :

यह प्रस्ताव बहुत गहन है, क्योंकि भारत की यह परम्परा रही है कि धर्म की शिक्षा बचपन से साधारण शिक्षा के साथ-साथ दी जाती थी। पर इधर कुछ दिनों से हममें धर्म की शक्ति घटती जा रही है। सरकार धर्मनिरपेक्ष है। इससे यह तो नही कहा जा सकता कि धर्म की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। धर्म की शिक्षा तो नीचे से ऊपर तक दी जानी चाहिए, जिससे कि सभी धर्मों में जो अहिंसा, प्रेम और सत्य दिखाया जाता है उससे आपस के भेद दूर हों, यदि धार्मिक शिक्षा दी जाय तो लोगों में एकता और बन्धुत्व आ सकता है। इसलिए हम अपनी ओर से और आप सभी की ओर से प्रस्ताव का समर्थन करते हैं और कहूँगा कि निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी तथा प्राइमरी से एम० ए० तक की शिक्षा में भारत क्या, समस्त विश्व की शिक्षण-व्यवस्था में धर्म की शिक्षा अनिवार्य हो। हमारे महर्षियों ने यह पूछने पर कि शिक्षा का क्या लक्षण हो? तो उसकी तुलना माता से की गयी है। नीति कहती है कि :

मातृपितृ कृताभ्यासो, गुणतामेति बालकः
न गर्भमुक्तिमात्रेण, पुत्रो भवति पण्डितः

माता-पिता के अभ्यास कराने से संतान शिक्षित होती है। कोई संतान माता के गर्भ से गिरते ही शिक्षित नहीं होती। इसलिए भारत के ४० करोड़ सन्तानों के पिता के रूप में जो हमारी सरकार हम सभी की अभिभावक है, के द्वारा यदि धार्मिक शिक्षा दी जाय और जिस नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षण के लिए भारत सरकार ने एक विभाग भी खोला है, तो हम एकता, बन्धुत्व और विश्व-बन्धुत्व के साथ संसार में रह सकते हैं।

धर्म भारत का मेरुदण्ड रहा है। विवेकानन्द जब १९०१ में अमेरिका गये थे, तो उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि भारत में जीवन के हर क्षेत्र--चलने, बोलने आदि में आध्यात्मिकता का दर्शन होता है। बिना धर्म के स्वतन्त्रता भी सम्भव नहीं है।

एक ही परिवार

•

श्री मुहम्मद मोनियम एम० खताब
(संयुक्त अरब गणराज्य)

मैं प्रातः भी आपके समक्ष बोल चुका हूँ। मैं विचार कर रहा था और इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आज यह सम्मेलन कलकत्ता में हो रहा है और इसके पहले दिल्ली में हुआ था, जिसमें सारे संसार के लोगों को निमंत्रित किया गया, जिससे कि शांति की स्थापना हो सके, युद्ध बन्द हो सके, बमों आदि को समाप्त किया जा सके, आदि। परन्तु यह सब धर्म के बिना सम्भव नहीं है, क्योंकि धर्म ही सारे संसार को एक सूत्र में जोड़ सकता है। हम सभी ईश्वर या अल्ला में विश्वास करते हैं और हम सभी का उद्गम-स्थान एक है। इसलिए हम लोग निश्चित रूप से एक परिवार की तरह रह सकते हैं। हम लोग आदम और हौवा के सन्तान होने के नाते हम लोगों को आदम के समान ही होना चाहिए। सचमुच में मैं अभी भारत में हूँ, पर मैं ऐसा समझता हूँ कि भारत मेरा ही देश है, जब कि मैं संयुक्त अरब गणराज्य से आता हूँ और मैं यह भी कहता हूँ कि वह भी आपका है, मेरा ही केवल नहीं है। मैं आप सभी भाइयों एवं बहनों से यही कहूँगा कि धर्म और अल्ला सभी का है, देश भी सभी के लिए है और इसलिए हम सभी निश्चित रूप से परस्पर मिलें और मिलकर समस्या का सामना करें। भारत और संयुक्त अरब गणराज्य का सम्बन्ध बहुत ही मधुर है, आध्यात्मिक क्षेत्र में। आप नासिर और नेहरू के विषय में बहुत कुछ जानते हैं। भारत शांति का देश है। इसलिए मैं यह आमन्त्रण प्रस्तुत करता हूँ कि इस सम्मेलन का आगामी अधिवेशन कैरो में हो और मैं अपनी ओर से इसके लिए अभी निमन्त्रण प्रस्तुत करता हूँ।

अन्त में पाँचों प्रस्तावों को सर्वसम्मति से स्वीकृत करके प्रसारित किया गया।

खुला अधिवेशन

दूसरी बैठक (८ फरवरी, १९६०)

श्री ईश्वरदास जालान,
स्वायत्त-शासन मन्त्री, पश्चिम बंगाल

मैं धर्म का कोई पण्डित नहीं परन्तु सीधी-सादी भाषा में जो धर्म को समझता हूँ और मनुष्य के जीवन में उसका जो स्थान है, उसीको आपके सामने रखूंगा। धर्म के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। आज उससे अलग होकर हम किस दिशा में बहे जा रहे हैं और उसका क्या परिणाम होगा आदि प्रश्नों पर विचार करने की जरूरत है। मानव मात्र का जीवन एक है—चाहे वह किसी धर्म का माननेवाला हो। ईश्वर ने सभी को समान बनाया है-चाहे वह स्त्री हो या पुरुष-उसके नाक, कान, हाथ, पैर, आदि समान हैं—चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न हो। ईश्वर के यहाँ से सभी मनुष्य और प्राणी एक ही तरहसे जाते हैं। इसलिए मानव-जीवन का सभी का मकसद एक ही है–चाहे कोई धोती-कुर्ता पहनता हो, या कोई और प्रकार का वस्त्र या किसी प्रकार के भी भोजन करता हो। सभी एक समान ही शरीर को शीत-ताप से बचाना चाहते हैं, भूख प्यास को मिटाना चाहते हैं। इसमें सभी समान हैं। उसका जन्म बिना किसी से पूछे होता है। जन्म पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है, पर जीवन जहाँ तक चलता है, उस पर बहुत कुछ अधिकार है कि जीवन को किस प्रकार चलाये ?

ईश्वर ने शरीर और मन की जो रचना की तो उससे सभी को सुख-दुख के अनुभव होते हैं, आनन्द और पीड़ा का ज्ञान होता है। सभी दुख की निवृत्ति और सुख शांति की प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं और युग-युग से आज तक यही चला आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा। मृत्यु के बाद जन्म, ईश्वर का अस्तित्व आदि अपने-अपने विश्वास की बातें हैं, पर यह तो सभी विश्वास करेंगे कि सुख और दुख शरीर का धर्म है और सभी सुख की प्राप्ति और दुख का निवारण करना चाहते हैं। पर प्रश्न है कि किस प्रकार ? हमारे यहाँ दुखों को तीन कोटियों मे बाँटा गया है—आधिदैविक, आधि-

भौतिक और आध्यात्मिक। एक वह दुख है, जो मनुष्य को भोजन, वस्त्र आदि भौतिक पदार्थों के अभाव में होता है, परन्तु कोई भी प्राणी हो, सारे आधिभौतिक सुखों की प्राप्ति नहीं कर सकता है और जिन्हें वह प्राप्त नहीं कर सकता और उसके कारण जो दुख होता है, उसकी निवृत्ति के सिवा मानसिक निवृत्ति सम्भव नहीं है। आध्यात्मिक दुख मन के दुख हैं और आधिदैविक वे आकस्मिक दुख हैं, जिन पर मनुष्य का अधिकार नहीं। इनमें भौतिक सुखों की प्राप्ति का दुख आधा मन पर निर्भर करता है। अगर मन स्थिर, प्रबल और दृढ़ हो तो सारे अभावों में सुख शान्ति का अनुभव हो सकता है।

आज सारा संसार भौतिक सुखों की प्राप्ति के पीछे उद्विग्न है और जितने भी सिद्धान्त बने हैं, वे सारे भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये बने हैं। साम्यवादी देशों के यही सिद्धान्त हैं कि सभी की रोटी की समस्या का हल हो और उन्होंने समझ लिया है कि धर्म और ईश्वर की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि उनका लक्ष्य केवल रोटी पर टिका है, केन्द्रित है। उनकी दृष्टि में धर्म बाधक है और इसलिए उसे तिलाजलि दे दिया है। उदरपोषण की मनोवृत्ति पर ही सारा साम्यवाद-शास्त्र बना है। उसका एकमात्र लक्ष्य भौतिक पदार्थों की प्राप्ति है—चाहे वह हत्या करके हो या और भी किसी तरह से या धर्म का त्याग करके। जो पूँजीवादी सिद्धान्तों के माननेवाले हैं तथा समाज-वादी, सभी आधे सुखों का हल प्रस्तुत करते हैं और आधे का अभाव ज्यों का त्यों बना रहता है। उसे दूर करने के लिए प्राचीन काल से विचारशील लोगों ने चिन्तन किया कि प्राणी को वास्तविक सुख केवल भौतिक पदार्थों से नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए वास्तविक सुखों की प्राप्ति के लिए मन की शान्ति की आवश्यकता और उसकी प्राप्ति के लिए ही सारे धर्मों और धर्म-शास्त्रों की रचना है। सभी धर्मों के मूल तत्त्व तीन सिद्धान्तों—भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग-को मानसिक शान्ति के उपाय बताये हैं। यदि आपके हृदय में भक्ति होती है, तो आपका प्रेम दूसरी चीजोंसे हट जाता है, क्योंकि वह दो नहीं, केवल एक ही जगह टिक सकता है।

इस प्रकार मनुष्य-जीवन में धर्म का बहुत बड़ा स्थान है। आज भी धर्म का स्थान और महत्व है–चाहे नास्तिकता कितनी भी क्यों न आयी हो। उसमें बहुत बड़ी शक्ति है और वह मिटने वाली नहीं है। यह भी एक चक्र है कि एक के आने के बाद दूसरे की चाह बढ़ती है। आज भारत में कुछ भौतिकता का विकास हो रहा है और उसके विचारक अपने को आध्यात्मिकता के कारण पिछड़ा मानते हैं और उसकी उपेक्षा करते हैं। इसी धर्म की भावना की कमी के कारण आज छात्रों, मजदूरों, आदि वर्गों और क्षेत्रों में सर्वत्र अशान्ति है। मनोवैज्ञानिकों का यह दृढ़ मत है कि धर्म के बिना मनुष्य अशान्त ही रहेगा। आज भारत में भी आध्यात्मिकता की कमी हो रही है और यह एक बहुत बड़ा कारण है जो चारों ओर अशान्ति पनप रही है। बिना धर्म के नीति या नैतिकता एवं चारित्रिकता सम्भव नहीं है और बिना नैतिकता एवं चरित्र के समाज कायम रहना कठिन है। इसीलिए धर्म की आवश्यकता हर युग में थी और रहेगी। विभिन्न धर्मों में कोई विभेद नहीं है। उनके मूल तत्व एक हैं, भेद कर्मकाण्ड के हैं। हमें कर्मकाण्ड के भेदों की उपेक्षा करके विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के साथ प्रेम एवं मैत्री के साथ व्यवहार करना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि मुनिजी महाराज ने विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन किया, जिससे विभिन्न धर्मानुयायियों में प्रेम हो और विद्वेष कम हो।

● ● ●

डा० मुहम्मद जुबैर सिद्दीकी
(कलकत्ता विश्वविद्यालय के अरबी, फारसी,
इस्लामिक साहित्य एवं सभ्यता विभाग के अध्यक्ष)

जब मैंने पहले सुना कि कलकत्ता में यह जलसा होनेवाला है, तो मुझे ताज्जुब हुआ, क्योंकि मैं समझता था कि अब यह जमाना आ गया है कि जब हर पढ़ा लिखा आदमी आम तौर पर धर्म को अतीत का विषय समझता है और यह समझता है कि मजहब का जमाना गुजर गया है तथा अब विज्ञान और माली तरक्कीयात का जमाना है।

श्री मुनिजी ने उस तहरीक को जिन्दा किया है, जिसकी बहुत जरूरत है। इस पर बाद में कहूँ कि धर्म का क्या मकसद है, वह क्यों आया तथा इसकी तरक्की या विकास क्यों हुआ ? जितने भी मजहबी सिद्धांत हैं, वे विकासवाद के ऊपर कोई विशेष विवरण नहीं हैं। उनका इशारा बुनियादी या असासी बातों की ओर जरूर है। हमारे यहाँ एक हदीस है, उसमें कहा गया है कि आधारभूत सत्य जिसे हम लोग खुदा के नाम से याद करते हैं या सत्य या वजूद कहते हैं क्योंकि वजूद असल में उसीका उजूद है और बाकी चीजें उस वजूद का अक्स है। उस सच्चाई ने चाहा कि वह एक छिपा हुआ खजाना है और उसकी जानकारी और पहचान सभी को हो। उसने कहा कि—हमने चाहा कि दुनिया इसको जाने और इसका जाननेवाला कोई पैदा हो, तो हमने अपने नूर (प्रकाश) का थोड़ा-सा लिया और जाननेवाला कोई पैदा हो तो हमने अपने नूर (प्रकाश) का छोटा-सा हिस्सा लिया, जिससे यह सारा जाहिर हुआ। मेरा खयाल है कि यह मजमून और भी मजहबी किताबों में होगा, जिससे यह पता चला कि खुदा की मालिखत ही एक ऐसी चीज है जिसके लिए सारी दुनिया पैदा की गई। चन्द दिन पहले हमारे पड़ोसी देश के एक नेता ने कहा कि मजहब इन्सान के लिए पैदा किया गया और इन्सान मजहब के लिए पैदा किया गया। इसे उन्होंने फैमिली प्लैनिंग के संबंध में एक तकरीर में कहा। इसके सम्बन्ध में हदीस में ऐसा उल्लेख है। पर यह कहना कि आवश्यकता के मुताबिक जब चाहो मजहब को बदल दे सकते हैं तो मेरा इससे कोई इत्तफाक नहीं है और न कोई मजहबी आदमी इसे मान सकता है।

इबादत

इस्लाम में मजहब के लिए 'दीन' शब्द आया है, इसका मकसद कुरान में कहा गया है कि हमने जिनों, अर्थात इन्सानों को इसलिए पैदा किया कि वह खिदमत करे और वह इस खास मकसद को हासिल करे। वहाँ शब्द इबादत है, जिसका अर्थ पूजा-वर्शिप है। फिर इस शब्द को हमारे उन लोगों ने समझाया है और कहा है कि हरएक काम जो सच्चाई, खुलूस और मुहब्बत

के साथ दुनिया के लोगों, इन्सानों को फायदा पहुँचाने के लिए किया जाता है, वह मजहब और दीन में दाखिल है और वह सभी इबादत है। यदि सड़क पर काँटा पड़ा हो और कोई उसे देखता है, उसे यह डर होता है कि इससे किसी नगे पैरवाले इन्सान को कष्ट हो सकता है, और उसे वह किनारे हटा देता है, तो उसे भी हदीस इबादत का एक तरीका कहा गया है। कहा गया है कि इन्सान खुद को पहचानने के लिए पैदा किया गया है जिसका तरीका यह है कि वह खुदा की इबादत करे। इसमें इन्सान का हर काम आ जाता है, जिसमें खुलूस के साथ तमाम दुनिया के लोगों को फायदा पहुँचाने के लिए काम किया जाय।

नबी का का एक जिक्र है कि बेहतरीन आदमी वह है, जो लोगों को फायदा पहुँचाये। यहाँ शब्द मुस्लिम नहीं है—वह चाहे मुस्लिम हो या गैरमुस्लिम, या लामजहब हो तो उन्हें भी फायदा पहुँचाया जाय तो काफी है। इसके लिए दुनिया में शांति-अमन की जरूरत है। इसके लिए यह हुकुम है कि ऐ इमान के रखने वाले लोगों, सभी ईमान में दाखिल हो जाओ। इस्लाम शब्द का माने है-अमन, शांति में ईश्वर की ख्वाहिशों की पूर्ति के लिए दाखिल होओ। ईश्वर, खुदा, सृष्टि-कर्ता सभी का आदि या सत्य, उसे जिस नाम से कहें, इन्सान खुदा को पहचानने के लिए पैदा किया गया है। जब से वह पैदा हुआ है, खुदा ने हमेशा ही एक ऐसे नूर को भेजा, जो इन्सान को खुदा के इस सन्देश की ओर जागरूक रखे और बता सके कि किस तरह वह खुदा, दीन और ईमान को पहचान सके और वास्तविकता का अन्दाज कर सके।

दृष्टि-सुधार

•

कुरान में कहा गया है कि सबसे पहला इन्सान जो पैदा हुआ, वह आदम खुद नबी थे और इसीलिए आए थे। कुरान में कहा है कि दुनिया में कोई ऐसी कौम नहीं, जहाँ सही रास्ते पर चलने के लिए बतानेवाले नहीं आये, इनमें से कुरान में बहुतों के नाम मौजूद हैं और बहुतों के नाम नहीं दिये गये हैं। बाद में उलेमाओं ने लिखा कि हिन्दुस्तान के नबी कृष्ण थे आम तौर पर समझा जाता है कि हर उपदेशक, सुधारक दुनिया के हर शख्स से खुलूस और मुहब्बत के साथ ईश्वर के एकता के सन्देश को प्रचारित करने की कोशिश करता है, तो वह नबी है। इसी सम्बन्ध में हजरत मुजदी दोसानी ने लिखा है कि श्री कृष्णजी हिन्दुस्तान के नबी थे। अब इन सब दीनों और मजहबों को, जिनमें खुदा की तालीम दी गई है, उसे इस्लाम कहते हैं। आजकल यह समझा जाता है कि वह मजहब, जिसे हजरत मुहम्मद ने चलाया, वही इस्लाम है बाकी गैरइस्लाम है। यह सही नहीं है। जितने सच्चे मजहब थे, सभी को इस्लाम के नाम से याद किया जाता है। कुरान की तालीम के मुताबिक जिस प्रकार और तालीमों में आहिस्ता-आहिस्ता तरक्की होती गई है, मजहबी तालीमों में भी आहिस्ता आहिस्ता तरक्की होती गयी है। इस्लाम मजहबी विचारों के विकास को स्वीकार करता है और यह माना जाता है, आप चाहे स्वीकार करें या नहीं, कि यह मजहबी विकास या तरक्की अपने आला स्थान पर हजरत मुहम्मद की जात से पहुँची। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वह अपने खयालों को जोर और जबरदस्ती से दूसरों को मनवाने की कोशिश करें। इसकी कोई मिसाल खुद आनगर के जमाने में और उनके बाद के जमाने में भी खुलाफार आसनीन के जमाने में, बदउमैया के जमाने में

नहीं गुजरी। कुरान में यह भी मौजूद है कि अगर खुदा चाहता है कि तमाम मजहब इस दुनिया में रहें और एक-दूसरे को मुहब्बत के साथ, खुलूस के साथ समझने की कोशिश करें। अगर कोई चाहे कि मुसलमान को गैरमुसलमान बनाये तो उसका इस्तहक होगा, लेकिन लड़कर नहीं, झगड़ कर नहीं, तलवार या ताकत दिखा कर नहीं। इसी प्रकार यदि मुसलमान भी किसीको मुसलमान बनाना चाहता है, तो उसे इसका हक होगा। पुराने कागजों में, जो हजरत मुहम्मद के मदीना आने के डेढ़ साल बाद में लिखे गए, उसमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जितने लोग इसमें दस्तखत करेंगे, जिनमें यहूदी, अरब, मुस्लिम सभी शरीक थे, उनमें से हरएक को धर्म और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता होगी। वे मजहब को अपनी तरह से अपनायें और उन पर चलें। किसी दूसरे को उसे रोकने या दखल देने का हक नहीं होगा। इससे पता चलता है कि मजहबी और खयालाती आजादी हजरत सल्लेवसल्लम ने न सिर्फ अपने कुरान में, बल्कि वास्तविक व्यवहार में उपदेश दिया, जिस पर यूरोप के तथा अन्य गैरमुसलमान अधिकारियों ने यह लिखा है कि इस्लाम में यह एक अहम बात है। मजहब वही चीज है, जिसके लिए मरफत गए-इलाही, इन्सान, जगत् पैदा किया गया। जब तक इन्सान की तहरीर जारी रहेगी, इन्सान वह हर काम करे, जो जायज और सही हो और खुलूस के साथ करे, एक-दूसरे के साथ मुहब्बत के साथ करे और उसे आत्मश्लाघा, आत्माहंकार आदि के तौर पर नहीं करे, तब तक दुनिया चलती रहेगी। बहुतों ने कहा कि वह दिन आयगा, जब मजहब का तखल्लुसा दुनिया से उठ जायगा, तो दुनिया मिट जायगी। शायद यह सही ही हो।

ईरान का निमंत्रण

●

श्री अबुल फजल हाजेघी [ईरान]

वह सम्मेलन, जिसमें सभी धर्म-समन्वय और परस्पर-बन्धुत्व का प्रदर्शन कर रहे हैं, जो वास्तव में धर्म की सही भावना है, मैं इस सम्भावना से बहुत प्रसन्न हूँ कि सभी धर्मों में मिलकर रहने और सहयोग करने की भावना का विकास हो रहा है। मैंने आपसे कहा और संयुक्त अरब गणराज्य के मेरे मित्र श्री खताब ने कहा कि इस्लाम में कहा गया है कि मानव मात्र का खयाल रखो, न कि केवल अपने छोटे परिवार का। हमारे मित्र डा० चोपड़ा ने देखा है कि कुरान में कहा है—ओ पैगम्बर, तुम केवल मुसलमानों को ही बचाने के लिए नहीं हो, बल्कि समस्त मानव मात्र को बचाने और उनसे प्यार करने के लिए हो। यह इस्लाम की योजना है, यह कहता है या इस्लाम धर्म के माध्यम से ईश्वर कहता है कि किसी पुरुष या स्त्री में मुझे प्राप्त करने की शक्ति नहीं है, परन्तु उनके हृदयों में वह शक्ति है कि उसके अन्दर वे मुझे प्राप्त कर सकते हैं या रख सकते हैं। इस्लाम में ईश्वर ने यह भी कहा कि यदि तुम मुझे पाना चाहते हो, तो मुझे दुखियों के हृदय में पा सकते हो और जो मेरे पास दुखी एवं दीन-हीन, टूटे दिल से आता है, मैं उसे मिलता हूँ। इस प्रकार इस्लाम का ऐसा मन्तव्य है जो मनुष्य को प्रेम और क्षमा की भावना सभी के तथा एक-दूसरे के प्रति रखने की ओर ले जाता है। मैं इस सम्मेलन को धन्यवाद देता हूँ और मैं यह भी सूचित करना चाहता हूँ कि मैं हृदय से एक उत्कट अभिलाषा इस सम्मेलन को यू० ए० आर० या ईरान ले जाने के लिए रखता

हूँ। हम लोग इसे करने जा रहे हैं और आगामी सम्मेलन के लिए आपको और सम्मेलन को निमन्त्रित करने की योजना और तैयारियाँ मैं करने जा रहा हूँ, जिससे फिर सभी परस्पर मिल सकें और धर्म के अर्थ और व्याख्या का प्रदर्शन कर सकें। ● ● ●

श्री व्यूगो यूरियामा [जापान] :

मैं टोकियो-जापान से आया हूँ। सिन्तो जापान की परम्परागत पृष्ठभूमि है और हम सभी विश्व-शान्ति की कामना करते हैं और ईश्वर की इच्छानुसार सभी के सुख एवं आनन्द मंगल की शुभ कामना करते हैं। इसीलिए हम लोगों ने सर्वसम्मति से सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया और इसमें भाग लेकर हमें बहुत प्रसन्नता है।

मैं जापानी भाषा में इसलिए बोलता हूँ कि क्योंकि मुझे दूसरी भाषा आती नहीं है। अभी यहाँ पर खडा होने पर लगता है कि मैं यहाँ पर पहली बार आप लोगों से नहीं मिल रहा हूँ, बल्कि किसी जमाने में पहले भी इस धरती पर मिल चुका हूँ। यह बहुत प्रसन्नता की बात है कि संसार में सभी जीवों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और अनेक जीवों के बाद आया है। भिन्न-भिन्न देशों में रहते हुए मनुष्य का जो कर्तव्य है कि आज लोग विचार के द्वारा इस श्रेष्ठ जीवन के द्वारा नए आविष्कारों के माध्यम से चन्द्रमा तक जाने का प्रयत्न कर रहे हैं तथा विज्ञान के बढ़ने और विकास के साथ-साथ मानव-विनाश का खतरा आ गया है—अनेक बम आदि बन गए है, जो बहुत दुख की बात है। मनुष्य को अपने शरीर-पालन के बाद उसे अपने मन और हृदय के भोजन की भी जरूरत होती है और इसे धर्म कहते हैं, जिसके लिए हम सभी यहाँ एकत्र हुए है।

जापान मे शिन्तो धर्म मे कहा गया है कि जो लोग धर्म के चिन्तन के लिए मिलते हैं और संसार के हित के लिए विचार करते हैं, वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री चुन्नीलाल भावसार (बर्मा) :

मैं बर्मा के एक मानवतावादी संघ का प्रतिनिधि हूँ। मैने बर्मा के सरकारी अधिकारियों को अपने संघ की ओर से पत्र लिखा है कि बर्मा में सम्मेलन का आगामी सप्तदिवसीय अधिवेशन हो और मैं भारत एवं विदेशो के सभी प्रतिनिधियों को आमन्त्रित करता हूँ। अपनी ओर से और बर्मा सरकार की ओर से। बर्मा के भूत पूर्व प्रधान मंत्री श्री यू नू एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं और मानवतावादी कार्यों में दिलचस्पी रखते हैं। दो दिन पूर्व चुनाव में विजयी हुए हैं। अपने पूर्व प्रधान-मंत्रीत्व के काल मे बर्मा सरकार ने एक पशु-हत्या विरोधी कानून पास किया और उसके अनुसार वर्ष मे ३२ दिन सभी कत्लखानों को बन्द रखने की व्यवस्था की गयी, जिनमें एक दिन कृष्ण जन्माष्टमी और दो दिन भगवान महावीर के पर्युषण के भी हैं। इसलिए हम लोग एक प्रस्ताव स्वीकृत करें और भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू से यह माँग करें कि महात्मा गाधी के निर्वाण-तिथि पर देश के सारे कत्ल-खाने बन्द रहें। बर्मा में जो यह हुआ, उसमें सेठ कस्तूरभाई लालभाई का प्रयत्न सराहनीय है।

श्री अब्दुल मोनियम एम० खताब :

(यू० ए० आर०)

मैं संयुक्त अरब गणराज्य की ओर से आपका स्वागत करता हूँ तथा अल अजहर विश्वविद्यालय की ओर से आपका स्वागत करता हूँ, जिसने मुझे भारत भेजा है—न केवल इस सम्मेलन के लिए, बल्कि मैं आपके साथ यहाँ दो वर्ष और रहूँगा। इस सम्मेलन से मुझे यहाँ पर अनेक भाइयों से मिलने का अवसर मिला, क्योंकि यहाँ पर हम सभी शत्रुता के लिए नहीं आये बल्कि प्रेम, बन्धुत्व की भावना से आये। हममें से बहुतेरे भाई एक-दूसरे का विरोध इसलिए करते हैं कि हम ईश्वर को अल्ला कहते हैं, दूसरे सत्य कहते हैं और कुछ और दूसरे लोग कुछ और कहते हैं। परन्तु ये सभी अल्ला के ही नाम हैं। इस्लाम में अल्ला को ९९ नामों से सम्बोधित किया गया है और सभी शब्दों का एक ही अर्थ है। किसी ने अल्ला कहा, किसी ने पैगम्बर कहा, किसीने रब कहा, आदि आदि। हम सभी भाई-भाई हैं, क्योंकि हम सभी आदम और हौआ के पुत्र हैं और सभी मिलाकर एक ही परिवार के हैं। मैं अन्त में एक ही बात कहना चाहता हूँ कि सभी भाई चाहें वे किसी भी मान्यता या विचार एवं विश्वास के मानने वाले हों, पर मनुष्य के नाते हम सभी भाई-भाई हैं। हम लोगों के कुरान में कहा गया है कि बहुत लोग हजरत मुहम्मद को मानते हैं और बहुत उनका विरोध करते हैं और कहा गया है कि जो इस्लाम को नहीं मानते हैं, उन्हें उनको अपना धर्म मानना चाहिए और सभी को अपने धर्म को मानने की स्वतंत्रता होनी चाहिए अपनी पसन्द के अनुसार।

श्री लो चिन वान :

(मलाया)

सर्वप्रथम मैं आपका मलाया की ओर से अभिनन्दन करता हूँ। मलाया में अनेक धर्म हैं और सभी को पूरी स्वतंत्रता है, जो इस सम्मेलन का उद्देश्य है। प्रस्तावों में हम लोगों ने अनेक संशोधन, सुझाव आदि देखे और उनके जो भी मन्तव्य हों, पर सम्मेलन के इस उद्देश्य में कि सभी धर्मों को परस्पर एक-दूसरे के निकट लाया जाय, इसमें कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। सभी का यह पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त होना चाहिए कि सभी धर्मों में परस्पर प्रेम, सद्भावना हो। मैं यहाँ मलाया के शुद्ध जीवन संघ के प्रतिनिधि के रूप में आया हूँ, जो अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तरधार्मिक संगठन है और हम लोग सम्मेलन के उद्देश्यों से पूर्ण रूप से सहमत हैं। जब से सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ, हमने बहुत कुछ सीखा है और मैं यह अवश्य कहूँगा कि यह मेरा कर्तव्य है कि अपने देश वापस जाने पर इस महान सम्मेलन के उद्देश्यों का प्रचार करूँ। मुझे विश्वास है कि इस सम्मेलन की सद्भावना इस सम्मेलन के बाद भी हम सब के यहाँ से चले जाने के बाद भी अपने अपने घरों तक कायम रहेगी। यह बहुत ही सुन्दर है कि यह सम्मेलन भारत में हो क्योंकि भारत में अनेक धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए इस सम्मेलन के प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमारजी महाराज को हृदय से धन्यवाद देता हूँ और यह आशा व्यक्त करता हूँ कि इस सम्मेलन की समाप्ति पूर्ण सफलता के साथ होगी और अशान्त संसार में शांति तथा सौहार्द की स्थापना में हम सफल होंगे।

उपसंहार

•

मुनिश्री सुशील कुमारजी महाराज

आज विश्वधर्म सम्मेलन का अन्तिम अधिवेशन है। हमारे बहुत से भाई अभी भी बोलने की इच्छा रखते हैं। हमारा खयाल है कि यदि हम बोलते ही रहेंगे, तो आठ दिनों के बाद जो काम करने का है, वह रह जायगा। अब इस कार्य को करने के लिए किस प्रकार की व्यवस्था हो, उस पर भी तो विचार होना चाहिए। आज से दो-तीन वर्ष पहले १९५७ की दृष्टि से तीन साल और काल की दृष्टि से ढाई साल पूर्व एक प्रस्ताव किया गया कि हम सभी प्रतिनिधि धर्म के आधार से विश्व-बन्धुत्व की आधार-शिला को मजबूत बनाने के लिए 'विश्वधर्म-संगम' का संगठन करें। उसका संयोजक चुनने, विधान बनाने, देश-विदेशों में संदेश को फैलाने की जिम्मेवारी मुझ पर दी गयी थी। उसी वचनबद्धता के कारण मुझे इस सम्मेलन में शरीक होना पड़ा और उसके लिये प्रेरणा करनी पड़ी। हमारे धार्मिक प्रतिनिधि जो मौजूद हैं, या जो सम्भवतः नहीं आ सके, उनकी सुस्ती से मैं बहुत उदासीन रहा। बोलनेवालों से जो धर्म की एकता में विश्वास रखते हैं, उनसे यदि पूछूँ कि पिछले तीन वर्षों में इस मकसद को बढ़ाने के लिए क्या किया, तो उत्तर मुश्किल हो जाय। व्यक्तिशः कुछ कर रहे हों, पर सामूहिक रूप से कुछ किया हो, सहयोग दिया हो, इसमें कुछ कमी जरूर रही है। जो हुआ सो हुआ, याद करने से कुछ लाभ नहीं। फिर से उत्साह बन रहा है।

आज धर्म-प्रतिनिधि चाहते हैं कि इस काम को आगे बढ़ाया जाय। आज देश का ढाँचा नये ढंग से बन रहा है। हमारे देश से बहुतेरे धर्म-प्रतिनिधि विदेशों में गये—भले ही उन्हें विदेशों से निमंत्रण नहीं मिले हों, पर आज यह दो वर्षों की तपस्या का फल है कि पहले हम दूसरों को निमंत्रण दिये, उनकी सेवाएँ कीं और आज उसका परिणाम है कि अरब की रेतीली खुश्क जमीन से भी एक फव्वारा फूटा है तो ईरान और बर्मा से भी निमन्त्रण मिला है। पर उस पर विचार करने के लिए ठीक ढंग से संगठन बनाना होगा।

लाल किले के बाद कलकत्ता के रंजी स्टेडियम में मैं कहता हूँ कि मैं साथ हूँ, मेरा सहयोग साथ है। पर अब मेरे ऊपर जिम्मेवारी नहीं है, वह वैधानिक समिति पर है। वह उस समिति पर है, जो बनायी जा रही है। वह समिति निमंत्रण को स्वीकार करे या अस्वीकार करे, उसकी मर्जी की बात है। जरूर आज सभी की उपस्थिति में केन्द्रीय समिति का चुनाव करना होगा, अब तक कार्यवाहक अध्यक्ष एक सन्त व्यक्ति सन्त कृपाल सिंहजी महाराज तथा सेठ आनन्दराज सुराणा, सेठ अचल सिंह, सेठ गोविन्ददास जो काम कर गये हैं, उनके हम आभारी हैं और सेठ सोहन लालजी दूगड, जो सबका आभार प्रदर्शन कर गये, वह शायद सबसे ज्यादा धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने हर दृष्टि से बहुत बड़ा सहयोग दिया। एक बात यह है कि यहाँ पर नगर-समितियों, सेवा-समितियों, सरकार आदि की जिस प्रकार की उपेक्षा मिली कि वह चिन्तनीय है। हम अपने को सुधारें कि भविष्य में वैसी उपेक्षा नहीं मिले।

बहुतों को यह महसूस होता है कि मेरा यह लबादा या वेष बाधक न हो, पर पता नहीं कि वे वैसा क्यों सोचते हैं। वेष तो हमारे विचारों का प्रतीक है, आग्रह का कारण नहीं है। पता नहीं कि लोग वेष पर क्यों जाते हैं? दृष्टि तो ऊंची होनी चाहिए। एक बार मुहम्मद जायसी एक मुसलमान राजा

के दरबार में गए। उनका रूप कुरूप था। देखते ही दरबार के लोग हंस दिए। जब वे वहाँ बैठे तो देखा कि सभी लोग उनकी ओर देख कर हंस रहे हैं। वह चल पड़े और बोले कि हम कुछ और सोच कर आए थे, पर निकला कुछ और। बादशाह ने बहुत रोका और कहा कि आप तो एक बहुत बड़े कवि हैं। उन्होंने कहा कि मैं सोच कर गुण देखने आया था कि यहाँ के लोगों की दृष्टि कैसी है। पर अब मालूम हुआ कि यहाँ सभी चमार हैं, जो चमड़ा, रूप-रंग देखते हैं, अन्तर में नहीं जाते। यहाँ तो कोई गुणी या महात्मा नहीं दीखता। ये सभी तो रंग-रूप और कपड़ों आदि को ही देखते हैं अन्तर में छिपी आग को नहीं देखते। इस प्रकार इन वस्त्रों, कपड़ों ने तो दुनिया में क्रान्तियाँ कीं, इन्हीं वेष भूषाओं में महात्माओं ने अहिंसा और प्रेम को गंगा बहाई। यह तो साधक है और सहायक है। शायद पतलून आदि से बन्धन-मुक्त होने पर आप महसूस करेंगे कि जादा सहायक है।

लाल किला के बाद जो काम हुआ है, उसमें विचारों की अभिव्यक्ति के लिए एक पत्र— जिससे तमाम धर्मों, विचारों का ठीक मर्म वह दुनिया के सामने रखा जा सके—'विश्वधर्म' के नाम से निकाला जा रहा है। उस पत्र को सबने देखा है, उसमें दुनिया के धर्मों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। परन्तु किसी ने कहा कि सुन्दर तो जरूर है, पर कलकत्ते में धर्मयुग, फिल्मफेयर, बिक सकता है, विश्वधर्म नहीं बिक सकता। यह तो आज की हालत है कि कुत्ते के मरने का समाचार अखबारों में आता है, पर विश्वधर्म-सम्मेलन का समाचार अखबारों में नहीं आता, यह मानसिक स्थिति है। इसमें दुनिया का दोष है भविष्य अन्धकारमय दीखता है। सम्मेलन को यहाँ पर जैसा सहयोग मिला, उससे पता चलता है कि हम किस ओर बढ़ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं। परन्तु इससे उदासीन होने की आवश्यकता नहीं है। हम इससे घबरानेवाले नहीं, बल्कि और मजबूती से खड़े हैं। हमने यह समझ लिया है कि संसार में इससे अच्छा दूसरा रास्ता नहीं है। दुनिया के तमाम धर्मवालों, राजनीतिज्ञों, नास्तिकों, आस्तिकों आदि सभी को शान्ति देने वाला यदि कोई पथ निर्माण हो सकता है तो वह यही पथ है। यहाँ पर सभी धर्म वाले आत्मा की आवाज को पहचानें और अन्तर की आवाज को सुनें। इसके सिवा शान्ति का और कोई दूसरा मंच नहीं हो सकता है। राजनीतिज्ञ लोग दुनिया को मिला नहीं सकते, उल्टे उसे विभागों में बाँट सकते हैं। बस एक ही रास्ता है धर्म सम्मेलन का जो तमाम दुनिया के धर्मों और लोगों को मिला सकता है। वह चाहे किसी भी देश का क्यों न हो। यह उदाहरण है कि यहाँ हम सभी विभिन्न देशों और धर्मों के लोग एक साथ बैठे हैं और एक दूसरे को निमन्त्रण दे रहे है।

सरकारी सहयोग मिले या नहीं, कोई सहयोग दे या नहीं, सरकारी आदमी आये या नहीं, पत्र छापे या नहीं पर धर्म सम्मेलन को दुनिया की कोई शक्ति रोक नहीं सकती। वह आत्मा की चीज है और बनकर तथा सफल होकर रहेगा। सहयोग या पैसे पर धर्म सम्मेलन निर्भर नहीं करता। वह तो अन्तर की प्रेरणा-शक्ति से होता है। फिर भी कर्तव्य है कि जो सहयोग देते हैं, उनके प्रति आभार व्यक्त किया जाय।

●

नया चुनाव

•

ऐसा सोचा गया कि नए वर्ष के लिए चुनाव कर नए समिति की उद्घोषणा की जाय। विधान के अनुसार जो रजिस्टर्ड है, पहले अध्यक्ष का चुनाव करते हैं और फिर जनरल सेक्रेटरी को चुनते हैं।

पहले अध्यक्ष का चुनाव

सन्त कृपाल सिंहजी का नाम प्रस्तावित डा० हीरालाल चोपड़ा द्वारा समर्थित और निर्विरोध सर्वसम्मति से निर्वाचित।

मुनिजी ने कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि यह बोझ संत बिरादरी के एक संत पर डाला गया है। ऐसे भी वह कृपाल हैं। वे सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित हुए, यह सुखद है।

जनरल सेक्रेटरी

मुनिश्री ने श्री **अबुल फजल हाजेवी [ईरान]** का नाम प्रस्तावित करते हुए कहा कि आप पसन्द करेंगे। आप लोगों ने उनका नाम और विचार सुना होगा कि वह कितने गम्भीर विचारक, चिंतक और धार्मिक है। अतः मैं उनका नाम रखता हूँ। डा० हीरालाल चोपड़ा ने प्रस्ताव का समर्थन किया। सर्वसम्मति से एवं निर्विरोध निर्वाचित हुए।

उपाध्यक्षः

(१) माननीय न्यायाधीश श्री रमा प्रसाद मुखर्जी, ७७, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता
(२) डा० रियाद एल इन, सांस्कृतिक अटैची, यू० ए० आ० कलकत्ता दूतावास, दिल्ली
(३) सेठ अचल सिंह, संसद सदस्य, नई दिल्ली (भूतपूर्व प्रधान मंत्री)
(४) स्वामी सर्वानन्दजी महाराज, अहमदाबाद
(५) स्वामी सत्यानन्दजी महाराज, कोलालम्पुर, मलाया

अध्यक्ष की सम्मति से ये नाम चुने गये

अर्थमन्त्रीः

सेठ आनन्दराजजी सुराणा

संरक्षकः

(१) डा० एस० राधाकृष्णन, उपराष्ट्रपति, नई दिल्ली
(२) श्री अनन्त शयनम् आयंगर, अध्यक्ष, भारतीय संसद, नयी दिल्ली
(३) सन्त तुकड़ोजी महाराज
(४) सेठ सोहनलाल दूगड़

मन्त्रिगण :- (१) अब्दुल वान कादिर-कोला लम्पुर, मलाया
(२) श्री बलम्बर ब्लोसन - यू० एस० ए०

विदाई समारोह

२ से ९ फरवरी तक देश विदेश के धार्मिक प्रतिनिधियों की विदाई के अवसर पर सबका मन भर आया। विदाई देनेवालों और लेनेवालों के स्वार गद्गद् हो रहे थे। विश्वधर्म संगम, कलकत्ता के प्रधान मंत्री श्री जसवंतसिंह लोढा, जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी संघ के मंत्री श्री केशव भाई और श्री सूरजमलजी बच्छावत, आनंदराजजी सुराणा तथा कल्याणमलजी लोढा ने समागत अतिथियों को हार्दिक धन्यवाद और विदाई दी !

श्री अबुल मोनियम एम० खताब प्रतिनिधि : संयुक्त अरब गणराज्य ने कहा– मैं अपने देश की ओर से आपका आभार मानता हूँ।

सभी धर्म एक हैं। अल्लाह के समक्ष सभी लोग समान और एक हैं और इसीलिए हम सभी भाई-भाई हैं। हम लोगों के कुरान में कहा गया है–सभी धर्म में एकता है। सभी धर्मों के लोग और सभी लोग जो अल्ला की इबादत करते हैं, वे सभी भाई हैं और उनमें कोई भेद नहीं है। मनुष्य कुछ समय के बाद इस शरीर को छोड़ देता है और स्वर्ग चला जाता है। इसीलिए हम सभी को चाहिए कि परस्पर भ्रातृत्व-भाव से एक-दूसरे के साथ रहें। कुरान में यह भी कहा है–संसार में ईश्वर में विश्वास करनेवाले लोगों के हृदय में ईश्वर के प्रति आज्ञाकारिता का भाव होता है। यदि कोई भी उस पवित्र ग्रन्थ का अध्ययन करता है, तो उसे पता चलेगा कि ईश्वर एक है और सभी मनुष्य भाई-भाई है। इसलिए हम सभी परमात्मा की आज्ञा का पालन करें।

अबुल फजल हाजेघी :
(ईरान)

धीरे-धीरे समय के परिवर्तन से हम लोग पा रहे हैं कि मानवता की यह एक महान प्रगति है कि हम लोग एक-दूसरे के निकट होने लगे है और एक-दूसरे को समझने की दिशा में अग्रसर हो रहे है। हमलोग यह जानते हैं कि पहले यह सम्भव नहीं था कि इस प्रकार की कोई सभा, सम्मेलन हो सकता, जिसमे विश्व के सभी धर्मों के लोग भाग ले सकते थे। यह सम्भव नहीं था कि इतने एक दूसरे के निकट से और इतने प्रम से एक-दूसरे से बाते कर सकते थे और एक ही उद्देश्य के लिए एक-दूसरे में विचारों की इतनी समझदारी हो सकती थी और यह कि ईश्वर और धर्म में विश्वास करनेवाले हम सभी युग की समस्याओं का उत्तर देने के लिए संगठित हो सकते हैं खास कर ऐसे समय में जब भौतिकता अनेक रोगों से हम सभी आक्रान्त हैं। हम इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देते हैं, क्योंकि अच्छाई ईश्वर के पास से ही आती है। हमलोगों को मालूम है कि मध्यकालीन युग में ईश्वर में विश्वास रखनेवाले लोगों को इस बात को देखकर बहुत दुःख था कि विभिन्न धर्मवाले परस्पर भी जगड़ते रहते थे, वे एक-दूसरे पर आक्रमण करते थे, एक-दूसरे की हत्या करते थे, उनमे परस्पर एक-दूसरे के बारे में गलतफहमियाँ थीं। धर्म के बारे में और सभी यही सोचते थे कि वह सही है और दूसरे गलत हैं। परन्तु आज यह ईश्वर से आने वाली अच्छाई का ही परिणाम है कि यह सम्भव हुआ है कि हम सभी एक-दूसरे को जानने और समझने तथा उनके धर्मों को समझने की ओर प्रयत्नशील हैं। इसी प्रकार की एक मधुर स्मृति को हृदय में लेकर हम लोग यहाँ से विदा हो

रहे हैं और ईरान की प्रतिनिधि की हैसियत से मैं विश्वास दिलाता हूँ कि ईरान के लोग तथा ईरान की सरकार और हम लोग आप सभी भाइयों के इस महान कार्य में साथ हैं कि एक ऐसा वातावरण तैयार किया जाय जिसमें सभी परस्पर प्रेम से मिलकर रह सकें। और और उसे प्रकट कर सकें। सर्व प्रथम ईश्वर को बहुत बहुत धन्यवाद है और फिर मैं सुन्दर एवं सुखद आतिथ्य प्रदान करने के लिए श्री पी० बी० शाह का आभारी हूँ। ईश्वर की सभी पर कृपा हो वह और आगामी सम्मेलन के लिए ऐसा ही उत्साह प्रदान करे।

श्री थान कादिन :

(मलाया)

सर्वप्रथम मलाया प्रतिनिधि मण्डल की ओर से तथा मलाया के लोगों की ओर से मैं सम्मेलन के आयोजकों, को धन्यवाद देता हूँ। सौहार्दपूर्ण आतिथ्य एवं सहृदयता, जो आप लोगों से मिली है यहाँ पर हम लोगों के ठहरने की अवधि में, उस सभी लिये धन्यवाद देता हूँ। मैंने इस बार दूसरी बार विश्व-धर्म-सम्मेलन में भाग लिया है। पहली बार १६५५ में टोकियो में जहाँ कि इसी प्रकार का एक विशाल और महान आयोजन हुआ था जो और उद्देश्य से आयोजित हुआ था और जिसमें विभिन्न देशों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। उसी सम्मेलन के परिणाम स्वरूप हमलोगों ने मलाया में एक संस्था की स्थापना की। जिसका नाम मलायन कौंसिल ऑफ इन्टरनेशनल कोऑपरेशन रखा गया। उसी संस्था के अध्यक्ष के संन्देश को हमारे साथी ने सम्मेलन के उद्घाटन के दिन पढ़ा था। मलाया में शुद्ध जीवन नामक संस्था है (प्योर लाइफ सोसायटी) और उसके लक्ष्य एव उद्देश्य इस सम्मेलन के उद्देश्यों के ही समान हैं। यद्यपि मलाया राज्य का धर्म इस्लाम है और वह संविधान के अनुसार एक इस्लामिक राज्य है। पर वहाँ पर विश्व के अन्य विभिन्न धर्मों के मानने की पूरी सुविधा है। मलाया में संसार के सभी धर्मों. जातियों के लोग बसते हैं। वे सभी मलाया के नागरिक के रूप में परस्पर शान्ति और सौहार्द्र के साथ मिलकर काम करते हैं। हमलोगों को ऐसा लगता है कि मलाया यद्यपि करीब ७० लाख की आबादी का एक छोटा-सा देश है, परन्तु छोटे पैमाने पर वह विश्व के धर्मों का एक सम्मेलन है आत्मा से भी और व्यवहार से भी। हम लोग ऐसा समझते हैं कि सभी धर्मों की मुख्य शिक्षाएं समान हैं और उसे समझने के लिए हाथ का उदाहरण बहुत ही सुन्दर है। जहाँ सभी उंगलियों की लम्बाई समान नहीं है फिर भी सभी संगठित हैं और संगठित रूप में उनका कार्य की दृष्टि से महत्व है। इसी प्रकार हमें देखना है कि ईश्वर तथा चरम सत्य के माने में सभी धर्म एक हैं। यदि हमलोग सचमुच में इस वास्तविकता को समझ लें और इसके अनुरूप चलने और व्यवहार करने का निश्चय कर लें, तो यह निश्चित जानें कि संसार में शान्ति साकार हो जाय। हाँ, हम केवल एकता का नाम ही न लें। उस परम शक्ति या चरम सत्य, जो इस क्षितिज के पार है, की कृपा हम सभी पर हो और हम लोग सम्मेलन के उद्देश्यों की सफलता की आशा से काम करें।

अकिरा नाकानाशी

(शिन्तो जापान)

मैं शिन्तो धर्म एवं जापान के प्रतिनिधि की हैसियत से हृदय से इस अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन का अभिनन्दन करता हूँ और सभी को धन्यवाद देता हूँ।

एडवर्ड एल० पेप :

(आस्ट्रेलिया)

मैं आस्ट्रेलिया के लोगों की ओर से नहीं बोलता हूँ। बल्कि वहाँ के उन कुछ लोगों की ओर से बोलता हूँ, जो मेरे समान ही धर्म और शाकाहार तथा आपके में से अधिकतर लोगों की तरह शान्ति में विश्वास करते हैं। जब मैं शान्ति की बात करता हूँ, मुझे विश्वास है कि उसके पीछे हमारे देश के सभी लोग हैं। यहाँ पर आपके समक्ष बोलते हुए सर्वप्रथम मैं यह बता देना चाहता हूँ कि मैं किसी विशेष पंथ या सम्प्रदाय का मानने वाला नहीं हूँ। पर यदि २१ वर्ष पूर्व मुझसे कोई पूछता, तो मैं कहता कि मैं एक ईसाई हूँ; क्योंकि मेरा लालन-पालन तथा जन्म आदि उसी एक वातावरण में हुआ था। उस प्रकार अब मैं उत्तर नहीं दे सकता। क्योंकि मैं केवल ईसा की शिक्षा में ही विश्वास नहीं करता, बल्कि भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, महात्मा गांधी—तत्प्रकार सभी महापुरुषों आदि की शिक्षाओं में भी विश्वास करता हूँ। मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ और जो सन्देश अभी ईरान के प्रनिनिधि के द्वारा दिया गया, जिन्होंने कहा कि हम सभी एक ही ईश्वर की पूजा करते हैं, इसमें कोई भेद नहीं। चाहे हम उसे कृष्ण, राम या किसी और नामसे पुकारते हों, मैं विश्वास करता हूँ। मैं इस सन्देशको अपने साथ अपने देश तथा जहाँ भी मैं जाऊँगा, साथ लेता जाऊगा, और वह यह कि हम सभी विभिन्न नामों और विभिन्न प्रकारों से एक ही ईश्वरको मानते हैं। एक ही आदर्श में विश्वास करते हैं और विश्व-शांति की इच्छा करते हैं। जब युवक था, मुझे आश्चर्य होता था कि ऐसा क्यों कहा गया कि प्रेम ईश्वर है और हम अवश्य ही सभी साथियों से प्रेम करें तथा सभी प्राणियों से प्यार करें। मैं उसे उस समय नहीं समझ पाया; क्योंकि मैं इस बात का अनुभव उस समय नहीं करता था। मैं इसे स्वीकार करना चाहता हूँ कि मुझमें अभी भी प्रेम-भावना पूरी तरह से नहीं आ पाई है—परन्तु मैं इतना समझता हूँ कि हम सभी एक-दूसरे से प्रेमभाव रख सकते हैं। हम लोगों को एक-दूसरे से प्रेम करने की कोशिश करनी चाहिए और यह विश्वास करना चाहिए कि हम सभी लोग एक ही जाति के हैं। मैं आशा करता हूँ कि संसार में शान्ति एवं सभी लोगों में सौहार्द का विकास होगा।

वेनरेबल भिक्षु विवेकानन्द :

(थाईलैण्ड)

जो भी लोग प्रेम, शान्ति और अहिंसा में विश्वास करते हैं और जिन्हें उसके लिए प्रेम है, उनसे थाइलैण्ड के प्रतिनिधि के रूप में मैं और मेरे साथी रेवरेण्ड शिलानंद का यह सन्देश है कि मुनिजी और इस सम्मेलन के महान सन्देश को हम हृदय में स्थापना देते हुए उसे घर-घर तक पहुँचायें। सम्मेलन द्वारा स्वीकृत पांच प्रस्ताव-विश्व-शांति, परस्पर सौहार्द, भ्रातृत्व और विश्व-मैत्री का प्रतीक है। बुद्धधर्म के मानने वाले हम लोग ईश्वर में कर्ता, अवतार और नियंता के रूप में विश्वास नहीं करते और यदि करते हैं, तो सत्य के नियम के अन्तर्गत सत्य और कर्तव्य में विश्वास करते हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि सत्य परमेश्वर है और ईश्वर सत्य है, प्रेम है और अहिंसा है। मैं इस सन्देश को अपने देश के लोगों के पास ले जा सकता हूँ। हम सभी बुद्ध और महावीर के उपदेशों का स्मरण करें और दोनों की आज के समय में बहुत बड़ी आवश्यकता है। मैं यह यहायमा और धर्मसूत्र से उद्धृत करता हूँ। बुद्ध और

जैन धर्मों में कहा है कि जो अपने आप को जीत लेता है, वह उससे महान है, जो सैकड़ों और हजारों लोगों और लड़ाइयों को जीतता है। जो स्वयं को जीतते हैं, वे सारे संसार के विजेता से भी महान हैं।

स्वामी आनन्द :

[मन्त्री, भारत साधु समाज]

यह एक अद्‌भुत अवसर है, जब हम सभी एक ऐसे विशेष मंच के निर्माण के लिए एकत्र हुए हैं, जिससे समस्त विश्व में शान्ति की स्थापना हो सकती है और जहाँ हम सभी विभिन्न धर्म या विचारविशेष के मानने वालों के रूप में नहीं, बल्कि मानव-मानव की तरह मिल सकें। मैं वास्तव में आप सभी संयोजकों को इसके संयोजन के लिए हृदय से धन्यवाद देता हूँ। यह दुःख का विषय है कि राजनीतिक लोगों ने अपने हाथों में चरित्र-निर्माण तथा राष्ट्रीय भावना के विकास के कार्यों को ले रखा है। अभी इस समय हम लोग विश्व के एक संक्रांति काल से गुजर रहे हैं। भय है कि भौतिकवाद हम लोगों के धार्मिक और आध्यात्मिक विचार-धाराओं को दबा दे या निरंकुश साम्राज्यवाद का बोल-बाला हो, जिसमें से धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं को मार्ग निकालना है। इसलिए विश्व-धर्म-संगम के समान संगठन का निर्माण बहुत ही मौके पर हुआ है। मैं स्वयं अपनी ओर से तथा सारे भारत के सभी धर्मों के साधु सन्तों को संगठित करने के लिए अभी हाल में ही गठित और पंजीयत संस्था, भारत साधु समाज और उसके सदस्यों की ओर से यह आश्वासन देता हूँ कि प्रेम, बन्धुत्व और मैत्री के विकास में हम सभी सदा साथ हैं। मुनिजी भी साधु-समाज की जनरल कौन्सिल के एक सदस्य हैं। इसलिए मुझे हृदय से आनन्द हो रहा है कि मैं इस सम्मेलन में उपस्थित हो सका और यह बहुत अच्छा हो कि एक परिवर्तन हो और लोगों के चरित्र के निर्माण तथा विश्व के लोगों में उनकी प्रवृत्तियों में धार्मिकता, नैतिकता लाने का काम धार्मिक और आध्यात्मिक लोगों द्वारा अपने हाथों में लिया जाय। जब तक हम लोग अधिकाधिक धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्वों का विकास नहीं करते, सारा संसार का भाग्य खतरे में है।

श्री कामगार पारसी :

[डायरेक्टर, इरानियन कलचरल हाउस]

मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ और इस अवसर पर भाग लेने के लिए आभारी हूँ कि यहाँ आकर एक ही उद्देश्य के लिए काम करने वाले इतने लोगों से मिल सका। यह कलकत्ता के लिए एक महान सम्मान का विषय है कि उसमें सारे संसार के विभिन्न भागों से आए हुए इतने प्रतिनिधियों का स्वागत करने की क्षमता है। यदि मध्यकाल में लोगों में भ्रान्तियों के कारण तथा राष्ट्रों में भी संघर्ष और कलह होते थे, विश्व-धर्म-संगम का यही दूसरा जलसा यहाँ कलकत्ता में विभिन्न धर्मों के आचार्यों एवं अनुयायियों में मैत्री–स्थापना के लिए हुआ और हमलोगों को एक अवसर मिला, जिसमें हम लोगों को एक-दूसरे के निकट आने की आवश्यकता हुई। ईरान के एक कवि ने कहा है कि यदि हम सभी एक ही ईश्वर की इबादत कर सकें, तो युद्ध और भ्रान्तियों का कोई कारण ही नहीं रह जाता है। हम लोग सभी परस्पर एक-दूसरे के निकट होने के लिए आगे बढ़ रहे हैं और संगठित रूप में एक ही ईश्वर को मानने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

प्रेरक का अंतिम निवेदन

●

मुनिश्री सुशील कुमारजी

बहुत-से धर्म प्रतिनिधियों ने आपको यहाँ पर अपने आगमन के शुभ समाचार और हृदय को प्रशंसा बताई तथा आपने भी अपनी ओर से उनकी सेवा में कुछ कमी नहीं रखी और कुछ भी किसी प्रकार की कमी हुई हो, तो क्षमायाचना आपने भी माँगी। साथ ही उनके यहाँ आने की अपनी प्रसन्नता भी व्यक्त की है। मेरा खयाल है कि धर्म के लिए भारत एवं विदेश के लोगों का यह पारस्परिक मिलन धर्म के सिद्धान्तों को प्रचारित करने के लिए बहुत ही लाभदायक है। विश्व-धर्म-सम्मेलन का अधिवेशन पूरा हो गया। इसकी सफलता से बहुतों को बहुत ही खुशी है।

मैं सोचता रहा, कितनी ही बार अन्तरात्मा से प्रश्न करता रहा कि क्या इस सम्मेलन से कुछ लाभ होगा? कई महीनों तक कोई उत्तर नहीं मिला। एक छोटी-सी लहर जरूर आती थी। वह यह कि इसका परिणाम कुछ जरूर होगा और अच्छा होगा। पर जो दिखाई देता रहा, वह यह कि जिधर से सहयोग माँगा गया, मुश्किल बन गया, जिसको बुलाया गया, उधर से इनकार आ गया, जिसने आने का समाचार भेजा, फिर आठ दिनों के बाद खेद-प्रकाश का पत्र भेज दिया। परिस्थिति कभी सुधर जाती थी और कभी बिगड़ जाती थी। इन तमाम उतार-चढ़ावों में यह सम्मेलन घूमता रहा। मेरा खयाल है कि हमारे नजदीक बैठनेवालों में और सम्मेलन में सहयोग करनेवाले अन्तिम दिनों तक यह फैसला नहीं कर सके कि सम्मेलन सफल होगा या नहीं। मेरी अन्तरात्मा ने एक बार यह आवाज दी जरूर कि सम्मेलन का परिणाम निश्चय ही अच्छा आयेगा। मैं और दूगड़जी कहते कि हमें इसकी चिन्ता नहीं कि परिणाम जरूर आये ही। सात दिनों के अन्दर क्या परिणाम आया, मैं स्वयं सोचता रहा। लेकिन अन्त में जब अरब के भाई, ईरान के सांस्कृतिक अटैची, बर्मा के प्रतिनिधि ने यह एलान किया कि सम्मेलन का आगामी अधिवेशन उनके देश में हो और उसका सारा जिम्मा उनके ऊपर रहेगा और आनेवालों ने केवल अपने मन के विचारों को ही नहीं व्यक्त किया, बल्कि शिर पर जिम्मेवारियाँ भी लीं, तो साबित हो रहा था कि विश्व-धर्म-सम्मेलन के सिद्धान्तों से दुनिया के लोग सहमत हैं और वे इन सिद्धान्तों, मान्यताओं और भूमिकाओं को हिन्दुस्तान से अपनी गोद में लपेटकर अपने देश तक ले जाना चाहते हैं और उसके सन्देश को अपने देश में पहुँचाना चाहते हैं। सम्मेलन की यह भूमिका ठीक रही है और मेरा खयाल है कि जितनी साधना और तपस्या हमारे पदाधिकारियों को इस सम्मेलन के लिए करनी पड़ी है, आगे नहीं करनी पड़े। इस सम्मेलन जैसे महान् अधिवेशन का करना एक मुश्किल काम है और विशेष कर जैन साधु की साम्प्रदायिक मर्यादाओं को रखते हुए, यह और भी महान् कठिन कार्य है। दिल्ली के मुसलमान भाई कहते थे कि यह ट्रेन चढ़ते नहीं, टेलीफोन पकड़ते नहीं तो मकान में बैठे बैठे सम्मेलन किस प्रकार हो जायगा। बहुतों को इसमें आशंकाएं थीं। मेरा खयाल है कि यह सब नहीं करना पड़ा और सम्मेलन के लिए इन सब चीजों की जरूरत नहीं, जरूरत आत्मबल की है, संकल्प-बल की है। यदि दृढ़ निश्चय करके मनुष्य लगा रहता है, तो सफलता जरूर मिलती है।

●

जैन साधुओं की एक भूमिका जरूर है, जो निवृत्तिमूलक है, पर बीच में प्रवृत्तिमूलक कुछ बातें आ जाती हैं और जब कार्यकर्ताओं को कुछ कठिनाइयाँ आ जाती हैं, तो प्रेरक के लिए यह मुश्किल हो जाता है कि वह उन्हें जिम्मेवारियों को इस प्रकार समझाए कि वह उनके दिलों में बैठ जाय। एक मुश्किल यह भी है कि हमारे समझने का तरीका भी अलग है और वह यह कि आदेश, आरम्भ, समारम्भ नहीं हो और यही बहुत मुश्किल है। ऐसा नहीं हो सका। आपके बहुत-से आरम्भ-समारम्भ में मेरी ओर से ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया, जो साधु को नहीं करना चाहिए था पर मेरे सामने कोई चारा नहीं था और एक ही चारा था कि मैं कहूँ कि आप इस ढंग से सोचें। मैं आदेश नहीं, पर सुझाव जरूर देता था, क्योंकि वह देश का, देश की इज्जत का, धर्म का और धर्म की इज्जत का प्रश्न था। अगर विदेशों के प्रतिनिधियों को बुलाकर कुछ कमी रह जाती है और हम ठीक ढंग से संचालन नहीं कर पाते हैं, तो भविष्य के लिए एक कठिनाई आ जाती है। अगर कोई प्रतिनिधि नाराज हो जाय और प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति से शिकायत करता है या अपने देश के समाचार-पत्रों में प्रसारित करता है कि मैं सम्मेलन के लिए भारत गया, पर वहाँ व्यवस्था ठीक नहीं थी, उनमें संकीर्णता है, आदि तो इस प्रकार की बातों से देश की क्या हालत होगी। यह भी मेरी कठिनाई थी और मैं सोचता रहा कि बहुत-से लोग इस बात को सोच रहे हैं, तो भी हमने मन मारकर उसे किया। वे क्यों सोचते रहे क्योंकि बहुत पुराने जमाने से यह संस्कार बन गया है। मन में सोचते हैं, पर ऊपर से कहते नहीं। पर ऐसा क्यों करते, क्योंकि इधर-उधर बात करने से कोई लाभ तो नहीं। शंका हो तो सीधे बात कीजिये। बहुत लोगों ने कहा तो हमने उनसे पूछा कि रास्ता बताइये। जब ऐसी स्थिति हो जाय तो उस काम को पूरा ही करना चाहिए। इस काम में जो प्रायश्चित्त आता है, तो उसे करना चाहिए और आत्म-शुद्धि करनी चाहिए। आहार लेने जाते हैं, यदि कुछ दोष लग जाता है, तो प्रतिक्रमण कर लेते या जैसा होता प्रायश्चित्त कर लेते हैं। अन्तरात्मा और आत्म-शुद्धि का यही तरीका रहा है। बहुत लोग गैर-जिम्मेवारी से इधर-उधर बातें करते रहे। सम्मेलन में शामिल भी हुए, बाहर भी बातें करते रहे। यह समाज की जिम्मेवारी है कि वे कोई बात उठाते हैं, तो अपने मन में सोचें, जहाँ भूल हो बतायें और उनसे भी भूल हो तो वे भी प्रायश्चित्त के लिए तैयार रहें। मैं अपना नाम पहले व्यक्ति में लिखाता हूँ—जहाँ कहीं मेरी भूल नजर आती हो, मुझे बतायें, मैं उसे दूर करूंगा, यदि दोष लगा है, तो प्रायश्चित्त करूंगा, आत्म-शुद्धि करूंगा। मेरा खयाल है कि उससे अच्छा मेहरबान मेरे लिए दूसरा नहीं जो मेरी भूल निकाले। पर समाज के लिए उससे बढ़कर कोई अहितकारी व्यक्ति नहीं, जो मन में रखकर बातें बाहर करता है, जिसका परिणाम सिवा फूट और घृणा के कुछ नहीं। इसलिए आप सभी प्रेम से एक बात को सोचें कि जब जिम्मेवारी सिर पर ली है, तो उसे निभाना चाहिए। साधु मूल पाँच महाव्रत धारण करता है। उसमें दोष आता है, तो संयम जाता है। कभी कभी समितियों में दोष आता है। मैं जब सारे सम्मेलन के क्रिया-कलापों को एक अन्तर-निरीक्षण की दृष्टि से देखता हूँ, तो कहीं भी मुझे जो दोष स्वयं दिखाई पड़ा, वह भाषा-समिति का दिखाई पड़ा। इसके सिवा यदि कुछ आपके ध्यान में आया हो, तो मैं मंजूर करूंगा और मुझे खुशी होगी। नाराज जरूर हूँ उन लोगों से, जिन्होंने उन दोषों को मुझे न बताकर, क्योंकि मुझसे वे सम्बन्धित थे, दूसरों से इधर-उधर कहा। उनका वह कर्तव्य नहीं था। यह सभी का कर्तव्य है कि आप सभी एक

ही शरीर के अंग हैं और एक-दूसरे की सहायता पर चलते हैं। आप विरोध से नहीं चल सकते। देश का दुर्भाग्य और समाज का कलंक है कि हम एक-दूसरे की निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, करते आए। हमें एक-दूसरे के हित के लिए सोचना है। यदि आपके मन में किसी प्रकार का विचार आता है तो कहिए, मैं उसके लिए तैयार हूँ। जो कुछ मेरी समझ में मुझे स्वयं आया है, मैंने उसका रास्ता सोचा है। कोई पूछना चाहे, तो बताने को तैयार हूँ।

मैं यह सब इस समय जब बहुत से विदेशी एकत्रित हैं, क्यों कह गया? इसलिए कि वे सभी व्यापार के लिए नहीं आये हैं, बल्कि धर्म-प्रतिनिधि के रूप में आये हैं। उनका यह कर्तव्य है कि वह अपनी भूलों को स्वीकार करें, चाहे वह बड़ी भूल हो या छोटी। जटिया बाबा भी कहने लगे कि हमारे गुरु रेल, मोटर आदि पर नहीं चढ़ते थे, पर हम चढ़ते हैं और उसका प्रायश्चित्त लेते हैं। प्रायश्चित्त करना केवल जैन धर्म में ही नहीं, बुद्ध, ईसाई आदि तमाम धर्मों में है। इसका मतलब यही है कि भूल न की जाय और अगर हो जाय तो उसे दूर कर लें। पशु और मनुष्य में यही अन्तर है कि पशु भूल करता है, तो उसे सुधार नहीं सकता और मनुष्य भूल करता है, तो उसे सुधार सकता है। यदि अपनी भूल को कोई सुधार सके, तो वह इंसान है और यदि हठ करता है, तो बड़े से बड़ा पशु है। इसलिए तमाम धार्मिक प्रतिनिधियों के सामने मैं यह रख रहा हूँ कि वे इस आदर्श को सोचें। यह सभी का आदर्श है। तमाम धर्मवालों का एक ही आदर्श है कि पाप का प्रायश्चित्त करें, भूल का परिशोधन करें। किसीके लिए खेद की बात नहीं, बल्कि खुशी की बात है कि हम अपनी हर भूल को मानने के लिए तैयार रहें और यही हमारा आदर्श है।

मेरा खयाल है कि विश्वधर्म-सम्मेलन अपने उद्देश्य में सफल रहा है और जिस भावना को लेकर हम चले थे, उसमें हमें कामयाबी मिली है। आगामी कार्यों के लिए एक समिति बनी थी। तमाम धर्म-प्रतिनिधियों पर जिम्मेवारी डालनी है कि आप अपने देश में और प्रान्त में इसके संयोजक हैं, बाकी स्वागत आदि तो नीचे स्तर की चीज है। जब व्यक्ति ऊँचा उठ जाता है, तो वहाँ मान, सम्मान और अपमान की सारी भूमिकाएं ही नष्ट हो जाती हैं। किसीने कहा कि बांठियाजी को मैंने कहा कि आप चलें तो ईरान में भी चलूंगा और दूसरी बातों को लोगों ने नहीं सुना, तो भ्रम में पड़ गये कि शायद दोनों हवाई जहाज में बैठकर चले जायेंगे। ऐसा वे इसलिए सोच गये, क्योंकि उन्हें न स्वयं पर विश्वास है और न दूसरों पर। वे नहीं समझते कि कोई साधु किसीके कहने से तो बना नहीं है और न किसी पर निर्भर है। वह तो आत्म-त्याग से साधु बनता है। मैंने कहा था कि चलने को तैयार हूँ; पर पैदल चलना होगा।

मेरे प्यारे भाइयो, मैं इस अवसर पर ज्यादा कुछ कहना नहीं चाहता। बस, इसी आत्म-निवेदन के साथ आप सबके प्रति शुभ-कामना व्यक्त करता हूँ।

●

अध्यक्ष का निवेदन

सन्त कृपालसिंहजी महाराज

मेरा खयाल रहा है कि सभी मनुष्यों की जाति एक है। समाज में जब महापुरुष आये, तो बहुत महान उद्देश्यों को रखा। अमेरिका में एक सभा पूर्व और पश्चिम की हुई। मुझे पूर्व का प्रतिनिधित्व करने के लिए कहा गया। पर जब पश्चिम का प्रतिनिधित्व करनेवाले सज्जन नहीं आ सके, तो मुझ पर ही दोनों का भार दिया गया। फ्रान्स के सज्जन उपस्थित रहे। मैंने कहा कि सारी दुनियाँ उस मालिक का घर है, जिसमें बहुत से कहरे हैं। हवाई जहाज ने तो दुनिया की दूरी को समाप्त कर दिया। हर देश के हम सभी इंसानों के अन्दर में एक दबी आग जल रही है और हम अपने-अपने समाजों में रहते हुए भी उसीको मारना चाहते हैं। इसीसे जब लोग भूलते रहते हैं, तो महापुरुष पुनः उसे ताजा कर जाते हैं कि सभी परस्पर मिल कर रहो, सभी मिलकर बैठो। इससे हम सभी एक-दूसरे को समझ पाते हैं। ऐसा मत समझो कि किसी एक महापुरुष ने कुछ और कहा और दूसरे ने कुछ और। सच तो यह है कि सभी ने एक ही बात कही है। जबान अपनी अपनी और कहने के ढंग अलग-अलग रहे हैं। सभी ने यही कहा कि हम सभी एक ही के पुजारी हैं—

सैकड़ों आशिक हैं, दिलाराम सबका एक है।
मजहब वो मिल्लत जुदा है, काम सबका एक है।

हम चाहे किसी भी समाज में हों, अगर हिन्दू हैं, तो पक्के हिन्दू बनें, मुसलमान हैं, तो पक्के मुसलमान बनें, सिक्ख हैं तो पक्के सिक्ख बनें और अपनी आत्मा में सभी के लिए प्यार भरे। जो भी तुम्हारी धर्म पुस्तक कहती है उसे सही रूप में समझकर उसके अनुरूप जीवन को बना लो तो सभी मसले हल हो जायेंगे। सभी धर्म कहते हैं—परमात्मा से प्यार करो। यह सबमें है कि सभीसे प्यार करो। बल्कि यह भी कहा गया कि इन्सान वही है जिसमें प्रेम हो—प्रभु से और प्राणी मात्र से प्यार हो।

मुझे खुशी है कि आज वह शमा है कि हर एक समाज से जो परमात्मा के आशिक हैं, वे सभी मिलकर बैठे हैं। यदि चार शराबी चाहे वे किसी भी समाज के हों मिलकर बैठते हैं तो प्रभु के चार भक्त इकट्ठे क्यों नहीं बैठते? इसका यही अर्थ है कि हमने सही माने में एक-दूसरे को, एक-दूसरे की महापुरुषों की वाणियों को नहीं समझा है या गलत प्रचार के सबब से हमारे अन्दर तंगदिली और संकीर्णता आ गयी है। मुझे खुशी है कि इस सम्मेलन के लिए हर एक देश से—कहीं से प्रतिनिधि स्वयं आए हैं और कहीं से सन्देश आये हैं। सभी ने यही कहा है कि हम सभीके मिलकर रहने से ही उन्नति है। अपने समाजों को नहीं बदलना है, बदलना मन को है। किसी समाज में रहो, इतने ऊँचे उठ जाओ कि सारी मनुष्य जाति तुम्हारा समाज बन जाय। जो कुछ भी सभीने अपने-अपने खयाल पेश किए हैं—वही तालीम पहले से ही मौजूद है। हम भूल रहे थे, तो मुनिजी महाराज ने उसे ताजा करने के लिए अवसर दिया। जिससे हम लोगों ने एक-दूसरे को अच्छी तरह से समझा है और जिन्होंने समझा है, वे उसे अपने देश में ले जाना चाहते हैं। यह सारी मानव की जाति का काम है।

• • •